सांख्यदर्शन।
अत्युत्तम भाषानुवाद सहित।

श्रीः ।

सांख्यदर्शनम् ।

श्रीमहर्षिकपिलप्रणीतम् ।

चाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि-

श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मित-

देशभाषाकृतभाष्यसमेतम् ।

तदेतत्

खेमराज श्रीकृष्णदास

इत्यनेन

मुंबय्याम्

स्वकीये " श्रीवेंकटेश्वर " यंत्रालये

मुद्रायित्वा प्रकाशितम् ।

संवत् १९५१. शके १८१७.

प्रस्तावना.

ॐ परमात्मनेनमः । परमात्माको प्रणाम करके अज्ञानियोंके उपदेशके निमित्त जे संस्कृत वाणीमें शास्त्रको नहीं समुझसकते उनके समुझने व सरलताके अर्थ विस्तारको त्याग करिके संक्षेपसे सांख्य शास्त्रके सूत्रोंका अर्थ व भाष्य सरल भाषामें वर्णन करताहूँ व जहाँ कोई विशेष संस्कृत शब्द रक्खा है वहाँ ऐसा ( ) चिह्न करके उस शब्दका अर्थ चिह्नके मध्यमें जाननेके लिए लिख दिया है अथवा उस शब्दका भाव चिह्नके मध्यमें लिख दिया है विद्वान्‌जनोंसे यह प्रार्थना है कि यदि प्रमादसे कहीं भूल होगई हो तौ अपनी सज्जनता व गुणमात्र ग्राहकतासे विमार्जित कर लेवैं, इस पुस्तकके मुद्रित करनेके सर्वाधिकार हमने श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर यंत्रालयाध्यक्ष को समर्पण करदिये हैं, अतएव अन्य किसीको छापनेका अधिकार नहीं ॥

सज्जनोंका कृपाकांक्षी–प्रभुदयालु.

धन्यवाद.

हम कोटिशः धन्यवाद उस परब्रह्म परमात्माको देते हैं कि जिसकी पूर्णानुकम्पासे अब भी ऐसे परोपकारोद्यत पुरुष विद्यमान हैं, जिनके द्वारा सर्व सामान्यकोभी कठिन २ विषयावलोकन होते हैं, और अनेक धन्यवाद श्रीमत् प्रभुदयालुजीको हैं कि जिन्होंने योगसूत्रोंका ऐसा सरल भाषानुवाद किया है जो भलीभांति समझमें आता है बल्कि साथही उसका असरभी पड़ता जाता है प्रथम उक्त महाशयजी रचित भाषानुवाद सहित "पातंजलयोगदर्शन" दृष्टिगोचर कर चुके हैं और यह "सांख्यदर्शन" अब होताहै । और "वैशेषिकसूत्र भाषानुवाद सहित" भी छप रहाहै, आशा है कि सांख्ययोग विषयानुरागी सज्जनजन आदरकर प्रभुदयालुजीके उत्साहको बढ़ाकर इनके श्रमको सफल करेंगे ॥

आपका कृपापात्र.

खेमराज श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना.

खेतवाड़ी ब्यॉकरोड-मुम्बई.

ॐ परमात्मनेनमः ।

सांख्यदर्शन ।

भाषानुवादसहित ।

अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः॥

अथ त्रिविध दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होना अत्यन्त पुरुषार्थ है ॥ १ ॥

अथ शब्द मंगलरूप है इससे आदिमे अथ शब्द कहकर शास्त्रका आरंभ किया है. पुरुषार्थ निरूपण शास्त्रका विशेष विषय अंगीकार करिकै आदिमे पुरुषार्थको वर्णन किया है कि त्रिविध दुःखकी निवृत्ति पुरुषार्थ है आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक ये त्रिविध दुःख हैं जो आत्माको अपने शरीर व इन्द्रियोंके संयोगसे शारीरिक रोग आदिसे अथवा मानसिक दुःख होता है उसको आध्यात्मिक कहते हैं, जो भूत अर्थात् प्राणियोंके द्वारासे यथा चोर व्याघ्र सर्प आदिसे दुःख होता है उसको आधिभौतिक कहते हैं, और जो अग्नि वायु आदिसे दुःख होता है उसको आधिदैविक कहते हैं इस त्रिविध दुःखका अत्यन्त निवृत्त होना अत्यंत पुरुषार्थ है अब यह संदेह होता है कि जो दुःख होगया उसका तो नाश ही होचुका जो वर्तमान है उसका वर्तमान क्षणमे भोगही होता है भोगके पीछे आपही नष्ट होजायगा उसके नाशके अर्थ साधन व ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होसकती शेष रहा जो होनेवाला है उसीके निमित्त साधन व ज्ञानकी अपेक्षा है इसमेंभी कोई यह शंका करते हैं कि जो नहीं हुवा उसका प्रमाणही नहीं है जो नहीं हुवा न वर्तमान है आगे होगा यह क्यों मानलेवैं और उसके नाशका उपाय करना ऐसा है जैसे आकाशके फूलके नाशका उपाय करना क्योंकि जब आका-

शमें फूलही नहीं होता तौ उसके नाशका उपाय वृथा है अब इस संदेह निवारणके लिये उत्तर यह है कि यह दृष्टांत अयोग्य है अपने अपने कार्य उत्पन्न करनेकी शक्ति द्रव्यमें जबतक द्रव्य है बनी रहती है यथा दाहसे रहित अग्निका होना कहीं देखनेमें नहीं आता इसी प्रकारसे अपने अपने कार्य उत्पन्न करनेकी शक्ति प्रत्येक पदार्थमें होती है यह शक्ति अनागत (भविष्यत) कालमे प्रकट होनेवाली द्रव्यमें स्थित रहती है इससे जबतक चित्तकी सत्ता है तबतक अनागत (होनेवाले) दुःखके सत्ताका अनुमान होता है इसका निवृत्त होना पुरुषार्थ है (शंका) ऐसा माननेमें दुःख निवृत्त होना कहनाही असंगत है क्योंकि दुःख चित्तका धर्म्म है पुरुषमें उसकी निवृत्तिका होना संभव नहीं है (उत्तर) यह कहना यथार्थ नहीं है जो पुरुष दुःख रहित है तौ श्रवण मननसे अनन्तर दुःखके नाशके लिये प्रवृत्ति न होना चाहिए क्योंकि साध्य उपायमें जब फलका निश्चय होता है तभी प्रवृत्ति होती है विना फलके निश्चय प्रवृत्ति नहीं होती दुःखके अभाव फलकी वर्णन करनेवाली श्रुति यह निश्चय कराती हैं कि आत्मा नित्य दुःख रहित नहीं होता ज्ञान होनेपर दुःख रहित होता है श्रुति यह है

"तरति शोकमात्मविद् विद्वान् हर्षशोकौ जहाति ।"

अर्थ आत्माका जाननेवाला शोकसे तरजाता है ज्ञानवान् हर्ष शोक दोनोंको त्याग देता है पुरुष यद्यपि निज शुद्धरूपसे दुःख रहित शुद्ध मुक्त है तथापि अविद्यासे पुरुषमें दुःख सुख होते हैं अविद्यासे रहित ज्ञान प्राप्त होनेकी अवस्थामें संसारी दुःख सुखसे रहित आनन्दमय मुक्तरूप होता है यथा यह कहा है

"न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्य भावस्य तद्योगस्तद्योगादृते ।"

अर्थ-नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त पुरुषको प्रकृतिके संयोग विना बंध व दुःखका संयोग नहीं है तिससे अविद्या भ्रमसे यथा स्फटिक शुद्ध शुक्ल रूप होताहै परंतु अरुण रूप आदि संयुक्त द्रव्यके प्रतिबिंबसे उसीके रूपसे भासित होता है इसी प्रकारसे उपाधि द्वारा पुरुषमे दुःख भोगका सम्बंध होता है इसके निवृत्त होनेको पुरुषार्थ कहना यथार्थ है, संक्षेपसे

यहाँ वर्णन किया गया है विस्तारसे आगे वर्णन किया जायगा ॥ १ ॥ अब प्रश्न यह है कि दुःखकी निवृत्तिके अर्थ ज्ञानकी क्या आवश्यकताहै लौकिक उपायसे दुःख निवृत्त होजायगा. उत्तर–

नदृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥ २ ॥

निवृत्त होजानेपरभी फिर अनुवृत्ति देखनेसेदृष्टपदार्थसे उसकी (दुःख निवृत्तिकी) सिद्धि नहीं होती ॥ २ ॥

धनका दुःख धनकी प्राप्तिसे व प्रियके वियोगका दुःख प्रियके संयोगसे नष्ट होजाता है परन्तु कालान्तरमे फिर धनके क्षयसे व प्रियके बियोगसे दुःख प्राप्त होताहै इसी प्रकारसे जिस जिस संसारदुःखका नाश होना देखा जाता है उस दुःखकी फिर प्राप्ति होती है अत्यन्त दुःखकी निवृत्ति नहीं होती तिससे दृष्टसे अर्थात् जे उपाय लोकमें देखनेमें आते हैं उनसे दुःखकी निवृत्ति होना सिद्ध नहीं होता ज्ञानहीसे अत्यन्त दुःख निवृत्त होना सिद्ध होता है ॥ २ ॥

प्रात्याहिकक्षुत्प्रतीकारवत्तत्प्रतीकारचेष्टनात्पुरुषार्थत्वम् ॥ ३ ॥

प्रतिदिन क्षुधा निवारणके तुल्य उसके (दुःखके) निवारणका उपाय वा खोज करनेसे पुरुषार्थ होना सिद्ध नहीं होता ॥ ३ ॥

सिद्ध नहीं होता यह अर्थ इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे सिद्ध न होनेकी अनुवृत्ति आनेसे ग्रहण किया जाता है। दृष्ट उपायसे पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता और जो होता है वह क्षुधा निवृत्त होनेके समान होता है यथा प्रति दिन भोजनसे क्षुधा निवृत्त होजाती है निवृत्त होनेके समयमे क्षुधाका दुःख दूर हो जाता है परंतु फिर प्राप्त हो जाता है यथा क्षुधा दुःख निवारण कियेगयेकी फिर अनुवृत्ति होती है इसी प्रकारसे धन अर्जन आदिमें

जानना चाहिए ऐसा दृष्ट साधन जो मन्द पुरुषार्थके लिये है ज्ञानवानको त्याग करनेके योग्य है यह आगे सूत्रमें कहा है ॥ ३ ॥

सर्वासंभवात्संभवेपिसत्तासंभवाद्धेयःप्रमाणकुशलैः ॥ ४ ॥

सब असंभव होनेसे संभव होनेपरभी सत्तासंभव होनेसे प्रमाणमें जे कुशल (प्रवीण) हैं उनको त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

दृष्ट साधनसे जो दुःखका दूरहोना है उसमें सर्वथा दूरहोना असंभवहै और जो संभव है उसमेंभी दुःखसत्ताका रहना संभव है अर्थात् प्रतिग्रह पाप आदिसे उत्पन्न दुःख अवश्य होता है इससे प्रमाणके जाननेमें जे प्रवीण हैं उनसे वह त्यागहीके योग्यहै अर्थात् संसार सुख जिसके लिये मूर्ख तन मनसे उपाय करते हैं व उसके वश होते हैं वह अंतमें नाशको प्राप्त होनेवाला व दुःख परिणामरूप है इससे ज्ञानवान्को त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

उत्कर्षादपिमोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः ॥५॥

मोक्षके उत्कर्षसेभी सबसे उसके उत्कर्ष (श्रेष्ठत्व) होनेमें श्रुति प्रमाण होनेसे ॥ ५ ॥

उत्कर्ष उच्चता वा उत्तमताको कहते हैं दृष्ट साधनसे सिद्ध करनेके योग्य जो राज्य आदि हैं उनसे मोक्षका उत्कर्ष होनेसे अर्थात् मोक्षकी श्रेष्ठता होनेसेभी यह निश्चित होता है कि सब राज्य आदिक सांसारिक सुखमें दुःख है मोक्षही सुखरूप, इष्ट व साध्य पदार्थ है सबसे मोक्षके उत्कृष्ट होनेमे श्रुति प्रमाण है श्रुतिमें कहा है ॥

"नहवैसशरीरस्यसतःप्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति ।"

अर्थ–निश्चय करिकै जो शरीरवान् है उसके दुःख सुखका नाश नहीं है

"अशरीरंवावसन्तंप्रियाप्रियेनस्पृशतः।"
अर्थ-शरीर रहित वा शरीर अभिमान रहित जो मुक्तरूप सन्त है उसको दुःख सुख स्पर्श न नहीं करते अर्थात् नहीं होते ॥ ५ ॥ अब यह प्रश्न है कि जो दृष्ट साधनसे सर्वथा दुःखका नाश नहीं होता तौ वेद विहित यज्ञ आदि कर्मसे होजायगा. उत्तर-

अविशेषश्चोभयोः ॥ ६ ॥

दोनोंका विशेष (भेद) नहीं है ॥ ६ ॥

दोनोंका अर्थात् दृष्ट जो लोकमें देखनेमें आता है व अदृष्ट जो यज्ञ साधन धर्म फल वेद विहित देखनेमें नहीं आता इन दोनोंका जैसा कहागया है अत्यन्त दुःखकी निवृत्तिके साधक न होनेमें विशेष नहीं है अर्थात् दोनों एकही समान हैं अत्यन्त दुःखकी निवृत्ति यज्ञ आदि फलसे भी नहीं होती मोक्षके साधक होनेमें विवेक होनाही मुख्य उपाय है विवेकसे अविवेक जो दुःखका हेतु है उसीके नाशसे दुःख मात्रका नाश होता है अन्यथा नहीं होता ॥ ६ ॥

नस्वभावतोबद्धस्यमोक्षसाधनोपदेशविधिः॥७॥

स्वभावसे बँधेहुयेको मोक्ष साधनके उपदेशकी विधि नहीं है ॥ ७ ॥

अत्यंत दुःख निवृत्तिको जो मोक्ष वर्णन किया है इसमें बंधन केवल दुःखका योग है पुरुषमें दुःख बंध स्वाभाविक नहीं है जो स्वभावसे बँधा है तौ उसको मोक्ष साधनके उपदेशकी विधि नहीं होसकती क्योंकि स्वाभाविक धर्मका जबतक द्रव्य है तबतक नाश नहीं होसकता द्रव्यके नाश से उसका नाश होसकता है अन्यथा नही होसकता यथा स्वाभाविक उष्णता (गरमी) का अग्निसे भिन्न होना संभव नहीं होता इसी प्रकारसे स्वाभाविक बंध होनेसे पुरुषका मोक्ष होना संभव नहीं होसकता इससे पुरुषमें बंध स्वाभाविक नहीं है ॥ ७ ॥

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षण मप्रामाण्यम् ॥ ८ ॥

स्वभावके नाशवान् न होनेसे (अविधि स्वरूप) अर्थात् विधिरहित रूप अप्रामाण्य प्रमाण रूप न होना होगा॥अननुष्ठान लक्षण ॥९॥

स्वभाव नाशवान् न होनेके हेतुसे मोक्ष असंभव होनेसे श्रुतिमें जो मोक्ष साधनका उपदेश है उससे अनुष्ठानके लक्षण युक्त न होनेसे प्रामाण्य होगा अर्थात् जब स्वाभाविक बंधसे मोक्ष असंभव होनेके कारणसे श्रुतिसे उपदेश किये गये मोक्ष साधनका, अनुष्ठान नहीं होसकता तौ अनुष्ठान लक्षण रहित, होनेसे श्रुतिमें जो मोक्षका उपदेश है वह प्रमाणके योग्य होनेसे उसके विरुद्ध स्वाभाविक बंध मानना प्रमाणके योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ श्रुतिमें वर्णन किए जानेसे अनुष्ठान किया जावै जो ऐसा माना जावै तौ उत्तर यह है जैसा आगे सूत्रमें कहा है ॥

नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेप्यनुपदेशः ॥ ९ ॥

जो नहीं हो सकता उसमें उपदेश विधि नहीं है उपदेश कियेगयेमेंभी उपदेश नहीं है ॥ ९ ॥

जिसका होना संभव नहीं है उसके उपदेशकी विधि नहीं है और जो उसका उपदेश किया जाय तौ भी निष्फल होनेसे वह उपदेश नहीं है ॥९॥

शुक्लपटवद्बीजवच्चेत् ॥ १० ॥

शुक्लपटके समान वा बीजके समान होवै ॥ १० ॥

अब यह शंका है कि स्वाभाविक शुक्लपटकी शुक्लतारंगसे व बीजकी स्वाभाविक अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्ति अग्निमें पक जानेसे दूर होजाती है इसी प्रकारसे पुरुषका स्वाभाविक बंधन दूर होजाना संभव है जो ऐसा माना जावै ॥ १० ॥ उत्तर–

शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यांनाशक्योपदेशः ॥ ११ ॥

शक्तिके उत्पन्न होने व न उत्पन्न होनेसे जो नहीं होसकता उसका उपदेश नहीं है ॥ ११ ॥

जो शुक्लपट व बीजका दृष्टांत दियागया है वह युक्त नहीं है इससे यथार्थ नहीं है आशय यह है कि पट व बीजमें शुक्लता व अंकुर उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव नहीं होता केवल प्रकटता व अप्रकटता होती है धोबीके व्यापार व योगीके संकल्पसे अरुणपट आदिमें व भुजे हुए बीजमें फिर शुक्लता व अंकुर उत्पत्तिकी शक्ति प्रकट होती है इसी प्रकारसे पुरुषमें दुःख शक्तिका तिरोभाव (प्रकट न रहना) मोक्ष नहीं है दुःखका अत्यन्त निवृत्त होना मोक्ष है इससे दृष्टांत युक्त नहीं है ॥ ११ ॥

नकालयोगतोव्यापिनोनित्यस्य सर्वसम्बंधात् ॥ १२ ॥

व्यापक नित्यके सबमें सम्बंध होनेसे कालयोगसे नहीं है ॥ १२ ॥

जो स्वाभाविक पुरुषमें बंध न मानाजाय काल निमित्तसे मानाजाय तौ उत्तर यह है कि काल योगसे पुरुषको बंध नहीं है क्योंकि काल व्यापक नित्यका मुक्त व अमुक्त सबमें सर्वदा सम्बंध रहता है सबमें सम्बंध रहनेसे मुक्त पुरुषोंको भी बंधन होना चाहिये मुक्त होनाही असंभव होना चाहिए परन्तु ऐसा होना प्रमाण विरुद्ध होनेसे काल सम्बंधसे पुरुषका बंधन होना सिद्ध नहीं होता पुरुषमें बंधन केवल मिथ्या बुद्धि उपाधिसे होता है ॥ १२ ॥

नदेशयोगतोप्यस्मात् ॥ १३ ॥

इसी हेतुसे देश योगसेभी नहीं है ॥ १३ ॥

इसी हेतुसे जो काल योगमें कहा गया है अर्थात् देशकाभी मुक्त व अमुक्त सबमें सदा सम्बंधसे देश योगसे पुरुषका बंधन होना सिद्ध नहीं होता, नहीं मुक्त पुरुषको भी बंधन होना चाहिए ॥ १३ ॥

नावस्थातोदेहधर्म्मत्वात्तस्याः ॥ १४ ॥

अवस्थाके देह धर्म होनेसे अवस्थासे नहीं है ॥ १४ ॥

यदि अवस्थासे पुरुषका बंधन होना माना जावै तौ अवस्थासे बंधन नहीं होसकता क्यों नहीं हो सकता उसके देह धर्म होनेसे अर्थात् अवस्थाके देह धर्म होनेसे अवस्था जड़ देहका धर्म है पुरुषका धर्म नहीं है अन्यका धर्म अन्यके बंधनका कारण नहीं हो सकता जो अन्यके धर्मसे अन्यका बंधन होना माना जावै तौ मुक्तका भी बंधन होना सिद्ध होगा १४

असंगोयंपुरुषइति ॥ १५ ॥

यह पुरुष संगरहित है ॥ १५ ॥

पुरुषमें भी अवस्था अंगीकार करनेसे क्या दोष है उत्तर यह है कि पुरुष (आत्मा) संग रहित है जो यह कहा जाय कि देह व पुरुषका संयोग है पुरुष संग रहित कैसे हो सकता है तौ संयोग मात्रसे संग नहीं होता यथा कमलपत्रमें जलका संयोग होता है परन्तु कमलपत्रमें उसका संग अर्थात् मेल नहीं होता इसी प्रकारसे पुरुष असंग है ॥ १५ ॥

नकर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च ॥ १६ ॥

अन्यका धर्म होनेसे व अति प्रसक्तिसे कर्मसे नहीं है अर्थात् बंध नहीं है ॥ १६ ॥

धर्म अधर्म कर्मसे पुरुषका बंध मानाजावै तो कर्मसे भी पुरुषका बंध होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि कर्म पुरुषका धर्म नहीं है अन्यका धर्म है अर्थात् अंतःकरण चित्तका धर्म है अन्यके धर्मसे अन्यके बंध होनेमें मुक्त पुरुषका भी बंध होना संभव होगा जो यह कहा जाय कि अपने अपने उपाधिके कर्मसे बंध अंगीकार करनेमें यह दोष न होगा

इससे दूसरा हेतु यह कहा है कि अति प्रसक्तिसे, अर्थात् कर्म बंधनके अति-संयोग होनेसे भी कर्मसे पुरुषका बंध होना नहीं सिद्ध होता क्यों कि कर्म संस्कार प्रलयमें भी बना रहता है परन्तु कारणमात्रमें लयको प्राप्त रहनेसे दुःख सुखके बोधका हेतु नहीं होता कर्मसे बंध माननेमें प्रलय आदिमें भी दुःख योगरूप बंधकी प्राप्ति होगी परन्तु ऐसा होना प्रमाणसे सिद्ध न होनेसे कर्मसे बंध नहीं है जो सहकारी कालके विलंबसे प्रलयमें विलम्ब होना कल्पना किया जाय तौ कालके हेतु न होनेका पूर्वही प्रतिषेध करादिया गया है ॥१६॥ जो काल आदि कोई पुरुषके बंधके हेतु नहीं हैं तो चित्तहीको दुःख योगरूप बंध मानना चाहिए पुरुषका बंध क्यों कल्पना किया जाता है—और विना बंध मोक्षका भी प्रयोजन नहीं है उत्तर—

विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे ॥ १७॥

अन्यके धर्म होनेमें विचित्र भोगकी सिद्धि वा प्राप्ति नहींहोगी

दुःखयोग रूप बंध चित्त मात्र जो पुरुषसे अन्य है उसके धर्म होनेमें विचित्र भोगकी प्राप्ति न होगी अर्थात् अन्यके धर्म होनेमें विना पुरुषके योग पुरुषमें दुःख भोग होना माननेमें नियामकका अभाव होगा नियामकके अभाव होनेमें सब पुरुषोंके दुःख सब पुरुषोंके भोगके योग्य होंगे यह दुःखका भोक्ता है यह सुखका भोक्ता है यह भोग होनेका विचित्र भेद जो अनेक पुरुषोंमें होता है न होना चाहिये विचित्र भोग सिद्ध होनेसे भोगके नियामक होनेसे दुःख आदि योगरूप जो बंध है वह पुरुषमें भी अंगीकार करनेके योग्य है पुरुषमें बंध चित्तवृत्तिके उपाधिसे है स्वाभाविक नहीं है व चित्तहीका बंध व मोक्ष है पुरुषका नहीं है चित्तके योगसे पुरुषका भी बंध व मोक्ष कहा जाता है ॥ १७ ॥

प्रकृतिनिबंधनाच्चेन्नतस्या अपि पारतन्त्र्यम् ॥

प्रकृतिके निमित्तसे होवै नहीं उसके भी परतंत्र होसेसे १८॥

जो प्रकृतिके निमित्तसे बंध माना जावै तो नहीं हो सकता क्योंकि उसके बंधके निमित्त होनेमें भी उसका व पुरुषका संयोग होना परतंत्र (परके आधीन) है प्रकृतिके आधीन नहीं है आगे इसका वर्णन किया जायगा प्रकृतिके आधीन न होनेसे प्रकृति निमित्तसे भी बंध होना सिद्ध नहीं होता यद्यपि प्रकृति स्वतंत्र बंधका कारण नहीं है परन्तु उपाधिसे प्रकृतिका संयोगही बंधका हेतु है जैसा कि सूत्रका २आगे इस सूत्रमें कहा है ॥ १८ ॥

नानित्यशुद्धबुद्धं मुक्तस्वभावस्य तद्योगस्त-द्योगादृते ॥ १९ ॥

नित्यशुद्ध चेतन मुक्त स्वभावका उसके योग रहित होनेमें उसका योग नहीं है ॥ १९ ॥

उसके अर्थात् प्रकृतिके योग रहित होनेसे नित्य शुद्ध चेतन मुक्त स्वभाव पुरुषको उसका योग नहीं है अर्थात् बंधका योग नहीं है अभिप्राय यह है कि जब तक प्रकृतिका योग है तभीतक उपाधिसे पुरुषका बंध होना ज्ञात होताहै यह सूत्र विशेष वर्णनके योग्य है परंतु आगे ग्रंथमें विशेष व्याख्यान किया है इससे यहाँ विस्तार करनेकी आवश्यकता न जानकर संक्षेपही वर्णन किया है पूर्व वर्णनसे बंधन न स्वाभाविक है न नैमित्तिक है केवल उपाधिसे है जैसे अग्निसंयोगसे जलमें गरमी होती है इसी प्रकारसे पुरुषमें औपाधिक बंध है व दीपकी शिखाओंकी सदृश चित्तकी वृत्तियां जो दुःखकी कारण हैं उनके नाश होनेसे उनके धर्म दुःख इच्छा आदिकोंका नाश होना संभव होता है प्रकृतिके वियोगसे पुरुषके औपाधिक बंधका अभाव होजाता है व संयोगका निवृत्त होना यही मुक्तिकी प्राप्ति व बंधकी हानिका उपाय है ॥ १९ ॥ अब जे अद्वैतवादी अविद्या मात्रसे बंध मानते हैं उनके मतके खण्डनमें वर्णन करते हैं ॥

नाविद्यातोऽप्यवस्तुना बंधायोगात् ॥ २० ॥

अवस्तुसे बंध योग न होनेसे अविद्यासे भी नहीं है ॥ २० ॥

यथा पूर्वोक्त काल आदिके सम्बंधसे नहीं है तथा अविद्यासे पुरुषका बंधनही है क्योंकि अविद्या कोई वस्तु नहीं है अवस्तुसे बंध योग नहींहो सकता यथा स्वप्नकी रस्सीसे बंध होनेका प्रत्यक्ष नहीं होता तथा स्वप्नवत् अविद्यासे पुरुषका बंध नहीं है ॥ २० ॥

वस्तुत्वे सिद्धांतहानिः ॥ २१ ॥

वस्तु होनेमें सिद्धांतकी हानी है ॥ २१ ॥

जो अविद्या वस्तु होना अंगीकार किया जाय तौ जो अविद्याको अपने सिद्धांतमें अद्वैत वादीने मिथ्या माना है उसकी हानि है ॥ २१ ॥

विजातीयद्वैतापत्तिश्च ॥ २२ ॥

और विजातीयमें द्वैतकी सिद्धि है ॥ २२ ॥

जो अविद्या वस्तु होना अंगीकार किया जाय परन्तु क्षण मात्रके ज्ञान सन्तान होने व भ्रमरूप होनेसे विजातीय होना माना जाय तौ द्वैत होना सिद्ध होगा यह अद्वैत मतके विरुद्ध है इससे अविद्याका विजातीय मानना भी सिद्ध नहीं होता जो यह संशय होकि अविद्याभी ज्ञान विशेष रूप होनेसे अविद्याको विद्यासे विजातीय क्यों मानना चाहिये तौ विद्या ज्ञान रूप मुक्तिकी हेतु है व वासना रूप अविद्या बंधका हेतु है वासना ज्ञानसे विजातीय है इससे अविद्याका विजातीय होना सिद्ध है परंतु उक्त हेतुसे विजातीय मानना भी अद्वैत मतमें युक्त नही है ॥ २२ ॥

विरुद्धोभयरूपाचेत् ॥ २३ ॥

जो दोनो रूपसे मानीजाय तौ विरुद्ध होताहै॥२३॥

जो अविद्या सत व असत दोनों रूपसे मानी जाय तो विरुद्ध

होता है वही सत वही असत होना संभव नहीं है इससे दोनों रूपसे अविद्याका मानना युक्त नहीं है ॥ २३ ॥

नताद्दक्पदार्थाप्रतीतेः ॥ २४ ॥

प्रतीत न होनेसे उसप्रकारका पदार्थ नहीं है ॥ २४ ॥

उस प्रकारका जैसा कहागया है कि वही सत व असत दोनों हो ऐसा कोई पदार्थ होना प्रतीत न होनेसे ऐसा पदार्थ नहीं माना जासकता २४॥

नवयंषट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत् ॥ २५ ॥

वैशेषिक आदिके समान हम छः पदार्थके वादी नहिं है२५॥

यथा वैशेषिक आदि छः पदार्थ नियत संख्यासे पदार्थको कहते हैं तथा हम नहीं कहते संख्या नियम रहित होनेसे सत असतरूप अथवा सत असतसे विरुद्ध अविद्या पदार्थ माननेमें दोष नहीं है जो ऐसा कहा जावे तौ इसका उत्तर यह है ॥ २५ ॥

अनियतत्वेऽपिनायौक्तिकस्यसंग्रहो-ऽन्यथाबालोन्मत्तादिसमत्वम् ॥ २६ ॥

नियत न होनेमें भी युक्ति विरुद्धका संग्रह नहिं होता अन्यथा बालक व मतवाले आदिकी समानता होगी ॥ २६ ॥

नियत पदार्थ नहों तौ भी वही सत वही असत जो युक्तिसे विरुद्ध है उसका संग्रह नहीं हो सकता और जो संग्रह कियाजाय तौ यथा बालक व उन्मत्त युक्त अयुक्तका ग्रहण करताहै उसके संग्रहका कुछ प्रमाण नहीं है तथा यह भी माना जायगा ॥ २६ ॥ कोई नास्तिक कहते हैं बाह्य विषय क्षणिक है इनके वासनासे जीवको बंध है इसके उत्तरमें यह सूत्र वर्णन करते हैं ॥

नानादिविषयोपरागनिमित्ततोप्यस्य ॥ २७ ॥

इसको अनादि विषय वासनानिमित्तसे भी नहिं है ॥ २७ ॥

इसको अर्थात् इस पुरुष आत्माको जो अनादि विषयकी वासना हैं उनके निमित्तसे भी बंध होना संभव नहीं होता इसका हेतु आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २७ ॥

नबाह्याभ्यन्तरयोरुपरञ्ज्योपरञ्जक-भावोऽपिदेशव्यवधानात् स्त्रुघ्नस्थ-पाटलिपुत्रस्थयोरिव ॥ २८ ॥

देशके अन्तर होनेसे स्त्रुघ्नके रहनेवाले व पाटलि-पुत्रके रहनेवालेके समान बाह्य व अन्तर दोनोंमें उपरञ्ज्य व उपरञ्जक भाव नहिं होता॥२८॥

जो देहके अंतरदेश मात्रमें आत्माका होना व बाह्य विषयोंको आत्माके बंधका हेतु होना मानते हैं उनके मतके प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें यह हेतु वर्णन किया है कि देहके अन्तर स्थित जो आत्मा है उसका अंतरके विषयमें उपरंज्य व उपरंजक भाव होसकता है अन्तर व बाह्य दोनोंमें देशके अंतर होनेसे नहीं होसकता क्योंकि आत्मा देहके अंतरदेशमें है इससे दोनोंका आत्माके साथ संयोग नहीं होसकता संयोगहीसे वासना अर्थात् उपराग होना देखा जाता है जैसे मजीठ व वस्त्रके संयोग होनेसे व पुष्पके व स्फटिकके संयोग होनेसे उपराग होता है आत्मा व बाह्य विषयके साथ देशके अंतर होनेसे किसी प्रकारसे संयोग नहीं होसकता यथा स्त्रुघ्न (आगरा) व पाटलिपुत्र (पटना) के रहनेवालोंका संयोग नहीं होसकता जिस पदार्थमें प्रीति वा वासना हो उसको उपरंज्य व जिसको उसकी वासना वा प्रीतिहो उसको उपरंजक कहतेहैं जो यह कहाजाय कि यथा तुह्मारे मतमें विषय देशमें इंद्रियोंके जाने व विषय संयोग होनेसे उपराग होता है तथा हमारे मतमें विषय देशमें (जहाँ विषय हैं

वहाँ) आत्माके जाने व विषय संयोग होनेसे उपराग होना कहना योग्य है इसका उत्तर यह है ॥ २८ ॥

द्वयोरेकदेशलब्धोपरागान्नव्यवस्था ॥२९॥

दोनोंकेएकदेशमेंलब्धमेंउपरागहोनेसे व्यवस्थानहिंहोगी२९

जो आत्माका विषय देशमें जाना मानाजायगा तो दोनोंके अर्थात् बद्ध व मुक्त दोनोंके आत्माओंका एकही विषय देशमें लब्ध विषयमें उपराग होनेसे अर्थात् विषय उपरागके प्राप्त होनेसे बंध व मोक्षकी व्यवस्था (पृथक्ता) न रहैगी मुक्तकोभी बंधकी प्राप्ति होगी ॥ २९ ॥ अब पदार्थोंको क्षणिक माननेवालोंकी शंकाको वर्णन करते हैं।

अदृष्टवशाच्चेत् ॥ ३० ॥

अदृष्ट वशसे होवै ॥ ३० ॥

एकदेश सम्बंध होने व सम विषम संयोग होनेपरभी केवल अदृष्ट (संस्कार नियम) वशसे उपराग होता है यह मानाजावै तो इस शंकाका उत्तर यह है ॥ ३० ॥

नद्वयोरेककालायोगादुपकार्य्यो-पकारकभावः ॥ ३१ ॥

दोनोंमें एक कालके योग न होनेसे उपकार्य्य उपकारकभाव न होगा ॥ ३१ ॥

क्षणिक होनेसे कर्ता व भोक्ताके एककालमें न होनेसे दोनोंमें उपकार्य्य उपकारक भाव नहीं होसकता जिसका उपकार हो वा जो उपकारके योग्य हो वह उपकार्य्य है व उपकार करनेवाला उपकारक है क्यों उपकार्य्य उपकारक भाव नहीं होसकता वा नहीं होगा हेतु यह है कि कर्त्तानिष्ठ जो अदृष्ट है उससे भोक्तानिष्ठ विषय उपरागका होना संभव नही होता ॥ ३१ ॥ शंका—

पुत्रकर्मवदितिचेत् ॥ ३२ ॥

पुत्र कर्मके समान होवै ॥ ३२ ॥

यथा पितामें निष्ठ अर्थात् पितामें स्थित पुत्रके लिये जो कर्म है उससे पुत्रका उपकार होता है तथा व्यधिकरणके अदृष्टसे अर्थात् अन्य अधिकरणके अदृष्टसे विषय उपराग होवै यह माना जावै ॥ ३२ ॥ उत्तर–

नास्तिहितत्रस्थिरएकात्मायोगर्भाधानादिनासंस्क्रियते ॥ ३३ ॥

तिसमें जो गर्भाधान आदिसे संस्कारको प्राप्त होता है ऐसा स्थिर एक आत्मा नहिं है ॥ ३३ ॥

तिसमें अर्थात् क्षणिकवादी नास्तिकके मतमें गर्भाधानसे आरंभ करिकै जन्मपर्य्यंत स्थिर एक आत्मा नहीं है कि जो इस जन्मके पश्चात् कालके कर्मोंके अधिकारके लिये पुत्रइष्टि करिकै संस्कार कियाजाय इससे पुत्र इष्टि करिकैभी नास्तिक क्षणिकवादीके मतमें पुत्रका उपकार होना घटित नहीं होता व दृष्टांतभी असिद्ध है ॥ ३३ ॥

स्थिरकार्य्यासिद्धेः क्षणिकत्वम् ॥ ३४ ॥

स्थिरकार्य्यकी सिद्धि न होनेसे क्षणिक होना ॥३४॥

स्थिर कार्यकी सिद्धि न होनेसे बंधकाभी क्षणिक होना सिद्ध होता है दीपशिखाके समान नियत कारण वा अभाव कारणसे क्षणिक बंध है यह मानना चाहिये ॥ ३४ ॥ उत्तर–

नप्रत्यभिज्ञाबाधात् ॥ ३५ ॥

नहि प्रत्यभिज्ञासे बाधा होनेसे ॥ ३५ ॥

पूर्व जाने हुए पदार्थको वर्तमान कालमें जाननेसे यह वही है ऐसे ज्ञान होनेको प्रत्यभिज्ञा कहते हैं जो मैंने देखाथा उसीको मैं अब स्पर्श करताहूं

इस प्रत्यभिज्ञासे स्थिर होनेकी सिद्धि व क्षणिक होनेकी बाधा होनेसे पदार्थ क्षणिक नही हैं बंध घटपट आदिकी तुल्य स्थिर है व दीपशिखामें अनेक सूक्ष्म क्षणोंके योग होनेसे क्षणिक मानना केवल भ्रम है॥ ३५ ॥

श्रुतिन्यायविरोधाच्च ॥ ३६ ॥

श्रुतिवन्यायके विरोधसे भी ॥ ३६ ॥

श्रुतिवन्यायके विरोधसे भी किसीका क्षणिक होना नही पाया जाता श्रुतिमें कहा है।

सदेवसौम्येदमग्रआसीततमएवेदमग्रआसीत्।

अर्थ—हे सौम्य (प्रियदर्शन) यह संसार आगे (सृष्टिसे पहिले) भी सतहीथा पहिले यह तमही (तमरूपही)तथा अर्थात् सूक्ष्म कारण रूप व सूर्य आदिके प्रकाशसे रहित होनेसे अलक्ष्यथा इत्यादि श्रुतिसे क्षणिक होना सिद्ध नही होता औरकार्य कारणात्मक अखिल प्रपंचमें क्षणिक होना अनुमानके विरुद्ध होनेसे व असतसे सतका होना संभव न होनेसे क्षणिक होना प्रमाणसे सिद्ध नही है ॥ ३६ ॥

दृष्टांतासिद्धेश्च ॥ ३७॥

दृष्टांतसे क्षणिक होनेकी सिद्धि न होनेसे भी ॥ ३७ ॥

प्रदीप शिखा आदिके दृष्टांतमें अनेक सूक्ष्म क्षणोंके संयोग होनेसे क्षणिक होनेकी सिद्धि न होनेसे क्षणिक होनेका अनुमान नहीं होता ३७॥

युगपज्जायमानयोर्न कार्यकारणभावः ३८

एकवारभी दोके उत्पन्न होनेमें कार्यकारणभाव नहीं हो सकता ॥ ३८ ॥

पूर्व सत कारणसे कार्यकी उत्पत्ति होती है साथही दोनोंके उत्पन्न होनेमें कार्य कारण भाव नहीं हो सकता।विनाकारणके कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती क्रमसे अर्थात् कारणसे पीछे अन्य क्षणमें कार्यकी

उत्पत्ति माननेमें क्षणिक होना सिद्ध नहीं होता क्रमसे कार्यकारणभाव माननेपरभी क्षणिक वादीके मत्तसे कार्यका होना सिद्ध नहीं हो सकता क्यों सिद्ध नहीं होसकता यह आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ३८ ॥

पूर्वापाये उत्तरायोगात् ॥ ३९ ॥

पूर्वके नाशहोनेपर उत्तरका योग न होनेसे ॥ ३९ ॥

क्षणिक होनेमें पूर्व जो कारण है उसके नाश हो जानेपर उत्तर जो कार्य है उसका कारणके साथ योग न होनेसे उसकी उत्पत्ति होना व कार्यकारण भाव होना संभव नहीं होता क्योंकि उपादान कारणके अनुगत होनेहीसे कार्यका अनुभव होता है ॥ ३९ ॥

तद्भावेतदयोगादुभयव्यभिचारादपिन ॥ ४० ॥

उसके भावमें उसका योग न होनेसे दोनोंके व्यभिचारसेभी नहीं हो सक्ता ॥ ४० ॥

पूर्वभाव कालमें उत्तरका सम्बध नहीं है तौ दोनोंके व्यभिचारसे अर्थात् अन्वय व्यतिरेकके व्यभिचारसेभी कार्यकारण भाव नहीं हो सकता जब उपादान होता है तब उपादेयकी उत्पत्ति होती है और जब उपादान नहीं होता तब उपादेयकी उत्पत्तिका अभाव होता है इस प्रकारसे अन्वय व्यतिरेकहीसे उपादान उपादेयके कार्यकारण भावका ग्रहण होता है क्षणिक होनेमें दोनोंके क्रमिक होनेसे वह अन्वय व्यतिरेकके व्यभिचार होनेसे कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं होती ॥ ४० ॥

पूर्वभावमात्रे न नियमः ॥ ४१ ॥

पूर्वभावमात्रमें नियम नहीं है ॥ ४१ ॥

जो यह कहा जावै कि, निमित्त कारणकी तुल्य उपादान कारणका भी पूर्वभाव मात्र होनेसे कारण होना अंगीकार किया जावे इसके उत्तर

में यह सूत्र है कि पूर्वभाव मात्र होनेसे उपादान होनेका नियम नहीं है व निमित्त कारणोंकाभी पूर्वभाव मात्र होना विशेष नहीं है उसमें भी विशेष कार्यकारण भाव होनेकी आवश्यकता है ॥ ४१ ॥ कोई नास्तिक यह कहते हैं कि विज्ञानसे भिन्न वस्तु होनेके अभावसे बंधभी स्वप्नपदार्थकी तुल्य विज्ञान मात्र है इससे अत्यंत मिथ्या होनेसे बंध में कोई कारण नहीं है अब इस मतका खण्डन करते हैं ॥

न विज्ञानमात्रं बाह्यप्रतीतेः ॥ ४२ ॥

बाह्य की प्रतीति होनेसे विज्ञानमात्र नहीं है ॥ ४२ ॥

विज्ञान मात्रही तत्व नहीं है क्योंकि विज्ञानके समान बाह्य अर्थोंकीभी प्रतीति होती है ॥ ४२ ॥ बाह्य प्रतीत होनेका हेतु वर्णन करते हैं ॥

तदभावे तदभावाच्छून्यं तर्हि ॥ ४३ ॥

तौ उसके अभावमें उसके अभावसे शून्य है ॥ ४३ ॥

जो बाह्यका अभाव मानेंगे तौ उसके अभाव माननेमें शून्य रहिजायगा विज्ञानभी न रहैगा क्योंकि बाह्यके अभाव होनेसे विज्ञानके अभाव होनेका प्रसङ्ग है हेतु यह है कि, जब कुछ ज्ञेय होता है तब उसका विज्ञान वा ज्ञान होता है विनाज्ञेय विज्ञान नहीं कहा जा सकता इससे बाह्यके अभावमें विज्ञानके अभाव होनेसे शून्यही अर्थात् कुछ न रहना सिद्ध होगा जो यह कहा जावै कि विज्ञान मात्रकी सत्यता श्रुति स्मृतिमें कहा है तौ श्रुति स्मृतिका अभिप्राय केवल पारमार्थिकसत्तामें विज्ञानमय अवस्थामें बाह्यके प्रतिषेध करनेका है व्यवहारिक सत्ता सांसारिक दशामें नहीं है ॥ ४३ ॥

शून्यं तत्त्वं भावोविनश्यति वस्तु धर्मत्वाद्विनाशस्य ॥ ४४ ॥

शून्यही तत्वहै विनाशके वस्तु धर्म होनेसे भाव नाशको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

शून्य मात्र तत्व है क्योंकि सब भावका नाश होता है और जो विनाशी है वह स्वप्नवत् मिथ्या है इससे सब वस्तुका आदि अन्तमें अभाव मात्रहोने व मध्य (वर्त्तमान) में क्षणिक होनेसे बंध आदि पारमार्थिक नहीं हैं तौ किसको क्या बंधन है क्योंकि नाश होना वस्तु-का धर्म अर्थात् स्वभाव होनेसे स्वभाव विरुद्ध पदार्थ नहीं रह स-कता इससे नाश धर्म संयुक्त होनेसे स्वप्नवत् सत होनेका भ्रम मात्र है ॥ ४४ ॥

अपवादमात्रमबुद्धानाम् ॥ ४५ ॥

मूढोंका अपवादमात्र है ॥ ४५ ॥

शून्यका भाव होना व विनाशी होना यह मानना मूढोंका अपवाद मात्र है अर्थात् मिथ्यावाद है क्योंकि शून्यमें प्रमाण अंगीकार करनेमें प्रमाण अंगीकार करनेहीसे अभावकी हानि होगी व प्रमाण अंगीकार न करनेमें प्रमाणके अभावसे शून्यकीभी सिद्धि न होगी और नाशके कारणके अभावसे अवयव रहित द्रव्योंका नाश होना संभव न होनेसे कार्य्योंकाभी विनाश सिद्ध नहीं होता इससे निरवयव शून्यके भाव अंगी-कार करनेमें नाश होना व अभाव सिद्ध नहीं होता और क्षणिक विनाश हीका प्रपंच होना माना जावै तौ भी बंधका विनाशही पुरुषार्थ होना संभव होता है क्योंकि बंध क्लेशकी इच्छा क्षणमात्रभी कभी नहीं होती सदा बंध व क्लेश रहित होनाही अभीष्ट है ॥ ४५ ॥

उभयपक्षसमानक्षेमत्वादयमपि ॥ ४६ ॥

दोनों पक्षोंमें समानक्षेम होनेसे यहभी ॥ ४६ ॥

दोनों पक्षोंमें अर्थात् क्षणिक व बाह्यविज्ञानमें समान क्षेम होनेसे,

अभिप्राय यह है कि दोनोंमें खण्डनके हेतु एकही सम होनेसे यह भी अर्थात् विज्ञानमात्रका पक्षभी खंडित होता है क्षणिकपक्षके निरास (खण्डन) हेतु प्रत्यभिज्ञान सिद्ध होने आदि शून्यवादमें भी समान हैं तथा विज्ञानमात्र पक्षके निरासके हेतु बाह्यकी प्रतीति आदि शून्यवादमें समान हैं इससे दोनोंपक्षोंका समान विनाश है ॥ ४६ ॥

अपुरुषार्थत्वमुभयथा ॥४७॥

दोनों प्रकारसे पुरुषार्थ न होना ॥ ४७ ॥

दोनों प्रकारसे अपनेसे व परसे शून्यताका पुरुषार्थ होना संभव नहीं होता स्थिर सुख आदिकोंका पुरुषार्थ होना संभव है बंध कारण विषयमें इस प्रकारसे क्षणिकवादी व नास्तिकमतोंको दूषित किया है अब अन्य बंधकारणोंका जिनका पूर्वही खण्डन नहीं किया उनका प्रतिषेध किया जाता है ॥ ४७ ॥

न गतिविशेषात् ॥ ४८ ॥

गतिविशेषसे नहीं है ॥ ४८ ॥

जो यह कहा जावै कि जीवके गमन आगमनकी गतिविशेषसे पुरुषका बंध है तो गतिविशेष शरीरप्रवेश आदि रूपसे पुरुषका बंध नहीं है ॥ ४८ ॥ गति न होनेका हेतु वर्णन करते हैं।

निष्क्रियस्यतदसंभवात् ॥ ४९ ॥

क्रियारहितको वह असंभव होनेसे ॥ ४९ ॥

क्रियारहित विभु अर्थात् व्यापक व निरवयवपुरुषकी गति संभव नहीं है गति असंभव होनेसे गति विशेष कहना पुरुषमें नहीं होसक्ता ४९ अब यह शंका है कि श्रुतिस्मृतिमें इस लोक व परलोकमें गमन व आगमन सुना जाता है इससे पुरुष परिच्छिन्न व सावयव है निरवयव व विभु नहीं है। उत्तर—

मूर्तत्वाद्घटादिवत्समानधर्मापत्तावपसिद्धांतः ५०

मूर्त होनेसे घट आदिकी तुल्य, समानधर्म प्राप्त होनेमें विरुद्ध सिद्धांत होगा ॥५०॥

जो पुरुष परिच्छिन्न मूर्त्तिमान् अंगीकार किया जावै तौ यथा घट आदि मूर्त्तिमान अवयव संयुक्त होनेसे नाशको प्राप्त होते हैं तथा समान-धर्म होनेसे पुरुषकाभी नाश होगा और यह विरुद्ध सिद्धांत होगा इससे यह मानने योग्य नहीं है ॥ ५० ॥

गतिश्रुतिरप्युपाधियोग दाकाशवत्॥ ५१ ॥

उपाधिके योगसे आकाशकी सदृश गति-अर्थमें श्रुति है ॥ ५१ ॥

जो श्रुति पुरुषके गतिअर्थमें हैं वह उपाधियोगसे गति अर्थका वर्णन है यथा आकाश सर्वव्यापक है उसमें गतिका अभाव है परन्तु उपाधिसे घटके भीतर जो आकाश देख पडता है घट चलानेसे यह जान पडता है कि उसके भीतर जो आकाश है वह भी घटके साथ जाता है अर्थात् चलता है अथवा घटके लानेसे घटके साथ आता है यद्यपि घटमात्र चलता है आकाश नहीं चलता आकाश व्यापक निरवयव है सर्वत्र देख पडता है इसी प्रकारसे उपाधिवश शरीर आदि द्वारा पुरुषमें गति श्रुतिमें कहाहै प्रकृति क्रियारूपाहै उसमें घटकी तुल्य गतिका आरोपण होताहै ५१

नकर्मणाप्यतद्धर्मत्वात् ॥ ५२ ॥

कर्मकरकेभी नहीं उसका धर्म न होनेसे ॥ ५२ ॥

अदृष्टकर्मसेभी पुरुषका बंध नहीं है क्योंकि उसका अर्थात् पुरुषका धर्म नहीं है जो पुरुषका धर्म नहीं है उससे पुरुषका बंध नहीं हो सक्ता पूर्वमें विहित निषिद्ध व्यापाररूप कर्म करिके बंध होनेका खण्डन किया

गया है यहां अदृष्टसे होनेके भेदसे फिर वर्णन किया गया है इससे पुनरुक्त नहीं है ॥ ५२ ॥

अतिप्रसक्तिरन्यधर्मत्वे ॥ ५३ ॥

अन्यके धर्महोनेमें अतिप्रसक्ति होगी ॥ ५३ ॥

बंध व बंधकारण भिन्नके धर्महोनेमें अतिप्रसक्ति दोष होगा जिसमें प्रसंग न हो उसमेंभी प्रसंग मानना अतिप्रसक्ति वा अतिप्रसंग दोष कहा जाता है अतिप्रसक्ति दोषसे अर्थात् अन्यके कर्मसे अन्यको विना नियम बंध होना माननेसे मुक्तकाभी बंध हो जायगा यह मानने योग्य नहीं है ॥ ५३ ॥

निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्चेति ॥ ५४ ॥

और निर्गुण आदि श्रुतिका विरोध होगा ॥ ५४ ॥

बंध हेतु परीक्षाकी समाप्तिमें यह कहा है कि पूर्वोक्त हेतुसे किसी प्रकार पुरुषका बंध होना सिद्ध नहीं होता और विशेष हेतु यह है कि, निर्गुण आदि श्रुतिका विरोध है पुरुषबंध औपाधिक न माननेमें श्रुतिका विरोध होता है॥५४॥ श्रुति यह है।

साक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्च ॥

अर्थ—साक्षी चेतन केवल निर्गुण है इत्यादि श्रुतिके विरोधसे पुरुषमें स्वाभाविक बंध नहीं है सूत्रमें इतिशब्द बंध हेतुकी परीक्षाकी समाप्तिका सूचक है ॥ ५४ ॥

तद्योगोप्यविवेकान्नसमानत्वम् ॥ ५५ ॥

उसका योग भी अविवेकसे होनेसे समानत्व नहीं है॥५५॥

जो शंका करनेवाला यह शंका करै कि, प्रकृतिपुरुषके संयोगसे जो

पुरुषका बंध होता है वही स्वाभाविक माना जावै तौ स्वाभाविक मानने में जो दोष पुरुषमें स्वाभाविक बंध मानने अथवा काल आदिके निमित्तसे माननेमें मुक्तकाभी बंध होना सिद्ध होता है जैसा पूर्वही कहा गया है इसमेंभी समान दोषोंकी प्राप्ति होगी इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि उसका अर्थात् प्रकृतिका योग जो पुरुषमें है वह स्वाभाविक नहीं है अविवेक निमित्तसे है अविवेकसे होनेसे समानत्व नहीं होता अर्थात् समान दोष होना नहीं हो सक्ता विवेक होनेसे अविवेक व बंधका नाश होता है यह अविवेक मुक्तपुरुषोंमें नहीं होता अब यह शंका है कि प्रकृतिपुरुषके संयोगसे पहिले न होनेसे अविवेक प्रकृतिपुरुषका भेद-रहित साक्षात्कार होना नहीं है विवेकका प्रागूभाव है (किसी पदार्थके उत्पन्न होने वा प्रकट होनेसे पहिले जो उसका अभाव होता है उसको प्रागूभाव कहते हैं) और अविवेक होना यह बुद्धिका धर्म है पुरुषका धर्म नहीं है अन्यके धर्मसे अन्यमें संयोग होनेसे समान अतिप्रसंग दोषकी प्राप्ति है उत्तर–दोषकी प्राप्ति नहीं है क्यों कि विषयता सम्बंध-से अविवेकपुरुषका धर्म होना माना जाता है और जब विषय सम्बंध नहीं है सम्बंधके अभावसे प्रलयमें बंधका कारण नहीं होता तथा प्रकृति बुद्धिरूप हो जिस पुरुषके लिये विवेकसे पृथक् होकर प्रकट नहीं होती उसमें अपनी वृत्ति देखनेके अर्थ लिये उसीकी बुद्धिरूप करिके संयो-गको प्राप्त होती है ऐसी व्यवस्थासे अतिप्रसंग दोषका अभाव होता है जो यह संशय हो कि धर्माधर्म कर्मबंधके कारण मानना चाहिये तौ उत्तर– यह है कि अविवेकहीसे राग आदि व कर्मका सम्बन्ध होता है इससे अविवेकको मुख्य बंधका कारण माना है ॥ ५५ ॥

नियतकारणात्तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत् ॥ ५६ ॥

नियतकारणसे उसका नाश अंधकारके समान होताहै ॥ ५६ ॥

यथा अंधकार केवल प्रकाशसे जो उसके नाशका नियतकारण है

नष्ट होताहै तथा नियतकारण विवेकसे उसका अर्थात् अविवेकका नाश होता है ॥ ५७ ॥

प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्यतद्धानेहानम् ५७

प्रधानके अविवेकसे अन्यके अविवेककी प्राप्ति है व उसके नाश होनेमें नाश है ॥ ५७ ॥

पुरुषमें आदिकारण प्रधानका अविवेक है प्रधानके अविवेकसे अन्यके अविवेक अर्थात् बुद्धि आदिकोंके अविवेककी प्राप्ति होती है और प्रधानके अविवेक नाश होनेसे अन्यके अविवेकका नाश होताहै यथा शरीरसे आत्मा भिन्न है यह ज्ञान होनेमें, शरीरके कार्य जो रूप आदिक हैं उनमें अविवेक होना संभव नहीं होता तथा प्रधानसे पुरुषके पृथक् होनेके ज्ञान होनेसे प्रधानके कार्य परिणाम आदि धर्मवाले बुद्ध्यादिकोंमें अभिमानकी उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् कारणके नाश होनेसे जैसे जिस पटमें चित्रहै उस पटके त्यागसे चित्रका त्याग हो जाताहै इसी प्रकारसे प्रकृतिके कार्य बुद्धि आदिकोंमें अभिमानका त्याग हो जाता है ॥ ५७ ॥

वाङ्मात्रं न तु तत्वं चित्तस्थितेः ॥ ५८ ॥

चित्तमें स्थिति होनेसे कथनमात्र है तत्व नहीं है ॥ ५८ ॥

बंध आदिका स्थान चित्तहै बंध आदि सबकी चित्तमें स्थिति होनेसे पुरुषमें बंध आदि होना तत्त्व (यथार्थ) नहीं है केवल कथनमात्र है यथा स्फटिकका लाल होना प्रतिबिंबमात्रसे है तत्त्व नहीं है इसका विशेष वर्णन आगे ग्रंथमें किया है इससे यहां विशेष वर्णन नहीं किया ॥५८॥

युक्तितोऽपि न बाध्यते दिङ्मूढवदपरोक्षादृते५९

दिशाभ्रमको प्राप्तके समान मननसेभी विना साक्षात्कार हुये बाधाको नहीं प्राप्त होता ॥ ५९ ॥

यद्यपि कथनमात्र पुरुषको बंध आदिक हैं तथापि विना साक्षात्कार हुए श्रवण मननमात्रसे बाधाको नही प्राप्त होता अर्थात् नही छूटता जैसे जिसको दिशा भ्रम होता है उसको यद्यपि कथन मात्र दिशाका विपरीत होना होवै तत्वमें न होवै तथापि विना साक्षात्कार हुए श्रवण व युक्तिसे भ्रम नहीं छूटता ॥ ५९ ॥

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः॥ ६० ॥

अप्रत्यक्षपदार्थोंका अनुमानसे बोध होता है यथा धूम आदिसे अग्निका होताहै ॥ ६० ॥

जो यह शंका हो कि स्थूल पदार्थ तो नेत्रसे देखनेसे प्रत्यक्षसे ज्ञात होता है सूक्ष्मपुरुष प्रधान आदिका बोध किसप्रकारसे होता है इसके उत्तरमें यह कहा है कि जो अचाक्षुष हैं अर्थात् चक्षुसे दृश्य नहीं हैं अप्रत्यक्ष हैं उनका बोध अनुमान करिकै वा अनुमानसे होता है यथा धूमसे अग्निका बोध होता है अब प्रत्यक्षपदार्थ जो कारणरूप हैं व अनुमानसे जानने के योग्य हैं उनके कार्यरूप पदार्थोंको वर्णन करते हैं ॥ ६० ॥

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्महतोऽहंकारोऽहंकारात्पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः ॥ ६१ ॥

सत्वरजतम गुणोंकी सम होनेकी जो अवस्था है वह प्रकृति है प्रकृतिसे महत्तत्व होता है महत्तत्वसे अहंकार अहंकारसे उसके पांचमात्र व दो प्रकारकी

इन्द्रियां उसके मात्रोंसे पांच स्थूलभूत व पुरुष यह पचीस गण हैं ॥ ६१ ॥

सत्व-रज-तम-गुणोंकी सम होनेकी जो अवस्था है वह प्रकृति है प्रकृति कारणसे महत्तत्वकार्य होता है तथा महत्तत्वसे अहंकार अहंकारसे पांच उसके मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, व दो प्रकारकी इन्द्रियां दश बाह्य इन्द्रिय व ग्यारहवां अन्तरइन्द्रिय मन दश बाह्य इन्द्रियमें पांच ज्ञानइन्द्रिय कर्ण, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, व पांचकर्म इन्द्रिय हस्त, पाद, पायु, गुदा उपस्थ, लिंग वा योनि वाक् पांच उसके मात्रा कारणोंसे पांच स्थूलभूत आकाश, वायु, तेज, जल, व पृथिवी कार्य होते हैं चौवीस यह व पुरुष यह पचीस गण हैं अर्थात् यह पचीस पदार्थ हैं गुण कर्म सामान्य सब इनहींके अन्तर्गत है ॥ ६१ ॥

स्थूलात्पंचतन्मात्रस्य ॥ ६२ ॥

स्थूलसे पांच उसके मात्रका ॥ ६२ ॥

आकाश, वायु, जल, तेज, पृथिवीकी स्थूलभूत संज्ञाहै इन पांच स्थूल भूतकार्यसे उसके अर्थात् अहंकारके पांच मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, कारणरूपोंका अनुमान होता है यह सूत्रका भावार्थ है विभाग इनका यह है कि, आकाशसे शब्दका, वायुसे स्पर्शका, तेजसे रूपका, जलसे रसका, पृथिवीसे गंधका, अनुमान होताहै आकाशसे शब्दका अनुमान इससे होता है कि जिस स्थूलद्रव्यमें आकाश अधिक होता है उसमें शब्द अधिक होता है जिसमें न्यून है उसमें न्यून होता है यथा ढोलमें आकाश होनेके कारणसे शब्द होताहै और वही ढोलके भीतरके आकाशमें मृत्तिका आदि भर देनेसे वैसा शब्द नहीं होता जो कुछ शब्द होता है उसका कारण यह है कि सर्वथा आकाश रहित कोई स्थूल पदार्थ नहीं होसकता जो आकाश न होवे तौ धातु काष्ठ आदिमें कील आदि गड न सकैं न कील प्रवेश करनेमें कील प्रवेश करताहै उसके परमा-

णु दब सकें कि जिससे कीलके प्रवेश करनेको आकाश मिलै वायुसे स्पर्श-के अनुमान होनेका हेतु यह है कि आकाशमें स्पर्श शून्य होनेसे स्पर्श-का बोध नहीं होता सबसे सूक्ष्म जिसमें प्रथम स्पर्शका बोध होता है वह वायु है स्पर्शका आदिकार्य वायु है इससे वायुस्पर्शके अनुमानका हेतु है और जो जिससे स्थूल है उसमें उससे जो सूक्ष्मभूत हैं उसका गुण मिलारहता है यथा वायु आकाशसे स्थूल है इसमें आकाश जो इससे सूक्ष्म है उसका गुण शब्द मिला रहता है अर्थात् वायुमें स्पर्श विशेष गुण हैं परन्तु आकाशसे भिन्न वायुके न होनेसे शब्दभी वायुमें होता है तेजसे रूपका अनुमान इससे होता है कि विनातेज रूपका बोधनहीं होता अर्थात् शब्द स्पर्श रस गंध आकाश आदिके गुणोंसे रूपका बोध नहीं होता तेजहीसे रूपका प्रत्यक्ष होता हैं जलसे रस अर्थात् स्वादुके अनुमान होनेका हेतु यह है कि अकाश वायु तेजमें स्वादु नहीं है यह प्रत्यक्षसे सिद्ध है जलमें मीठा खारा स्वादु होनेका बोध होता है और मीठे खट्टे आदि जे फल है वह जबतक आर्द्र अर्थात् ओदे रहते हैं तब तक स्वादु अच्छा रहता है जब सूखजाते हैं तब वैसा स्वादु नहीं रहता जो यह कहा जावै कि, पृथिवीमें स्वादु गुण है और बहुत फलों में सूखनेमेंभी स्वादु रहता है तौ सूखे व बेसूखेमें सब फल व अन्य स्वादिष्ट पदार्थोंमें तुल्य स्वादु होना चाहिये क्यों कि सूखे व न सूखे-में जलकी न्यूनता व अधिकता होती है पृथिवीकी नहीं होती इससे जल की विशेषता है परन्तु पृथिवीमेंभी स्वादु गुण है क्योंकि यह प्रथमही कहा गया है कि, जो अधिकस्थूल है वह अपनेसे जो सूक्ष्म भूत हैं उसके गुण संयुक्त होता है इसीसे वायुमें शब्द स्पर्श कहा गया है तेजमें शब्द स्पर्श रूप तीन हैं जलमें शब्द स्पर्श रूप रस चार हैं व पृथिवीमें शब्द स्पर्शरूप रस गंध पांच हैं गंध पृथिवीका विशेष गुण है वायु, तेज जलमें गंध स्वाभाविक होना सिद्ध नहीं होता वायु तेज जलमें जो गंधका बोध होता है वह पुष्प वा अन्य गंधवान पदार्थके संयोगसे होता है इससे पृथिवी स्थूल कार्यसे सूक्ष्म कारण रूप गंधका अनुमान होता

है जो यह शंका हो कि जो पृथिवीमें गंध है तौ पृथिवीके कार्यरूप पत्थरमें क्यों गंधका बोध नहीं होता तौ उत्तर यह है कि स्थूल कठिन व दृढ होनेसे वायुके द्वारा उसके चूणु नासिकाके अंतर्गत नहीं होते न वायुमें उडसकते हैं उसके अति चुर्ण करने वा भस्म करनेसे वायु द्वारा उडके उसके अणु नासिकामें अंतर्गत होनेसे गंधका बोध होता है इससे दूषण नहीं हो सकता ॥ ६२ ॥

बाह्याभ्यन्तराभ्यांतैश्चाहंकारस्य ॥ ६३ ॥

बाह्य व अंतरोंसे व उनसे अहंकारका ॥ ६३ ॥

कार्यरूप बाह्य व अंतरके इन्द्रियोंसे अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा व उनसे अर्थात् उक्त पांच मात्रोंके द्वारा इनके कारण अहंकारका अनुमान होता है अर्थात् अहंकार अभिमानवृत्तिक अंतःकरण द्रव्य है जिससे मैं स्पर्श करता हूँ देखता हूं मेरे नेत्र मेरा शरीर इत्यादि यह बोध होता है इन्द्रियों व मात्रोंसे कर्ताको मैं ऐसा कर्ता हूं यह व यह मेरा है यह बोध होता है इससे इन्द्रिय व मात्रोंके द्वारा अहंकारका अनुमान होता है ॥ ६३ ॥

तेनान्तःकरणस्य ॥ ६४ ॥

उससे अंतःकरणका ॥ ६४ ॥

उससे अर्थात् उक्त अहंकार कार्यसे अथवा अहंकार कार्यके द्वारा मुख्य अंतःकरणका अर्थात् महत्तत्त्व नामक बुद्धिका अनुमान होता है विना बुद्धि अहंकारका होना संभव नहीं होता क्योंकि निश्चय बुद्धिकी वृत्ति है व अभिमान अहंकारकी वृत्ति है और अहंकार निश्चय वृत्ति पूर्वक होता है लोकमें प्रथम स्वरूप निश्चय करकै पश्चात् अभिमान होता है कि, यह मैंहूं हम करिकै यह करनेके योग्य है यह सिद्ध है अहंकार द्रव्यके कारणकी आकांक्षामें अभिमान व निश्चय वृत्तियोंके कार्य कारण भाव होनेसे उनके आश्रयोंकाभी अर्थात् अहंकार व बुद्धिकाभी कार्य

कारण भाव कल्पना किया जाता है क्योंकि कारण वृत्तिके लाभके साथ ही कार्य वृत्ति लाभ होनेका सम्बध है अर्थात् कारण वृत्तिकी उपलब्धि नहीं होती यद्यपि अंतःकरण एकही है परन्तु वृत्तिभेदसे भिन्न नामभेद-से कहा जाता है चिन्ता वृत्तिक चित्त व अहंकार दोनों बुद्धिके अंतर्भाव है ॥ ६४ ॥

ततःप्रकृतेः ॥ ६५ ॥

उससे प्रकृतिका ॥ ६५ ॥

उससे अर्थात् महत्तत्त्व कार्यसे अनुमान द्वारा कारण प्रकृतिका बोध होता है क्योंकि सामान्य अंतःकरणकाभी एकसमयमें पंच इन्द्रि-योंका ज्ञान उत्पन्न न होनेसे देह आदिकी तुल्य मध्यम परिमाण व नाश धर्म संयुक्त कार्य होना सिद्ध होता है. सुख दुःख मोह धर्मिणी बुद्धि है कार्यरूप बुद्धिका विनाकारण उत्पन्न होना संभव नहीं होता क्योंकि का-रण रहित कार्य नहीं होता व कारण गुणके अनुसार कार्य गुण होना उचित है इससे सुख दुःख मोह धर्मके कारण जो प्रकृति शब्दसे वाच्य है उससे महत्तत्व नामक बुद्धिकार्यके उत्पन्न होनेका अनुमान होता है और बुद्धि कार्यरूप बोधगत होनेसे उससे उसके कारण प्रकृतिका अनुमान होता है यह भाव है प्रकृतिका विशेष वर्णन आगे किया जायगा ॥ ६६ ॥

संहतपरार्थत्वात्पुरुषस्य ॥ ६६ ॥

आरंभक संयोग परके अर्थ होनेसे पुरुषका ॥ ६६ ॥

आरंभक संयोग अवयव अवयवी भेद न होनेसे साधारण प्रकृतिका कार्य है प्रकृति व प्रकृतिकार्य्योंका परके अर्थ होनेके अनुमानसे पुरुष-का बोध होता है प्रकृति महत्तत्व आदिका अपनेसे भिन्न शय्या आसन आदिकी तुल्य परके भोग अपवर्ग फल देनेवाले संहत अर्थात् आरंभक

संयोग करनेसे अनुमान करके प्रकृतिसे पर आरंभक संयोग रहित पुरुष सिद्ध होता है पुरुषका भी संहत होना माननेमें अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी पुरुषके माननेहीकी क्या आवश्यकता है जो यही माना जावै कि प्रकृति आदि अपने सुख आदि भोगके अर्थ संहत किया है तौ इसके साक्षात् अपने जानने योग्य पदार्थमें कर्म कर्ताका विरोध होगा क्योंकि प्रकृति स्वयं ज्ञानरूप नहीं है पुरुषके योगसे प्रकृतिमें बुद्धि उत्पन्न होती है विनास्वयं प्रकाशमान व ज्ञान धर्मवान् होनेके मैं सुखी हूं यह सुखज्ञान होना संभव नहीं होता स्वयं यह बोध करनेवाला जो है वह पुरुष है इसका विशेष भेद आगे वर्णन किया जायगा अब प्रथम प्रकृति के नित्य होने व सबके कारण होनेके विषयमें वर्णन किया जाता है ॥ ६६ ॥

मूलेमूलाभावादमूलंमूलम् ॥ ६७ ॥

मूलमे मूलके अभावसे मूल रहित्त मूल है ॥ ६७ ॥

पुरुषको छोडके प्रकृति सहित चौवीस तत्त्व है प्रकृतिसे इतर जे २३ तेईस तत्व हैं उन सबका मूल प्रधान हैं अर्थात् प्रकृति है प्रधानका मूल कुछ नहीं है इससे मूल प्रधानमें मूलका अभाव है अभाव होनेसे मूल रहित मूल है अर्थात् प्रधान मूल रहित है जो प्रधानका भी मूल माना जाय तो इसी प्रकारसे एक एकका मूल माननेसे अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी जो यह कहा जाय कि प्रकृति मूल कारण नहीं है अवि-द्या संसारका मूल कारण है तौ इसका उत्तर यह है ॥ ६७ ॥

पारम्पर्य्येऽप्येकत्रपरिनिष्ठेतिसंज्ञामात्रम् ॥६८॥

परम्परा होनेमें एकमें परिनिष्ठा होगी प्रकृति यह संज्ञामात्र है ॥ ६८ ॥

अविद्या द्वारा परम्परा करके पुरुषके जगत्के मूल कारण होनेमेंभी

पुरुषके परिणामी न होनेसे अविद्यामें अथवा किसी एक नित्य जगत् कारणमें परम्पराकी परिनिष्ठा अर्थात् पर्य्यवसान होगा जिसमें पर्य्यवसान (सबका अंत) होगा वही नित्य प्रकृति है अर्थात् मूल कारणकी प्रकृति संज्ञा है इससे प्रकृति शब्द यह संज्ञा मात्र है ॥ ६८ ॥

समानःप्रकृतेर्द्वयोः ॥ ६९ ॥

प्रकृतिके विचारमें दोनोंका समान पक्ष है ॥ ६९ ॥

विचारमें व पक्ष ये शब्द सूत्रके अर्थमें सूत्रके शब्दसे भाषामें अधिक कहे गए हैं व अधिक कहनेका हेतु यह है कि, सूत्रके शब्दोंमात्रका भाषामें अनुवाद करनेसे सूत्रका भाव व्यक्त न होता प्रकृतिके विचारमें अर्थात् प्रकृतिके मूल कारण होनेके विचार करनेमें दोनोंका अर्थात् वादी व प्रतिवादी दोनोंका समान पक्ष है जब जिसमें परम्पराका पर्य्यवसान होवै वही प्रकृति है यह कहा गया तौ अविद्याके मूलकारण माननेमेंभी पक्ष भेद नहीं रहता पक्ष भेद न रहनेसे दोनोंका समान पक्ष है जो यह कहा जाय कि अविद्या पचीस गणोंमें नहीं कहा इससे पचीससे अधिक तत्व मानना चाहिये तौ अविद्या मिथ्याज्ञानरूप बुद्धि धर्म है व बुद्धि प्रकृतिका कार्य है इससे अविद्या प्रकृति व बुद्धिके अंतर्गत है अथवा ज्ञानका अभाव मात्र है इससे अधिक तत्व नहीं है (प्रश्न) कहीं प्रकृतिका भी पुरुषसे उत्पन्न होना सुना जाता है इससे प्रकृति मूल कारण नहीं है (उत्तर) प्रकृतिका पुरुष संयोगसे जगत् उत्पत्तिमें समर्थ होना रूप प्रकट होना गौण उत्पत्ति वर्णन करनेसे प्रयोजन हैं संयोग लक्षणरूप उत्पत्तिको कहा है ॥ ६९ ॥ जो प्रकृति पुरुष अनुमानसे जाने जाते हैं तौ सबहीको क्यों विवेक मननसे उत्पन्न नहीं होता. उत्तर–

अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ॥ ७० ॥

अधिकारीके त्रिविध होनेसे नियम नहीं है ॥ ७० ॥

मन्द, मध्यम, उत्तम तीन प्रकारके अधिकारी होते हैं अधिकारियोंके त्रिविध होनेसे सबको मनन करनेका नियम नहीं है क्यों कि मन्द जो कुतर्क युक्तिसे अनुमान करता है वह ग्रहण योग्य नहीं होता मध्यम भी सत पक्षका यथार्थ ग्रहण नहीं कर सक्ता इससे केवल उत्तम अधिकारियोंको इस प्रकारका मनन होता है यह भाव है प्रकृतिका स्वरूप गुणोंका सम भाव होना पूर्वही वर्णन किया गया है व सूक्ष्म भूत आदिक प्रसिद्ध हैं अब रहे महत्तत्व अहंकार इन दोका स्वरूप वर्णन करते हैं७०

महदाख्यमाद्यंकार्यंतन्मनः ॥ ७१ ॥

महत्तत्व नामसे जो आदिकार्य है वह मन है ॥७१॥

प्रकृतिका आदि कार्य अर्थात् प्रथम कार्य महत्तत्व है वह महत्तत्व मनन वृत्ति युक्त मन है मननका यहां निश्चय अर्थ है निश्चय करनेवाली बुद्धि वृत्ति मन है यह अर्थ हैं ॥ ७१ ॥

चरमोऽहङ्कारः ॥ ७२ ॥

उसके पश्चात् अहङ्कार है ॥ ७२ ॥

उसके अर्थात् मनके पश्चात् अभिमान वृत्ति संयुक्त जो कार्य है वह अहंकार है ॥ ७२ ॥

तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम् ॥ ७३ ॥

उसका कार्य होना उत्तर वालोंका ॥ ७४ ॥

उत्तरवाले जो अहंकारके पश्चात् पांच मात्रा आदि कहे गए हैं उन सबोंका उसका अर्थात् अहंकारका कार्य होना सिद्ध होता है अर्थात् सब अहंकारके कार्य हैं ॥ ७३ ॥

आदिहेतुतद्द्वारापारम्पर्य्येप्यणुवत् ॥७४॥

आद्यकी हेतुता उसके द्वारा परम्पराभावमेंभी अणुके तुल्यहै ॥ ७४ ॥

जो आदिमें सबके प्रथम होवे वह आद्य है वह आद्य प्रकृति है परम्परा भावमेंभी अर्थात् साक्षात् हेतु न होनेमेंभी आद्य प्रकृतिकी हेतुता अहंकारआदिमें महत्तत्वके द्वारा है यथा वैशेषिक मतमें अणु समूहकी घटआदि हेतुता द्व्यणुकआदिकी द्वाराही होती है ॥ ७४ ॥ (प्रश्न) जब प्रकृति पुरुष दोनों नित्य हैं तब केवल प्रकृतिके कारण होनेमें क्या हेतु है। उत्तर–

पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः ॥ ७५ ॥

दोनोंके पूर्वमें होनेमें एकके हान होनेमें अन्यका योग है ॥ ७५ ॥

पुरुष व प्रकृति दोनोंके सम्पूर्ण कार्यके पूर्व होनेमेंभी एकके कारण होनेके हान (अभाव) होनेसे अर्थात् पुरुषके परिणामी न होनेसे (रूपान्तरको न प्राप्त होने सदा एक रूप रहनेसे) कारण होनेके अभाव होनेसे अन्य जो प्रकृति है उसके कारण होनेमें योग है अर्थात् प्रकृतिहीका कारण होना मानना उचित है प्रकृतिका स्वामी होनेसे पुरुष सृष्टिका कारण होना कहा जाता है यथा योद्धा रणमें लड़कर जय पराजयको प्राप्त होते हैं राजा युद्ध करै वा न करै उनके स्वामी राजाका जय व पराजय कहा जाता है प्रकृतिके फल सुख दुःखका भोग करनेवाला पुरुष है इससे प्रकृतिका स्वामी कहा जाता है पुरुषके परिणामी न होनेका हेतु यह है कि जो पुरुषका परिणामित्व होता तौ यथा चक्षु मन आदि विकार व बंधमें प्राप्त हो कभी विद्यमान रूपआदि विषयको ग्रहण नहीं करते अथवा यथार्थ भावसे ग्रहण नहीं करते इसी प्रकारसे कभी विद्यमान सुख दुःख

आदिको पुरुष न जानता व मैं सुखी हूं अथवा नहीं हूं ऐसा संशय होता परन्तु ऐसा नहीं होता इससे सदा ज्ञान प्रकाशरूप पुरुषको परिणामी न होना सिद्ध होता है जो परिणाम रहित है वह उपादान कारण नहीं हो सक्ता इससे प्रकृतिहीका सृष्टिका उपादान कारण होना सिद्ध होता है ॥ ७५ ॥

परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम् ॥ ७६ ॥

सबका उपादान परिच्छिन्न नहीं है ॥ ७६ ॥

जो व्यापक न हो किसी देशविशेषमें हो मूर्त्तिमान हो उसको परिच्छिन्न कहते हैं सब तत्त्वोंका उपादान कारण जो प्रकृति है वह परिच्छिन्न नहीं है अर्थात् व्यापक है यह भाव है (शंका) प्रकृतिका व्यापक होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि प्रकृति त्रिगुणसे भिन्न नहीं है सत्वगुण आदिमें लघु होना गुरु होना चलना यह धर्म हैं इनका वर्णन आगे किया जायगा यह धर्म विभु होने अर्थात् व्यापक होनेमें न हो सकैंगे और सृष्टि आदिके हेतु संयोग विभाग न होंगे (उत्तर) यथा प्राणव्यक्तियोंके सब देहोंमें सम्बन्ध होनेसे सामान्यसे प्राणका स्थावर जंगम अखिल शरीरमें व्यापक होना कहा जाताहै तथा प्रकृतिका व्यापक होना कहा जाताहै जो किसी देशमें हो सब देशमें नहो उसको परिच्छिन्न व जो सर्वत्र हो उसको व्यापक कहते हैं प्रकृति सर्वत्र है किसी एक देश मात्रमें नहीं है इससे प्रकृति व्यापक कही गई है जैसे शरीर देशमें सर्वत्र प्राण सम्बंध होनेसे प्राण सब शरीरमें व्यापक कहा जाता है प्रकृतिके क्रिया व संयोग वियोग आदिके साधर्म्य वैधर्म्य विषयमें आगे वर्णन किया जायगा ॥ ७६ ॥

तदुत्पत्तिश्रुतेश्च ॥ ७७ ॥

उनकी उत्पत्तिप्रतिपादक श्रुति होनेसेभी ॥ ७७ ॥

उनकी अर्थात् परिच्छिन्नोंकी उत्पत्ति प्रतिपादक श्रुति होनेसेभी प्रकृतिका परिच्छिन्न होना सिद्ध नहीं होता श्रुतिमें कहा है "यदल्पं तन्मर्त्यं" इत्यादि अर्थ जो अल्प है वह मरनेयोग्य वा मरने वाला है मरण धर्मक होनेसे परिच्छिन्न वा अल्पकी उत्पत्ति सिद्धि होतीहै ॥७७॥जो यह शंका-होकि प्रकृतिके माननेकी क्या आवश्यकता है विना प्रकृतिकारणके सृष्टिका होना मानना चाहिये इसके उत्तरमें यह कहाहै—

नावस्तुनोवस्तुसिद्धिः ॥ ७८ ॥

अवस्तुसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होती ॥ ७८ ॥

अवस्तुसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होती अर्थात् अभावसे भावकी सिद्धि नहीं होती अभिप्राय यह है कि जो यह कहै कि कुछ नहीं था अभावसे संसार उत्पन्न हुवा तौ यह कहना यथार्थ नहीं है जैसे आकाशके फूलोंसे हार बनना संभव नहीं है इसी प्रकारसे अभावसे सृष्टिका होना संभव नहीं है जो यह कहा जावै कि, स्वप्नके तुल्य जगत् अवस्तु है अर्थात् कुछ वस्तु नहीं है मिथ्याहै इसके उत्तरमे यह सूत्रहै ॥ ७८ ॥

अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम् ७९

बाधा न होनेसे व दुष्टकारणसे उत्पन्न न होनेसे अवस्तुका होना सिद्ध नहीं होता ॥ ७९ ॥

वस्तुके होनेमें किसी प्रमाणसे बाधा न होनेसे व दुष्टकारणसे वस्तु होनेका बोध उत्पन्न न होनेसे अर्थात् जैसे दुष्ट इन्द्रिय जो विकारसंयुक्त है उससे शुक्ल शंखमें पीत होनेका बोध उत्पन्न होता है इस प्रकारसे दुष्ट कारणसे जगत्के होनेका बोध न होनेसे किन्तु यथार्थ प्रमाण व अनुमानसे सिद्ध होनेसे अवस्तु होनेका प्रमाण नहीं होता ॥ ७९ ॥

भावेतद्योगेनतत्सिद्धिरभावेतदभावात्कु तस्तरांतत्सिद्धिः॥ ८० ॥

भावमें उसके योगसे उसकी सिद्धि है अभावमे उसके अभावसे कहांसे उसकी सिद्धि है॥ ८० ॥

भावमें अर्थात् कारणके सत होनेमें उसके सत्ताके योगसे उसकी सिद्धि है अर्थात् कार्यकी सिद्धि होती है कारणके अभावमें कारणके अभाव होनेसे कार्यकाभी अभाव होताहै विनाकारण कहाँसे उसकी अर्थात् कार्य रूप जगत्की सिद्धि होती है अर्थात् कहींसे वा किसी प्रकारसे नहीं हो सकती ॥ ८० ॥

नकर्मणउपादानत्वायोगात् ॥ ८१ ॥

कर्मसे नहीं उपादान होनेके योग न होनेसे॥८१॥

जो यह कहा जावै कि प्रधानके कल्पना करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है कर्म जगत्की उत्पत्तिका कारणहै इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि कर्मसेभी वस्तु होनेकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि कर्म निमित्तकारण है मूल कारण अर्थात् उपादान कारण होना कर्मका सिद्ध नहीं होता गुणोंका द्रव्यके उपादान होनेमें योग नही है द्रव्यके उपादान होनेमें कर्मका योग न होनेसे कर्मसे वस्तुकी सिद्धि नहीं हो सकती पुरुषका परिणामी न होना व प्रकृतिका परिणामी होना वर्णन करिके अब पुरुषार्थ विषयमें वर्णन करतेहैं ॥ ८१ ॥

नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ ८२ ॥

वैदिककर्मसेभी उसकी सिद्धि नहीं है साध्यकर्म होनेपरभी फिर आवृत्तिके योगसे पुरुषार्थ होना नहीं है॥ ८२ ॥

लौकिक कर्मसे पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता व वैदिक वेदविहित जो यज्ञ आदि कर्म हैं उनसेभी उसकी अर्थात् पूर्वोक्त पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं हैं क्योंकि वैदिक कर्म जो साध्यहै उनके करनेपरभी फिर आवृत्ति अर्थात् फिर प्रवृत्ति व दुःख सम्बंध होता है इससे उक्त अत्यन्त पुरुषार्थका अभावहै कर्मफलके अनित्य होनेमें यह श्रुतिहै "तद्यथेहकर्मचितो लोकःक्षीयतएवमेवामुत्रपुण्यचितो लोकःक्षीयतइति।"

अर्थ—यथा इस संसारमें कर्मसे संचित धन धान्य आदि पदार्थ क्षयको प्राप्त होते हैं तथा परलोकमें पुण्य यज्ञ आदि कर्मकरिकै संचित व प्राप्त हुए सुख भोग लोकभी क्षयको प्राप्त होते हैं इससे यज्ञ आदिकर्मोंसेभी अत्यन्तपुरुषार्थ (मोक्ष) की प्राप्ति नहीं है ॥ ८२ ॥

तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः ॥ ८३ ॥

तिसमें विवेकप्राप्तहुयेकेलिये अनावृत्तिप्रतिपादक श्रुति है॥ ८३ ॥

तिसमें अर्थात् वैदिक कर्ममें जो अनावृत्तिप्रतिपादक श्रुति है अर्थात् फिर न पतित होनेके अर्थमें है वह केवल प्राप्तविवेककेलिये है अर्थात् जिसको विवेक प्राप्त हुआ है उसीकेलिये वह श्रुति है इसका विशेष वर्णन छठवे अध्यायमें किया जायगा ॥ ८३ ॥

दुःखाद्दुःखं जलाभिषेकवन्नजाड्यविमोकः॥८४॥

दुःखसे दुःख होताहै जल अभिषेकके तुल्य जाड्य विमोक नहीं होता ॥ ८४ ॥

जाड्य विमोक शब्दका अर्थ जाडेसे जो दुःख होताहै उसका छूटना अथवा उससे छूटना है दुःखसे दुःख कहनेका अभिप्राय यह है कि सांसारिक वैषयिक कर्मसे वा वैदिक यज्ञ आदिकर्मसे जिसका दुःखात्मक व अनित्य विषय भोगफलहै व अंतमें दुःख परिणामहै इन दुःखरूप कर्मोंसे दुःखही होता है विना विवेक दुःख दूर नहीं होता जैसे जल सींचनेसे जाडेसे जो दुःखित है उसको दुःखही होताहै जाडेका दुःख उसका निवृत्त नहीं होता ॥ ८४ ॥

कामयेऽकाम्येऽपिसाध्यत्वाविशेषात् ॥ ८५ ॥

काम्य अकाम्यमेंभी साधन योग्य कर्म होनेके विशेष न होनेसे अर्थात् एकही समान होनेसे ॥८५॥

जो कर्म काम्यनाम कर्तव्य है व जो कर्तव्य नहीं है सबके दुःखरूप होनेसे दुःखही होता है क्यों दुःख होताहै जो साधन योग्य है उसके विशेष न होनेसे जैसा इस श्रुतिमें कहा है "नकर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः" अर्थ–न कर्मसे न प्रजासे न धनसे मोक्षको प्राप्त हुये त्याग करिकै वा त्यागसे एकैं कोई मोक्षको प्राप्त हुये हैं अभिप्राय यह है कि कर्म प्रजा धनसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं है त्याग करिकै अर्थात् अभिमान त्याग करकै कोई मोक्षको प्राप्त हुये हैं अभिमान त्याग करनेसेभी सब मोक्षको नहीं प्राप्त हुए विशेष जो तत्वज्ञान है उस दुर्लभतत्वज्ञानको प्राप्त करिकै तत्वज्ञानसे जे अभिमानको त्याग किया है वही मोक्षको प्राप्त हुये हैं अन्य नहीं प्राप्त हुये ॥ ८५ ॥

निजमुक्तस्य बंधध्वंसमात्रं परं नसमानत्वम् ॥ ८६ ॥

निजमुक्तका बंधकी निवृत्तिमात्र है पर अर्थात् अत्यंत विवेक फलका समान होना नहीं है ॥ ८६ ॥

निजमुक्त अर्थात् स्वभावसे मुक्त जो पुरुष है उसके अविद्याकारणके नाश होनेसे जैसा पूर्वमें वर्णन किया गयाहै बंधकी निवृत्ति मात्रहै व परम आत्यन्तिक विवेकज्ञानके फलका, जो मोक्ष नित्य अत्यंत सुखरूप सब दुःखकी निवृत्ति है व कर्मफलका जो अनित्य व दुःखपरिणाम रूपहै दोनोंका समान होना संभव नहीं है केवल विवेकही साक्षात् ज्ञानका उपाय है व ज्ञानके उपयोगी प्रमाण है ॥८६॥ अब प्रमाणपरीक्षाका वर्णन किया जाताहै–

द्वयोरेकतरस्यवाप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमातत्साधकतमं यत्त त्रिविधं प्रमाणम् ॥ ८७ ॥

जो अर्थ बोधगत नहीं हुवा उसका निश्चय करना चाहे यह निश्चय करनेकी वृत्ति दोनों अर्थात् बुद्धि व पुरुषका धर्म होवै अथवा एकहीका हो वह प्रमाहै उस प्रमाका जो अतिसाधक कारण है वह प्रमाण है तीन प्रकारका है ॥ ८७ ॥

---

१ असन्निकृष्टार्थशब्दका अर्थ बोधगत नहीं हुआ व परिच्छित्तिशब्दका अर्थ निश्चय इस सूत्रअनुवादमें समझना चाहिये।

इस प्रमाणके लक्षणमें स्मृतिसे व्यावर्तन (पृथक् करने या दूर करने) केलिये बोधगत नहीं हुवा यह शब्दरक्खा है भ्रम व्यावर्तनके लिये अर्थ शब्द रक्खा है अर्थशब्दसे यथार्थवस्तु होनेसे अभिप्राय है संशय व्यावर्तनकेलिये निश्चय करना यह शब्द रक्खाहै और दोनों अथवा एकका धर्म इस अभिप्रायसे कहा है कि पुरुष व बुद्धि दोनोंका धर्म मानैं चाहै एकहीका धर्म माने किसी प्रकारसे लक्षण असत न होवै अर्थात् लक्षण में दोषकी प्राप्ति न होवै ॥८७॥ तीन प्रकारका प्रमाण होना जो कहा है प्रत्येक तीनोंके पृथक् पृथक् लक्षण आगेसूत्रोंमें वर्णन कियाहै तीनही प्रमाण क्यों कहाहै तीनसे अधिक प्रमाण सुने जाते हैं इसका समाधान आगे सूत्रमें वर्णन करतेहैं-

तत्सिद्धौसर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ॥ ८८ ॥

उनकी सिद्धि होनेमें सबकी सिद्धि होनेसे अधिककी सिद्धि नहीं है ॥ ८८ ॥

उनके अर्थात् तीन प्रमाणके सिद्ध होनेसे सब अर्थकी सिद्धि होनेसे अधिक प्रमाण होनेकी सिद्धि नहीं है अभिप्राय यह है कि, तीनसे अधिक प्रमाण नहीं है क्योंकि अनुपलब्धि आदि प्रत्यक्षके अंतर्गत व उपमान अनुमानके अंतर्गत ऐतिह्य शब्दके अंतर्गत समझे जाते हैं ॥ ८८ ॥

यत्सम्बद्धं सत्तदाकारोल्लेखिवि ज्ञानं तत्प्रत्यक्षम् ॥ ८९ ॥

जो इन्द्रियके साथ सत्सम्बंधको प्राप्त वस्तु है उसके तदाकार अर्थात् भ्रमविकार रहित तत्वरूप धारण करनेवाला जो ज्ञान वा बुद्धिवृत्ति है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ ८९ ॥

इस प्रत्यक्षके लक्षणके अनुसार जिस वस्तुका इन्द्रियके साथ सम्बंध होता है उसका ज्ञान होसकता है जिसका इन्द्रियके साथ सम्बंध नहीं होता उसका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होसकता लोकमें इन्द्रियसम्बंध रहित पदार्थका ज्ञान न होना यथार्थ रूपसे सिद्ध है इससे साधारण लौकिक जनोंके निमित्त यह लक्षण सत्य है परन्तु योगीजनोंको जो वस्तु व्यवधानको प्राप्त है अर्थात् किसी पदार्थके आडमें है अदृष्ट है जिसका इन्द्रियके साथ सम्बध नहीं होता वह पदार्थ व भूत भविष्यत् कालमें होगए व होनहार जो पदार्थ हैं उन सबका प्रत्यक्ष होता है योगियोंके प्रत्यक्षमें यह लक्षण घटित न होनेसे अव्याप्तिदोष संयुक्त होना विदित-होता है इस आशंका निवारणके अर्थ यह वर्णन किया है ॥ ८९ ॥

योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः ॥९०॥

योगियोंके अबाह्य प्रत्यक्ष करने वाले होनेसे दोष नहीं है ॥ ९० ॥

अभिप्राय इसका यह है कि-यह लक्षण ऐन्द्रियक ज्ञानके अर्थ है अर्थात् जो इन्द्रियसम्बधी वा इन्द्रियजन्य ज्ञान है उसके लिये है योगी जनोंको जो बाह्यइन्द्रियगोचर पदार्थ नहीं है उसकाभी प्रत्यक्ष होता है इससे योगियोंके प्रत्यक्षमें इस लक्षणकी प्राप्ति न होनेसे दोष नहीं है अथवा जो यह शंका होवे कि विना इन्द्रिय व अर्थके सम्बध कहीं प्रत्यक्ष होना विदित नहीं होता तो इसका उत्तर इस सूत्रके अर्थसे यहहै कि तर्कसे लौकिक जनोंके सामर्थ्य अनुसार जो विना इन्द्रियद्वारा व इन्द्रिय व अर्थके सम्बध हुए प्रत्यक्ष नहीं करसकते यद्यपि सिद्ध न होवे तथापि विशेष सामर्थ्यसे विना बाह्यइन्द्रियनके द्वारा प्रत्यक्ष करने वाले योगियोंके होनेसे दोष नहीं है अर्थात् यह दोष नहीं हो सकता दूसरा सूत्र इसके समाधानमें यह है ॥ ९० ॥

लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बंधाद्वादोषः ॥९१॥

अथवा व्यतीत हुये दूरदेशमें वर्तमान वस्तुओंमें अतिशय सम्बधको लाभ किये वा प्राप्त हुये योगीयोंके होनेसे दोष नहीं है ॥ ९१ ॥

इसका अभिप्राय यह है कि जो विना इन्द्रिय सम्बध प्रत्यक्ष होना न माना जावै तौ योगसे उत्पन्न अतिशय सामर्थ्यसे व्यवहित दूर देशमें वर्तमान पदार्थमें योगीके चित्तका सम्बंध घटित होता है तिससे योगियोंके लौकिक सामान्य जनोंसे विलक्षण बिना बाह्य इन्द्रियके द्वारा प्रत्यक्ष प्राप्त करनेमें दोष नहीं है इस शब्दकी अनुवृत्ति पूर्वसूत्रसे होती है यह योगियोंके प्रत्यक्षके समाधान वर्णन करनेसे यह सूचित किया है कि लौकिक बुद्धि अनुसार तर्कसे सब पदार्थका प्रमाण व यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता न बाह्य दृष्ट पदार्थ मात्रके ज्ञानको प्राप्त लौकिक जनोंके तर्ककी प्रतिष्ठा है क्योंकि योगीजनोंके प्रत्यक्षकी तुल्य ईश्वरकी तर्कसे सिद्धि नहीं होती ईश्वरकी सिद्धि न होनेमेंभी दोष नहीं है यह आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ९१ ॥

ईश्वरासिद्धेः ॥ ९२ ॥

ईश्वरकी सिद्धि नहोनेसे ॥ ९२ ॥

इसमें पूर्व सूत्रसे दोष नहीं है यह अनुवृत्ति आनेसे ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे दोष नहीं है यह पूरा अर्थ सूत्रका होता है भाव इसका यह है कि जैसे योगियोंको भूत भविष्यत्के, व व्यवहित विप्रकृष्ट पदार्थोंके ज्ञान होनेमें यद्यपि प्रत्यक्षका लक्षण घटित नहीं होता, व प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे ऐसा ज्ञान होना सिद्ध नहीं होता तथापि दोष नहीं है योग अवस्था विशेषमें अतिशय सामर्थ्य होनेमें सत्यही है लोकमें बालकके बुद्धि विचारसे असंभव होनेसे जो पण्डित विद्वानके ज्ञानमें सिद्ध है उस अर्थ के खण्डित न होनेके समान खण्डित व असत्य नहीं हो सकता अर्थात् लौकिक ज्ञान व तर्कसे यद्यपि ईश्वर सिद्ध नहीं होता तथापि ईश्वरकी

सिद्धि न होनेसे दोष नहीं है लौकिक जनोंकी बुद्धि व तर्कसे सिद्ध न होनेपर भी योगियोंके प्रत्यक्षके समान सत्य होना मानना चाहिये ईश्वर का यथार्थ बोध योगही अवस्था व ज्ञान विशेष उदय होनेमें होता है, व आप्त उपदेशसे सिद्ध व प्रमाणके योग्य है तर्कआदिसे सिद्ध नहीं होता बहुत मनुष्य बिना यथार्थ भाव समझे व पूर्वापरके सम्बंधका विचार किए इस सूत्रको व और जो सूत्र आगे वर्णन किया है उनको सर्वथा ईश्वरके प्रतिषेध (खण्डन) में समुझते हैं परन्तु यह उनका भ्रम मात्र है क्योंकि जो यह कहै कि दोष नहीं है विना इस अनुवृत्ति-के ग्रहण किये हुये, ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे इतनेही सूत्रके अर्थसे ईश्वरके सर्वथा निषेध करनेका अर्थ ग्रहण करना चाहिये तौ ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे इतने कहनेसे वाक्यकी पूर्ति नही होती अन्य शब्दकी अपेक्षा होना विदित होता है जो यह कहैं कि ईश्वरकी सिद्धि न होने-से ईश्वर नहीं है वा ग्रहणके योग्य नही है, ऐसा कोई क्रिया शब्दका आक्षेप करिकै वाक्यार्थ करलेवैंगे तो ऐसा अर्थ ग्रहण करना सर्वथा अ-युक्त है क्यों कि मनसे कल्पना करिकै असंगत अर्थको ग्रहण करना और जो सम्बंधसे ग्रहणके योग्य है उसको त्यागना केवल आग्रह व मूर्खता है और सब शास्त्रोंमें पूर्व सूत्रसे पर सूत्रोंमें अनुवृत्ति ग्रहण किया जाना व अनुवृत्तिसे वाक्यकी पूर्त्ति होना सिद्ध है इससे शास्त्र की पद्धति व पूर्वापर सम्बधसे उक्त अर्थ व भावही यथार्थ ग्रहणके योग्य है व अन्य हेतु यह भी विचार करनेके योग्य है कि जो सूत्रकारका ईश्वरके निषेधही करनेका प्रयोजन होता तौ सूत्रमें अभाव शब्दको रचते. अर्थात् ईश्वराभाव अर्थ ईश्वरके अभावसे ऐसा कहते ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे दोष नहीं है यह कहनेसे यही सिद्ध होता है कि तर्क प्रमाणसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध न होनेसे दोष नहीं है मुक्त रूपराग आदि दोष रहित पुरुष वा ईश्वर वा आत्मा योगज विशेष ज्ञानसे सिद्ध मानने के योग्य है जो यह शंका होवे कि कार्यका कर्त्ता कोई सिद्ध होनेसे तर्क व प्रमाणसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होना संभव है सृष्टि

कर्त्ता सिद्ध न होनेसे क्या हेतु है इस शंका निवारणके लिये व लौकिक प्रत्यक्ष व प्रत्यक्षमूलक अनुमान व तर्कसे ईश्वर सिद्ध न होनेसे पक्षकी पुष्टिके लिये हेतु वर्णन करते हैं ॥ ९२ ॥

मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिः ॥ ९३ ॥

मुक्त व वद्ध व अन्यतरके अभावसे उसकी (ईश्वरकी) सिद्धि नहीं है ॥ ९३ ॥

ईश्वरका मुक्त होना व बद्ध होना व दोनोंसे पृथक् होना संभव न होनेसे ईश्वरकी सिद्धि नहीं होती ईश्वरका मुक्त होना वा बद्ध होना दोनों सिद्ध न होनेका हेतु आगे सूत्रमें कहा है ॥ ९३ ॥

उभयथाप्यसत्करत्वम् ॥ ९४ ॥

दोनों प्रकारसे ईश्वरका कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता॥९४॥

दोनों प्रकारसे सिद्ध न होनेसे अभिप्राय यह है कि ईश्वरको मुक्त माननेमें अभिमान व राग आदि जो प्रवृत्तिके कारण हैं उनके अभावसे विना प्रयोजन सृष्टिकी उत्पत्तिमें ईश्वरका प्रवृत्त होना असंभव होगा व बद्ध माननेमें मूढ पराधीन होनेसे ऐसी अनेक सौष्ठव व नियमयुक्त सृष्टि उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं हो सकता अब यह संशय होता है कि जो तर्कसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध नहीं होता तौ ईश्वर प्रतिपादक श्रुतियाँ मिथ्या होंगी इसके उत्तरमें यह सूत्र है ॥ ९४ ॥

मुक्तात्मनः प्रशंसाउपासासिद्धस्यवा ॥ ९५ ॥

मुक्त आत्माकी प्रशंसापर अथवा सिद्धकी उपासना-पर हैं ॥ ९५ ॥

कोई श्रुति केवल मुक्त आत्मा जिसको सन्निधिमात्रसे ऐश्वर्य सम्बंध है उसकी प्रशंसापर व कोई संकल्पपूर्वक सृष्टि उत्पन्न करनेकी प्रति-

पादक अभिमान संयुक्त अनित्य ईश्वर ब्रह्मा विष्णु आदि सिद्धोंके गौण नित्यत्व वर्णन करने व उनके उपासनापर हैं अब यह संशय है कि जो आत्मा व ब्रह्मराग आदि रहित होनेसे ईश्वर सृष्टिकर्त्ता सिद्ध नहीं होता तौ प्रकृति जडका अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं हो सकता इसका उत्तर वर्णन करते है ॥ ९५ ॥

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वंमणिवत्॥९६॥

उसके सन्निधानसे मणिके समान अधिष्ठातृत्वहै ॥ ९६॥

इसका अभिप्राय यह है कि जो संकल्पपूर्वक सृष्टि करना हम मानें तौ प्रकृतिके अधिष्ठाता होनेमें दोष आवै हम यह मानते है कि जैसे अयस्कांतमणि (चुम्बक) के सांनिध्यसे लोहा विना संकल्पही स्वाभाविक अदृष्ट नियमसे खिचता व चलता है इसी प्रकारसे पुरुषके सन्निधिमात्रहीसे प्रकृति महत्तत्वके रूपमें परिणामको प्राप्त होती है व सृष्टिकी कारण होती है सन्निधिमात्रसे पुरुष आत्मा कर्त्ता है इससे राग आदि दोष होनेका संशय नहीं होसक्ता (प्रश्न) उसने इच्छा किया कि मैं बहुत होऊं उत्पन्न होऊं यह श्रुतिमें कहा है श्रुति यह है ॥

तदैक्षतबहुस्यांप्रजायेय ॥

यह श्रुति विना चेतन कर्त्ता व उसके संकल्प माननेके मिथ्या होगी (उत्तर) जैसे जडकगारमें विना इच्छा होनेकेभी शीघ्र गिरनेवाला जानकर उपचारसे यह कहा जाता है कि गिरनेकी इच्छा करता है वा गिरने चाहता है इसी प्रकारसे प्रकृति विषयमें यह व ऐसी अन्य श्रुतियोंको जानना चाहिये अथवा यह मानना चाहिये कि आदि सृष्टिकी उत्पत्ति विषयमें ऐसी श्रुति नहीं है ब्रह्मा विष्णु आदि सिद्धोंके संकल्प व भौतिक सृष्टिकी उत्पत्ति वर्णन करनेमें हैं ॥ ९६ ॥

विशेषकार्य्येष्वपिजीवानाम् ॥ ९७ ॥

विशेष कार्योंमेंभी जीवोंके सन्निधानसे अधिष्ठातृत्व है ॥ ९७॥

सन्निधानसे अधिष्ठातृत्व है यह पूर्व सूत्रसे ग्रहण किया जाता है अंतः-करणसे उपलक्षित जो है उसीकी जीव संज्ञा है यह छठवें अध्यायमें वर्णन करेंगे इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि केवल सृष्टिके आदिहीमें पुरुषके संयोग मात्रसे सृष्टि करना व अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं है विशेष कार्य्योंमें अर्थात् व्यष्टि सृष्टिमेंभी अंतःकरणसे प्रतिबिंबित (प्रतिबिम्बको प्राप्त) चेतन जो जीव हैं उनके सन्निधानसे भी अधि-ष्ठातृत्व है कूटस्थ चेतन मात्र स्वरूप होनेसे किसी व्यापारसे अधिष्ठाता नहीं होता ॥ ९७ ॥ (शंका) जो सदा सर्वज्ञ ईश्वर नहीं है तौ वेदा-न्तोंके वाक्योंके विवेकके उपदेशका उसमें अंधपरम्परा होनेकी शंका होनेसे प्रामाण्य नहीं हैं ॥ उत्तर-

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः ॥९८॥

सिद्धरूपोंके यथार्थ ज्ञाता होनेसे उनके वाक्यार्थका उपदेश प्रमाण है ॥ ९८ ॥

प्रमाण है यह मूल सूत्रमें शेष है भावसे ग्रहण किया जाता है अभि-प्राय सूत्रका यह है कि-वेदान्तवाक्योंका अर्थ जो विवेकके उपदेशका है वह इस संशय हेतुसे कि ईश्वर वा पुरुषको चेतनमात्र अकर्त्ता माना है, विना सर्वज्ञ ईश्वर प्रतिपादक अंगीकार किए जानेके वेदान्त वाक्योंक उपदेश प्रमाण व ग्राह्य नहीं है, त्यागकी योग्य नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा आदि जे सिद्ध रूप हैं उनमें यथार्थ ज्ञान होनेसे उनका वाक्यार्थ उपदेश वेद माननेमें प्रमाण मानने व ग्रहणके योग्य है ॥ ९८ ॥

अंतःकरणस्यतदुज्ज्वलितत्वाल्लो-हवदधिष्ठातृत्वम् ॥ ९९ ॥

अंतःकरणका उससे उज्ज्वलित होनेसे लोहके समान अधिष्ठातृत्व है ॥९९॥

उससे अर्थात् चेतनसे उज्ज्वलित अर्थात् प्रकाशित अंतःकरणका लोहके समान अधिष्ठातृत्व है अर्थात् यथा लोहमें ज्वलन वा प्रकाश नहीं है परन्तु अग्निसंयोगसे रूप व जरानेकी शक्तिमें अग्निके सदृश अधिष्ठाता होता है इसी प्रकारसे चेतनसे उज्ज्वलित अंतःकरण चेतनके सदृश अधिष्ठाता है इसका विशेष वर्णन आगे होगा ॥ ९९ ॥

प्रतिबंधदृशःप्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥१००॥

प्रतिबंध जो व्याप्ति है उसव्याप्ति दर्शनसे अर्थात् व्याप्ति ज्ञानसे प्रतिबद्धका ज्ञान होना अर्थात् व्यापकका ज्ञान होना अनुमान प्रमाण है ॥१००॥

यथा धूम व अग्नि सम्बंधके व्याप्ति ज्ञानसे धूममात्रके प्रत्यक्षसे व्यापक अग्निका अर्थात् जिसमें व्याप्ति सम्बंध है उस अग्निका विना उसके प्रत्यक्ष हुए ज्ञान होना अनुमान प्रमाण है पुरुषका ज्ञान अनुमानही प्रमाणसे होता है ॥ १०० ॥

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ १०१ ॥

आप्तका उपदेश शब्द है ॥ १०१ ॥

यथार्थ ज्ञानवान् सत्यवक्ताको आप्त कहते हैं उसका उपदेश सत्य होनेसे प्रमाण है इससे आप्तका उपदेश शब्द प्रमाण है ॥ १०१ ॥

उभयसिद्धिःप्रमाणात्तदुपदेशः ॥ १०२ ॥

दोनोंकी सिद्धि होनेसे उसका उपदेश है ॥ १०२ ॥

दोनों आत्मा व अनात्माकी सिद्धि विवेकद्वारा प्रमाणहीसे होती है इससे उसका अर्थात् प्रमाणका उपदेश किया है ॥ १०२ ॥

सामान्यतोदृष्टादुभयसिद्धिः ॥ १०३ ॥

सामान्यतो दृष्टसे दोनोंकी सिद्धि है ॥ १०३ ॥

अनुमान तीन प्रकारका होता है पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्ट; सामान्यतो दृष्ट अनुमानसे दोनोंकी अर्थात् प्रकृति व पुरुषकी सिद्धि होती है; यह अर्थ है जो पूर्वही प्रत्यक्ष हुयेके अनुसार पूर्व प्रत्यक्षीकृत जातीय विषयक अनुमान होता है उसको पूर्ववत् कहते हैं यथा पूर्वही रसोई आदिमें अग्निसे धुवां होनेका पूर्वही प्रत्यक्ष होनेसे धुवां देखनेसे पूर्व प्रत्यक्षीकृत अग्निजातीयका अनुमान होता है व जो एकके विशेष धर्मका बोध होनेसे अन्य जे उससे भिन्न शेष रहे पदार्थ हैं उनके भेदका अनुमान होता है उसको शेषवत् कहते है यथा गंधवान् द्रव्य पृथिवी होनेके ज्ञान होनेसे पृथिवीसे जे भिन्न पदार्थ हैं उनमें यह ज्ञान होता है कि गंधरहित होनेसे यह पृथिवी नही हैं अथवा गंधवान् होनेसे यह पृथिवी है अन्य पदार्थ नहीं है इसको व्यतिरेक अनुमानभी करते हैं कोई, कारणसे कार्यके अनुमान करनेको शेषवत् कहते हैं यथा उठेहुए अति सघन मेघोंकी विशेष अवस्था देखकर जल होगा यह अनुमान करना शेषवत् है प्रत्यक्ष आदि जातीय धर्मको लेकर व्याप्ति ग्रहणसे पक्ष धर्मता केवलसे उसके विजातीय अप्रत्यक्षका जिस अंशमें दोनोंका सामान्य धर्म अर्थात् सदृश धर्म है उस सामान्य धर्मद्वारा अनुमान किया जाता है वह सामान्यतो दृष्ट कहा जाता है यथा स्थूलमें प्रत्यक्षसे कारण कार्यका सम्बंध होना सिद्ध होता है कार्य कारण सम्बंधके ज्ञान होनेसे कुण्डल आदि कार्यरूपके देखनेसे कारण सुवर्ण आदिका ज्ञान होता है इसीप्रकारसे अप्रत्यक्ष महत्तत्त्व आदिकार्य रूप पदार्थके ज्ञान होनेसे सामान्य कार्य कारण सम्बंधके ज्ञान होनेके हेतुसे कारणरूप प्रकृतिका अनुमान होता है अर्थात् सुखदुःखमोहधर्मसंयुक्त कार्यरूप महत्तत्त्वके सिद्ध होनेसे सुखदुःखमोहधर्मक उसके कारण प्रकृतिसे होनेका अनुमान होता है पुरुषमें यद्यपि अनुमानकी अपेक्षा

नहीं है तथापि प्रकृति आदिके विवेक होनेमें सामान्य तो दृष्टसे पुरुषका अनुमान होता है अर्थात् प्रधानका ग्रह आदिके तुल्य परके अर्थ संहत्य-कारी होनेसे उसके विजातीय पुरुषका प्रकृति आदिसे पर होनेका अनुमान होता है क्योंकि प्रकृति जडका, ग्रह आदिके समान होनेसे भोक्ता होना संभव नहीं है देह आदिका भोक्ता होना अविवेकसे मानना है इस-प्रकारसे सामान्य तो दृष्टसे जड प्रकृति व चेतनपुरुष दोनोंकी सिद्धि होती है ॥ १०३ ॥

चिदवसानो भोगः ॥ १०४ ॥

चैतन्यमें जिसका अवसान है ऐसा भोग है ॥१०४॥

अभिप्राय यह है कि, जड होनेके कारणसे बुद्धि भोग कर्ता नहीं हो सकती अंतःकरण केवल करणरूप है अंतःकरणके वृत्तियोंके द्वारा भोग-पुरुष चेतनमें, प्राप्त होता है इससे कहाहै कि, भोग ऐसा है कि जिस-का अवसान चैतन्यमें होता है अर्थात् चैतन्य जो पुरुषस्वरूप है उसमें होता है अन्यमें नहीं होता ॥ १०४ ॥

अकर्तुरपि फलोपभोगोऽन्नादिवत्१०५॥

अकर्ताकोभी फल उपभोग अन्न आदिके समान होता है ॥ १०५ ॥

इस शंका निवारणकेलिये कि जो पुरुष अकर्ता है तो पुरुषको भोक्ता न होना चाहिये क्योंकि जो कर्म करता है उसीको फलभोग होना उचित है बुद्धि करिकै जो धर्म आदि किये गये उनके जो फल सुख आदि भोग हैं वह पुरुषमें किस प्रकारसे घटित हो सकते हैं सूत्रमें यह वर्णन किया है कि अन्न आदिके तुल्य अकर्ताको भोग होता है यथा पाक बनानेवाला अन्नको पकाता है उसको राजा आदि भोग करते हैं अर्थात् सेवकके किये हुए पाकका भोग स्वामीको होता है इसी प्रकारसे बुद्धिगत कर्म-फलको पुरुष भोग करता है ॥ १०५ ॥

अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्तुः फलावगमः॥१०६॥

अथवा उसकी (अकर्ता पुरुषमें भोग होनेकी) सिद्धि होनेसे अविवेकसे कर्ताको फल होना मानना है ॥ १०६ ॥

पूर्वसूत्रमें जो दृष्टांत वर्णन किया गया उससे कर्तासे अन्यको फल होना सिद्ध होता है उसके सिद्ध होनेसे अर्थात् भोक्ता पुरुषमें कर्म फलकी सिद्धि होनेसे कर्ता बुद्धिको फलप्राप्त होता है यह मानना अविवेकसे है यह सूत्रका भाव है ॥ १०६ ॥

नोभयं च तत्त्वाख्याने ॥ १०७ ॥

तत्त्वके साक्षात्कार होनेमें दोनो नहीं ॥ १०७ ॥

प्रमाणसे प्रकृतिपुरुषके तत्वाख्यानमें अर्थात् तत्त्वसाक्षात्कार होनेमें सुख दुःख दोनों नहीं होते श्रुतिमें लिखा है "विद्वान् हर्षशोकौ जहाति" अर्थ–विद्वान् हर्ष व शोकको त्याग देता है ॥ १०७ ॥ शंका–प्रत्यक्षसे इन्द्रियद्वारा प्रकृति व पुरुषके होनेमें प्रमाण नहीं होता इससे प्रकृतिपुरुषका मानना सत नहीं है. उत्तर–

विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य ॥ १०८ ॥

अतिदूर आदि होनेसे प्रत्यक्ष होने व न होनेसे कहीं इन्द्रियका विषय होता है व कहीं इन्द्रियका विषय नहीं होता ॥ १०८ ॥

इन्द्रियसे प्रत्यक्ष न होनेसे प्रकृति आदिका अभाव नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्यक्षके योग्य विद्यमान अर्थभी अवस्था भेदसे व अति दूर

आदि होनेके दोषसे इन्द्रियोंसे ग्रहण योग्य न होनेसे अविषय होता है अर्थात् कोई पदार्थ निकट होनेमें इन्द्रियका विषय होता है वही अतिदूर होनेसे इन्द्रियका विषय नहीं होता अर्थात् इन्द्रियद्वारा ज्ञात नहीं होता प्रकाशमें चक्षुइन्द्रियसे देखा जाता है अंधकारमें अथवा इन्द्रियमें विकार होनेसे उसका प्रत्यक्ष नहीं होता इससे कहा है कि अतिदूर आदि दोषसे जो इन्द्रियका विषय है वही अविषय हो जाता है ऐसा होना सिद्ध होनेसे पदार्थोंके होनेके प्रमाणमें इन्द्रियग्राह्य होनेकी आवश्यकता नहीं है अब यह प्रश्न है कि प्रकृति व पुरुषके बोधगत न होने में क्या हेतु है. उत्तर यह है-

सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः १०९ ॥

सूक्ष्म होनेसे उनकी उपलब्धि नहीं है ॥ १०९ ॥

उनकी अर्थात् प्रकृतिपुरुषकी उपलब्धि न होना अर्थात् उनका प्रत्यक्ष न होना सूक्ष्म होनेके कारणसे है सूक्ष्म होनेसे यहां अणुहोनेसे प्रयोजन नहीं है क्योंकि व्यापक है प्रत्यक्षप्रमा की जिसमें प्राप्ति न होवै वह सूक्ष्म कहाजाता है प्रत्यक्ष प्रमा रहित पदार्थ कहनेसे प्रयोजन है योगसे उत्पन्न तेजसे पुरुष व प्रकृति आदिका प्रत्यक्ष होताहै निरवयव द्रव्य होनेसेभी सूक्ष्म होनेसे अभिप्रायहै ॥ १०९ ॥

शंका-अभावसे हम अनुपलब्धि मानते हैं सूक्ष्म होनेके कारणसे क्यों मानैं नहीं आकाशके फूल व खरहाके सींगकोभी सत्य मानैंगे और कहैंगे कि सूक्ष्म होनेके कारणसे अनुपलब्धि है. उत्तर-

कार्यदर्शनात्तदुपलब्धेः ॥ ११० ॥

कार्यके देखने अथवा जाननेसे उनकी उपलब्धिसे ११०

पूर्व वर्णन किये गयेके अनुसार प्रकृति आदिके कार्यके देखने अ-

थवा जाननेसे उनका होना सिद्ध है केवल प्रत्यक्ष न होनेके कारणसे सूक्ष्महोनेका अनुमान होता है यह अभिप्रायहै ॥ ११० ॥

वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरितिचेत् ॥१११॥

वादीकेतर्कसे जो उसकी असिद्धि मानी जावै ॥१११॥

जो कार्य है सृष्टि उत्पत्तिसे पहिलेभी उसकी सिद्धि है क्योंकि कारणका कार्य शक्ति युक्त होना अनुमान किया जाता है नहीं उससे कार्यका उत्पन्न होना असंभव होवै परंतु शंका यह है कि जो वादीके तर्कसे उसकी अर्थात् कार्यकी असिद्धि मानी जावै तौ क्या उत्तर है इसका उत्तर आगे सूत्रमें कहते हैं ॥ १११ ॥

तथाप्येकतरदृष्टयाएकतरसिद्धेर्ना पलापः ॥ ११२ ॥

एक दृष्टिसे उसप्रकारसे माननेपरभी एककी सिद्धिसे अपलाप नहीं है ॥ ११२ ॥

एक दृष्टि करके अर्थात् कार्य दृष्टिसे उस प्रकारसे अर्थात् सत् कार्य न मानने परभी एक दृष्टि करकै अर्थात् कार्यकी दृष्टिसे एक कारणकी सिद्धि होनेसे अपलाप (असत् वाद) नहीं है कारण भावसे नित्य सिद्धही है ॥ ११२ ॥

त्रिविधविरोधापत्तेश्च ॥ ११३ ॥

त्रिविध विरोधकी प्राप्तिसेभी ॥ ११३ ॥

त्रिविधविरोधकी प्राप्तिसेभी कार्यका अनित्य वा असत् होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् कार्य तीनप्रकारका है अतीत (जो होगया है) अनागत (जो होने वाला है) और जो वर्तमानहै जो कार्य सदा सत् न माना जावै तौ उसका त्रिविध होना सिद्ध नहीं हो सकता क्यों कि व्यती-

त कालमें जो घट आदिका अभाव है तौ घट आदिकोंका अतीत होने आदिधर्म संयुक्त होनेकी सिद्धि नहीं होती इस हेतुसे कि सत् असत्का सम्बंध नहीं हो सकता जो यह कहा जाय कि अभावमात्र होनेके मान-नेसे अभिप्राय है घट आदि विशेषके माननेसे नहीं है तौ अभावमें विशे-षता न माननेसे पट आदिका अभाव घट आदिका अभाव हो जावैगा जो यह कहा जावे कि जो प्रतियोगी है (जिसका अभावहै) वही अभा वका विशेष कहे अर्थात् विशेषताका बोध करानेवाला है तौ असत् प्रतियोगीका प्रागभाव आदिमें विशेषक होना संभव नहीं होता इससे कार्य नित्य है अतीत अनागत वर्तमान केवल अवस्था भेद कहना चा-हिये एकका भाव अन्यका अभाव कहना यथार्थ नहीं है अतीत अनागत दो अवस्था ध्वंस व प्रागभाव काल भेदसे व्यवहार वाचक है क्योंकि वर्तमानसे भिन्न दो अभावमें प्रमाणका अभावहै कार्यके असत माननेमें त्रिविध विरोधकी प्राप्ति होतीहै इससे असत् नहीं है ॥ ११३ ॥

नासदुत्पादोनृशृङ्गवत् ॥ ११४ ॥

मनुष्यकेसींगके तुल्य असत्का उत्पन्न होना संभव नहीं होता ॥ ११४ ॥

जैसे मनुष्यके सींगका जो त्रिकालमें असत्है उत्पन्न होना असंभव है इसी प्रकारसे असत्का उत्पन्न होना असंभव है ॥ ११४ ॥

उपादाननियमात् ॥ ११५ ॥

उपादानके नियमसे ॥ ११५ ॥

उपादान कारणके नियम होनेसे कार्यका असत् होना नहीं पाया जा-ता क्योंकि मृत्तिकासे घट सूतसे पट कार्य होते हैं कार्योंके होनेका उपा-दान कारणोंमें नियम है यह नियम होना संभव न होगा जो कार्यकी उत्पत्तिसे पहिले कारणमें कार्यका सत्तानही है तौ कोई विशेष होनेका

हेतु नहीं है जिससे विशेषकार्य उत्पन्न होवै इससे उपादान नियमसे उत्पत्तिसे पहिलेभी कारणमें कार्यका सत्ता है यह मानना चाहिए ॥११५॥

सर्वत्रसर्वदासंभवात् ॥ ११६ ॥

सर्वत्र सर्वदा सब असंभव होनेसे ॥ ११६ ॥

उपादान नियम न होनेमें सर्वत्र सर्वदा सब पदार्थका होना संभव होता परन्तु सर्वत्र सबसे सब पदार्थ न होनेसे उपादान नियम होना सिद्ध है इससे असत्का उत्पन्न होना नहीं होसकता ॥ ११६ ॥

शक्तस्यशक्यकरणात् ॥ ११७ ॥

शक्तका शक्यके करनेसे ॥ ११७ ॥

शक्ति जिसमें हो वह शक्त है और जो होनेके योग्य होवै उसको शक्य कहते हैं शक्त जो कार्य उत्पन्न करनेमें शक्तिमान् कारणहै उसका शक्य जो कार्य है उसीके उत्पन्न करनेसे असत्का उत्पन्न होना नही है क्योंकि शक्तमें कार्यकी शक्ति कार्यके होनेसे पहिले विद्यमान है यह अनुमानसे सिद्ध होता है ॥ ११७ ॥

कारणभावाच्च ॥ ११८ ॥

कारणमें भाव (कार्यसत्ता) होनेसे ॥ ११८ ॥

उत्पत्तिसे पहिलीभीकारण रूप कार्यके भाव होनेसे अर्थात् कार्य कारणके अभेद होनेसे कारणमें कार्यकी सिद्धि होनेसे असत्का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं होता ॥ ११८ ॥

नभावेभावयोगश्चेत् ॥ ११९ ॥

भावमें भाव योग न होवे ॥११९॥

शंका–यह है कि जो भावरूप कार्य सत् माना जाय तो भावमें अर्थात् भावरूप कार्यमें भाव योग नहीं होता अर्थात् जो पहिलेसे है उसमें उत्पन्न होनेरूप भावका, योग न होना चाहिये अर्थात पुत्र होनेपर भी पुत्रका न होना व होनेसे पहिले भी होना मानना चाहिए इसका उत्तर यह है

नाभिव्यक्तिनिबन्धनौव्यवहाराव्यवहारौ ॥ १२० ॥

नहीं अभिव्यक्तिके निमित्तक व्यवहार अव्यवहार है १२०

नहीं अभिप्राय यह है कि असत्का होना संभव नहीं है अभिव्यक्ति (प्रकट होने) के निमित्तक व्यवहार व अव्यवहारहै अर्थात् अभिव्यक्ति होनेसे उत्पत्तिका व्यवहार व अभिव्यक्ति (प्रकटता) न होनेसे उत्पत्ति के व्यवहारका अभाव होताहै अभिव्यक्ति वर्तमान अवस्था है कारणसे सत्कार्यकी अभिव्यक्ति मात्र होना लोकमें देखा जाताहै यथा तिलके अंतर्गत जो तेल है वह पेरनेसे प्रकट होता है व शिला मध्यस्थ प्रतिमा गढनेसे प्रकट होती है इत्यादि ॥ १२० ॥ अब यह शंका है कि जो सत् अनादि कार्य है तौ उसका नाश होना क्यों कहा जाता है. उत्तर–

नाशःकारणलयः॥१२१॥

कारणमें लय होना नाश है ॥ १२१ ॥

नाश किसी पदार्थका नहीं है नाश केवल जिस कारणमें प्रथम कार्य सत्तारूपथा और उससे प्रकट हुआथा उसीमें लय हो जाना व फिर सत्ता रूप रह जाना है अतीत जो नष्ट होगया व अनागत जो नष्ट नहीं हुआ होनेवाला है ऐसा कार्य नष्ट हुआ नाश होनेपर कारणमें सत्ता रूप रहता है अर्थात् अतीत कालमें था व अनागत (भविष्यत्) कालमें सत्तारूप रहैगा; यह निश्चय कैसे हो. उत्तर–जो अतीत अनागत कार्यका सत्ता न होवै तौ योगियोंको अतीत अनागतका अर्थात् जो होगया है व जो होने

वाला है उसका प्रत्यक्ष होता है ऐसा योगियोंको प्रत्यक्ष न होवे इससे सत्तारूपकार्य पदार्थका कारणमें अतीत अनागत कालमें होना सिद्ध होता है योगियोंको अतीत अनागतके प्रत्यक्ष होनेमें श्रुति स्मृतिका प्रमाण है शंका– जिस प्रकारसे कारणमें कार्यका सत्ता अतीत अनागतमें अंगिकार किया जाता है और यह कहा जाता है कि जो अभिव्यक्तिसे पहिले कार्यका कारणमें सत्ता न होवे तौ असत् कार्यकी अभिव्यक्ति होना संभव नहीं है इसी प्रकारसे अभिव्यक्तिका भी पूर्वसत्ता अंगीकार करना चाहिये नहीं असत् अभिव्यक्तिकी अभिव्यक्ति न होना चाहिए इससे सत्कार्य होनेके सिद्धांतको रक्षाकेलिये अभिव्यक्तिकीभी अभिव्यक्ति मानना उचित है परन्तु ऐसा माननेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति है इस का उत्तर यह है ॥ १२१ ॥

पारम्पर्यतोऽन्वेषणाबीजाङ्कुरवत् ॥१२२॥

परम्परारूपसे जीव अङ्कुरके तुल्य खोजना है ॥१२२॥

यथा बीज व अंकुर दोनों प्रत्यक्षसे सिद्ध है इससे सत् होनेमें संदेह नहीं है परन्तु अंकुर वा वृक्षसे बीज प्रथम उत्पन्न हुवा अथवा बीजसे अंकुर हुवा यह जाना नहीं जाता इसी प्रकारसे कारण कार्यके सत् होनेमें संदेह नहीं है परन्तु अभिव्यक्तिके सत्ता माननेमें बीज व अंकुरकी सदृश खोजना है इससे अनवस्था दोष मानना चाहिये केवल यह समाधान अंगीकारके योग्य नहीं समझा जाय सकता इससे दूसरा समाधान आगे सूत्रमें वर्णन किया है ॥ १२३ ॥

उत्पत्तिवद्वादोषः ॥ १२३ ॥

उत्पत्तिके समान दोष रहित है ॥ १२३ ॥

यथा घटकौ उत्पत्तिकी उत्पत्ति, उत्पत्तिका स्वरूपही है इसी प्रकारसे हमको घटके अभिव्यक्तिकी अभिव्यक्तिको मानना चाहिये इससे यथा-

उत्पत्तिमें अनवस्था दोष नहीं है तथा अभिव्यक्तिमें न मानना चाहिये क्योंकि जो असतकी उत्पत्ति मानते हैं तौ जब सबकी उत्पत्ति होती है तौ उत्पत्तिकीभी उत्पत्ति होना चाहिये और ऐसा माननेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी परन्तु अनवस्थाका अंगीकार नहीं होता उत्पत्तिकी उत्पत्ति, उत्पत्तिका स्वरूपही है इसी प्रकारसे अभिव्यक्तिमें माननेसे अभिव्यक्तिका मानना दोषरहित है ॥ १२३ ॥ पूर्वही कार्यसे मूल कारणके अनुमान होनेका वर्णन किया गया है अब कार्योंके लक्षण वर्णन करते हैं ॥१२३॥

हेतुमदनित्यमव्यापिसक्रियमनेकमाश्रितंलिङ्गम् ॥ १२४ ॥

हेतुमान अनित्य व्यापक नहीं क्रियासंयुक्त अनेक आश्रित लिङ्ग है ॥ १२४ ॥

लिंगशब्द महत्तत्व आदिकार्य वाचक है परन्तु यहाँ महत्तत्व मात्र विशेष कार्य कहनेका प्रयोजन नहीं है सामान्य कार्य अर्थमें लिंगशब्द कहा है अर्थात् कार्यका यह लक्षण वर्णन किया है कि जो हेतुमान अर्थात् कारणवान् अनित्यहो व्यापक नहो क्रिया संयुक्तहो अनेकहो आश्रितहो वह लिंग (कार्य) है अर्थात् कार्यकारणवान् व अनित्य होता है और यथा कारण प्रधानका व्यापक होना पूर्वही कहा गया है इस प्रकारसे कार्य व्यापक नहीं होता व क्रियासंयुक्त होता है अर्थात् नियतकारणसे उत्पन्न होनेकी क्रिया संयुक्त होता है अनेक होता है अर्थात् उत्पत्ति वा सृष्टि भेदसे अनेक प्रकारके भेद संयुक्त भिन्न होता है व अवयवयोंमें आश्रित होता है ॥ १२४ ॥

आञ्जस्यादभेदतोवागुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिःप्रधानव्यपदेशाद्वा ॥ १२५ ॥

प्रत्यक्षसे अथवा गुण सामान्य (जाति) आदिके भेद न होनेसे उसकी सिद्धि है अथवा प्रधानके वर्णनसे ॥ १२५ ॥

उसकी अर्थात् कार्यकी सिद्धि कहीं प्रत्यक्षसे होती है यथातन्तु आदिकोंसे पट आदिकार्योंकी होती है, कहीं गुण सामान्य आदिके भेद न होनेसे अर्थात् गुण सामान्य (जाति) के भेद न होनेसे उसकी सिद्धि अनुमानसे होती है यथा निश्चय आदिगुण होने व कारणके विरुद्ध धर्म होनेसे महत्तत्व आदिकोंकी सिद्धि होती है जैसे महापृथिवी आदिके सामान्यात्मकरूप (जातिरूप) होनेसे व उसके मात्रा विरुद्ध होनेसे पृथिवी कार्य आदिकोंकी होती है तथा प्रधानके व्यपदेशसे अर्थात् श्रुतिमें प्रधानके वर्णनसे कारणसे भिन्न कार्यके होनेकी सिद्धि होती है ॥ १२५ ॥

त्रिगुणाचेतनत्वादिद्वयोः ॥ १२६ ॥

त्रिगुण व अचेतन होनेसे आदिसे दोनोंका ॥१२६॥

दोनों कार्य कारणोंका त्रिगुण व अचेतन आदि होनेसे साधर्म्य है अर्थात् दोनोंका समान धर्म होना पाया जाता है कारण रूप प्रकृति त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व रजतम गुणरूप है वह महत्तत्व आदि कार्यरूपमें सत्व आदि त्रिगुण कारण रूपसे प्राप्त है अथवा सत्व आदि शब्दोंसे सुख दुःख मोह त्रिगुण महत्तत्त्व कार्यमें कहे जानेसे कार्य व कारणमें त्रिगुण होनेसे दोनोंका साधर्म्य है ॥ १२६ ॥

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यंवैधर्म्यम् ॥ १२७ ॥

प्रीति अप्रीति विषाद आदिसे अर्थात् विषाद आदि भेदोंसे गुणोंका परस्पर वैधर्म्य है ॥१२७॥

गुणोंका सत्व आदि गुणोंका प्रीति अप्रीति विषाद आदि भेदसे परस्पर वैधर्म्य है अर्थात् परस्पर विरुद्ध धर्म होना पाया जाता है आदि शब्द अन्य सत्त्व गुण आदिके धर्म ग्रहण करनेसे प्रयोजन है यथा सत्त्व गुण प्रसन्नता, हलकापन, संग, प्रीति, क्षमा, संतोष, आदिभेद संयुक्त सुखात्मक है. रजोगुण शोक, अप्रीति, आदि नाना भेदसे दुःखात्मक है तमोगुण निद्रा, आलस्य, आदि भेदसे मोहात्मक है प्रीति आदिकोंके गुणधर्म होना कहनेसे सत्त्व आदिकोंका जिनमें यह गुण आश्रित हैं द्रव्य होना सिद्ध है ॥ १२७ ॥

लघ्वादिधर्मैःसाधर्म्यंवैधर्म्यंचगुणानां ॥ १२८ ॥

लघु (हलका होना) आदि धर्मोंके साथ गुणोंका साधर्म्य व वैधर्म्य दोनों हैं ॥१२८॥

लघु आदि धर्मके साथ सब सत्वगुण व्यक्तियोंका साधर्म्य है रज, तम गुणोंके साथ वैधर्म्य है इसी प्रकारसे चंचलत्व आदि धर्मके साथ सब रजोगुण व्यक्तियोंके साथ साधर्म्य है सत्व गुण व तमोगुणके साथ वैधर्म्य है गुरुत्व (गरुवाई) धर्मके साथ सब तमो गुणव्यक्तियोंका साधर्म्य है सत्व गुण व रजोगुणके साथ वैधर्म्य है कारण द्रव्य सत्व आदि शब्द स्पर्श आदि गुणोंसे रहित है ॥ १२८ ॥

उभयान्यत्वात्कार्यत्वंमहदादेर्घटादिवत् ॥ १२९ ॥

दोनोंसे अन्य होनेसे महत्तत्व आदिका घट आदिके तुल्य कार्य होना सिद्ध होता है ॥ १२९ ॥

दोनों प्रकृति व पुरुषसे अन्य होने अर्थात् भिन्न होनेसे महत्तत्व आदि घट आदिके तुल्य कार्य हैं महत्तत्त्व आदि पंचभूत पर्यंत भोग्य

होनेसे भोक्ता पुरुष नहीं है प्रकृतिभी नहीं है क्योंकि महत्तत्त्व आदि कार्य रूपका नाश होता है जो नाश न होवै तौ मोक्षकी सिद्धि न होवै कारणरूप प्रकृतिका नाश नहीं है इससे प्रकृति पुरुषसे भिन्न होना महत्तत्त्व आदिका सिद्ध होता है भिन्न होनेसे कार्य होना सिद्ध होता है१२९

परिमाणात् ॥ १३० ॥

परिमाणसे ॥ १३० ॥

परिमाण होनेसे अर्थात् परिच्छिन्न होनेसे महत्तत्त्व आदिका कार्य होना सिद्ध होता है क्योंकि परिच्छिन्न पदार्थका नाश होता है कारणका नाश नहीं होता ॥ १३० ॥

समन्वयात् ॥ १३१ ॥

समन्वयसे ॥ १३१ ॥

समन्वयका अर्थ सदृश गति होना अथवा पीछे चलना है अभिप्राय एकका दूसरे वा औरोंके अनुसार होना है अवयव युक्त अन्न आदिकार्यों के अनुसार होनेसे बुद्धि आदि तत्त्वोंका कार्य होना विदित होता है उपवास आदिमें अन्न न खानेसे बुद्धि आदिकी क्षीणता और भोजन करनेसे समन्वय करके फिर बुद्धिकी वृद्धि होती है निरवयव नियत कारणमें अन्न आदिके अवयवोंका प्रवेश होना घटित नहीं होता ॥१३१॥

शक्तितश्चेति ॥ १३२ ॥

शक्तिसेभी ॥ १३२ ॥

शक्तिसेभी अर्थात् शक्ति होनेसेभी महत्तत्त्व आदि कार्य हैं शक्तिसे अभिप्राय करणसे है पुरुषका जो करण है वह चक्षु आदिकी तुल्य कार्य है पुरुषमें विषय अर्पण करनेवाला होनेसे महत्तत्त्व करण है प्रकृति कारण

नहीं है महत्तत्त्वके करण होनेसे कार्य होना सिद्ध होनेसे औरोंकाभी जे महत्तत्वके कार्य हैं उनका कार्य होना सिद्ध है ॥ १३२ ॥

तद्धानेप्रकृतिःपुरुषोवा ॥ १३३ ॥

उसके हान होनेमें प्रकृति अथवा पुरुष है ॥१३३॥

उसके (कार्यके) न होनेमें अर्थात् कार्य न माननेमें जो परिणामी है तौ प्रकृति है जो परिणामी नहीं है व भोक्ता है तौ पुरुष है यह भाव है ॥१३३॥ शंका—कार्य न माना जावै और प्रकृति पुरुषभी न होवै तौ क्या हानि है ॥उत्तर—

तयोरन्यत्वेतुच्छत्वम् ॥ १३४ ॥

उनसे अन्य होनेमें तुच्छत्व है ॥ १३४ ॥

उनसे अर्थात् प्रकृति पुरुषसे भिन्न होनेमें कार्य पदार्थका खरहाके सींग आकाशके फूलके समान असत् व तुच्छ होनाहै ॥ १३४ ॥

कार्यात्कारणानुमानंतत्साहित्यात् ॥१३५

कार्यसे कारणका अनुमान कार्य साहित्यसे करनेके योग्य है ॥ १३५ ॥

कार्यसे जो कारणका अनुमान करना कहाहै वह कार्य साहित्यहीसे करनेके योग्य है अर्थात् कार्यद्वारा जो कारणके होनेका अनुमान होता है उस कारणका कार्य सहित होना अनुमान करनेके योग्यहै अर्थात् कार्य उत्पन्न होनेके पूर्वही कारण कार्य सहितही था यथा तिलमें तेल होताहै इत्यादि ऐसा अनुमान करना चाहिये ॥ १३५ ॥

अव्यक्तंत्रिगुणाल्लिंगात् ॥ १३६ ॥

त्रिगुण कार्यसे अव्यक्त (सूक्ष्म) है ॥ १३६ ॥

त्रिगुणसे महत्तत्व कार्य रूपसेभी मूल कारण अव्यक्त सूक्ष्महै महत्त त्वके सुख आदि गुण साक्षात् किये जातेहैं प्रकृतिके गुणभी साक्षात् नहीं होते प्रधान परम अव्यक्त है महत्तत्व उसकी अपेक्षा व्यक्त है यह अर्थ है ॥ १३६ ॥

शंका–परम सूक्ष्म है यह कहकर प्रकृतिको मानलेना मात्र मिथ्या वाद है ॥ उत्तर–

तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः ॥ १३७ ॥

उसके कार्यसे उसकी सिद्धि होनेसे अपलाप नहीं है१३७

उसके अर्थात् प्रकृतिके कार्यसे उसकी प्रकृतिकी सिद्धि होनेसे अपलाप (असत् कथन) नहीं है ॥ १३७ ॥

प्रकृतिके अनुमानका विचार करिकै अब पुरुषका विचार किया जाता है॥

सामान्येनविवादाभावाद्धर्मवन्नसाधनम् ॥१३८

सामान्यसे विवादके अभाव(नहोने) से धर्मके समान॥१३८॥

जिसवस्तुमें सामान्यसे विवाद नहीं है उसके स्वरूपसे साधनकी अपेक्षा नहीं होती अर्थात् उसका साधन अपेक्षित नहीं होता यथा धर्मके साधनकी अपेक्षा नहीं होती यह भावहै धर्मीमेंभी विवाद होनेसे सामान्यसेभी जिस प्रकारसे प्रकृतिका साधन अपेक्षितहै अर्थात् प्रकृतिके साधनकी अपेक्षा होती है इस प्रकारसे पुरुषका साधन अपेक्षित नहीं है क्योंकि चेतनके सिद्ध न होने व नमाननेमें जगत्के अंध होनेका प्रसंग है मैंहूं ऐसा माननेवाला भोक्ता पदार्थमें सामान्यसे बौद्धोंकाभी विवाद नहीं है अर्थात् बौद्ध व सम्पूर्ण मनुष्य सामान्यसे मैं पदार्थको मानते हैं यथा धर्मको सामान्यसे बौद्ध सब अंगीकार करतेहैं कोई धर्म व गुणपदार्थको निषेध नहीं कर सकता ततवस्तुके आरोपण करनेसे धर्म होनेका अंगीकार होही जाताहै इसी प्रकारसे मैं पदार्थका अंगीकार होताहै इससे

पुरुषका साधन अपेक्षित नहीं है पुरुषमें विवेक नित्य होना आदिसाध-न मात्र अनुमान करनेके योग्यहै अब शरीर आदिसे पुरुष भिन्न है यह सिद्ध करनेके प्रयोजनसे प्रथम विवेकके प्रतिज्ञा विषयमें सूत्र वर्ण-न करते हैं ॥ १३८ ॥

शरीरादिव्यतिरिक्तःपुमान् ॥ १३९ ॥

शरीर आदिसे पुरुष भिन्न है ॥ १३९ ॥

शरीर आदि प्रकृति पर्य्यंत चौवीस तत्व व चौवीस तत्वमय जे पदार्थ हैं उनसबसे भोक्ता पुरुष भिन्नहै ॥ १३९ ॥

संहतपरार्थत्वात् ॥ १४० ॥

संहत परके अर्थ होनेसे ॥ १४० ॥

संहत जो कार्यनिमित्तक संयोगहै वह प्रकृति आदिका शय्या आदिके समान परके अर्थहै परके अर्थ होनेसे यह अनुमान होताहै कि संहत जो देहादि हैं उनसे संहत रहित पुरुष भिन्न व पर है ॥१४०॥

त्रिगुणादिविपर्ययात् ॥ १४१ ॥

त्रिगुण आदिके विपर्ययसे ॥ १४१ ॥

सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंकें जे सुख दुःख मोह आदि धर्म हैं उनसे विपर्यय अर्थात् विपरीत होनेसे, पुरुष भिन्न है क्योंकि शरीर आदिकोंका सुखदुःखात्मक होना आदि धर्म है वह सुख आदिके भो-क्तामें संभव नहीं होते क्योंकि वह सुख आदिका ग्रहण करनेवालाहै ग्रह-ण करनेवाला व जो ग्रहणके योग्यहै, कर्म व कर्ताके विरोधसे दोनों एक नहीं हो सकते आदि शब्दसे अविवेकी होना आदि जानना चाहिये॥ १४१

अधिष्ठानाच्चेति ॥ १४२ ॥

अधिष्ठानसेभी ॥ १४२ ॥

अधिष्ठान भोक्ताके संयोगको कहते हैं वह प्रकृति आदिकोंके परिणाम रूप भोगके हेतु जे कार्य हैं उनमें कारणहैं भोक्ताके अधिष्ठानसे भोगायतन (भोगस्थान) कानिर्माण हुआ है जैसा आगे वर्णन किया है इससे पुरुष प्रकृतिसे भिन्नहै व प्रकृतिसे भिन्न होनेसे प्रकृतिके कार्यों-से भिन्न है क्योंकि विना भेदके संयोग संयोगी भाव नहीं होता इति शब्द समाप्ति अर्थ वाचक है सूत्रमें इति शब्द जो है वह पुरुषके भिन्न होनेके वर्णनकी समाप्ति सूचन अर्थमें है ॥ १४२ ॥

भोक्तृभावात् ॥ १४३ ॥

भोक्तासे भावसे ॥ १४३ ॥

शरीरमें भोक्ताके भाव होनेसे शरीर आदिका स्वरूपही भोक्ता नहीं है शरीर आदिसे भिन्न पुरुष भोक्ता है जो शरीर आदि स्वरूपही भोक्ता माना जाय तौ भोक्ता होनाही असंभव होगा क्योंकि वही कर्म व वही कर्ता नहीं हो सकता अर्थात् शरीरही भोग्य शरीरही भोक्ता नहीं हो सकता ॥ १४३ ॥

कैवल्यार्थप्रवृत्तेश्च ॥१४४॥

मोक्षके अर्थ प्रवृत्ति होनेसेभी॥ १४४ ॥

जो शरीर आदिका भोक्ता होना अंगीकार किया जाय तौ भोक्ताकी मोक्षकेलिये अर्थात् अत्यंत दुःख नाशके अर्थ प्रवृत्ति न होना चाहिये क्योंकि शरीर आदि नष्टही होजाते हैं जो प्रकृतिका मोक्ष होना कहा जावै तौ प्रकृति धर्मी ग्रहण किये जानेसे दुःख स्वभाव सिद्ध होनेसे उसका मोक्ष होना असंभव है इससे मोक्षके अर्थ प्रवृत्ति होनेसेभी पुरुषका भिन्न होना सिद्ध होता है ॥ १४४ ॥

जडप्रकाशायोगात्प्रकाशः ॥ १४५ ॥

जडमें प्रकाशका योग न होनेसे प्रकाश है॥१४५॥

प्रकाश शब्दका अर्थ यहां ज्ञानका है अर्थात् जड लोह आदि पदार्थ-

में ज्ञानका योग न होनेसे ज्ञान स्वरूप चेतन पुरुष सम्पूर्ण जड प्रकृति कार्यसे भिन्न है यह सूत्रका भाव है जो प्रकाश शब्दका अर्थ लौकिक तेजका ग्रहण किया जावै तौ जडके योग होनेका निषेध नहीं हो सकता क्योंकि भौतिक अग्नि सूर्य आदि जड प्रकाश युक्त हैं इनका जड होना ज्ञान होनेके प्रमाणके अभावसे सिद्ध है॥१४५॥शंका-प्रकाशस्वरूप होनेमें धर्म धर्मीका भाव होगा वा नहीं उत्तर-

निर्गुणत्वान्नचिद्धर्मा ॥ १४६ ॥

निर्गुण होनेसे ज्ञान धर्मसंयुक्त वा ज्ञान धर्मवाला नहीं है ॥ १४६ ॥

तेजका प्रकाशही रूपविशेष है उस प्रकाशरूपके आग्रह होनेमेंभी स्पर्श सहित तेजके ग्रहण होनेसे तेज व प्रकाशमें भेद सिद्ध होता है आत्माके ज्ञान संज्ञक प्रकाशके आग्रह कालमें आत्माके भिन्न होनेका ग्रहण नहीं होता इससे धर्म धर्मी भाव शून्य प्रकाश रूपही आत्मा द्रव्य के होनेकी कल्पना कीजाती है उसका गुण होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि संयोगआदिमान है व आश्रित नहीं है गुण किसीमें आश्रित होता है व उसमें संयोग नहीं होता अब यह शंका है कि यह उत्तर यथार्थ नहीं है मैं जानता हूं ऐसा बोध होनेहीसे धर्म धर्मी भावका अनुभव होनेसे पुरुषका ज्ञान धर्मवान् होना सिद्ध होता है इसका उत्तर वर्णन करते हैं ॥ १४६ ॥

श्रुत्यासिद्धस्यनापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात् १४७

श्रुतिसे सिद्धका उसके प्रत्यक्षसे बाधा होनेसे अपलाप नहीं है ॥ १४७ ॥

आत्माका निर्गुण होना केवल अनुमानसे नहीं कहा जाता किन्तु श्रुतिसेभी सिद्ध है श्रुतिमें कहा है "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च"

अर्थ–साक्षी ज्ञानवान केवल निर्गुण है जो श्रुतिसे अर्थात् श्रुति प्रमाणसे निर्गुण सिद्ध है उसके प्रत्यक्षसे बाधा होनेसे अर्थात् प्रत्यक्षसे निर्गुण होना सिद्ध न होनेसे उसका अपलाप (मिथ्या वा असत् कथन) नहीं हो सकता जो श्रुतिप्रमाणसे सिद्ध है वही माननेके योग्य है इससे धर्म धर्मी भेद रहित ज्ञानरूपही आत्माका होना सिद्ध होता है मैं जानता हूं ऐसा बोध होनेमें जो धर्म धर्मी भेद होनेका अनुभव होता है तौ मैं गोरा हूं ऐसा बोध होनेसे शरीर व पुरुषके भेद न होनेका अनुभव होना यथार्थ मानना चाहिये व शरीरसे भिन्न होनेके युक्ति हेतुओंका निषेध होना चाहिये परन्तु ऐसा मानना यथार्थ नहीं हो सकता प्रमाण विरुद्ध है इसी प्रकार से मैं जानता हूँ में धर्मभेद मानना उचित नहीं है अथवा यह मानना चाहिये कि ज्ञान धर्म नित्य परिणाम रहित विशेष धर्म चेतन पुरुषमें होनेसे धर्म धर्मीको अभेद मानकर ज्ञानस्वरूपही पुरुषको माना है इससे निर्गुण कहा है व अन्य बुद्धि वृत्तियोंके भेदको अंतःकरणका गुण माना है इससे बुद्धि वृत्तिभेद गुण पुरुषमें न होनेसे गुणगुणी भावका ग्रहण न करिकै व श्रुति प्रमाणको मुख्य अंगीकार करिकै पुरुष निर्गुण है यह कहा है अब यह शंका है कि जो आत्मा नित्य ज्ञानस्वरूप है तौ ज्ञान नाश न होनेसे सुषुप्ति आदि अवस्थाओंका भेद न होना चाहिए इसका उत्तर वर्णन करते हैं ॥ १४७ ॥

सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम् ॥ १४८ ॥

सुषुप्ति है आदिमें जिसके ऐसा जो अवस्थात्रय है उसका साक्षी होनामात्र पुरुषमें है ॥ १४८ ॥

सुषुप्ति है आदिमें जिसके ऐसा अवस्थात्रय जो अवस्थाका तीन होना है उसका साक्षी मात्र होना पुरुषमें सिद्ध होता है अर्थात् सुषुप्ति स्वप्न जाग्रत अवस्थाओंका साक्षी पुरुष है तीनों अवस्थाके साक्षी होनेसे पुरुषका विलक्षण व शरीर आदिसे पृथक् साक्षी होना सिद्ध होता है इन्द्रिय द्वारा बुद्धिका विषयोंके आकार रूप परिणाम होना जाग्रत अव-

स्या है व संस्कार मात्रसे जन्य उसी प्रकारका परिणाम होना स्वप्न अवस्था है, सुषुप्ति अवस्था अर्द्धलय व समग्र लयके भेदसे दो प्रकारकी होती है अर्द्धलय सुषुप्ति अवस्थामें विषयाकार वृत्ति नहीं होती केवल अपनेमें प्राप्त सुख दुःख मोह आकारही बुद्धिवृत्ति होती है जो सुखरूप बुद्धि वृत्ति न होवै तौ सोकर उठे हुएको मैं सुखसे सोवा ऐसा सुषुप्ति कालके सुख आदिका स्मरण न होवे समग्र लयरूप सुषुप्तिमें सब बुद्धिवृत्तियों का अभाव होता है मृतके तुल्य हो जाता है समग्र सुषुप्ति जो वृत्तियोंका अभाव रूप है उसका पुरुष साक्षी नहीं होता पुरुष वृत्तिही मात्रका साक्षि होता है अन्यथा संस्कार आदि बुद्धिधर्मकाभी साक्षी होना संभव होगा सुषुप्ति आदिका साक्षी होना जिस प्रकारसे बुद्धि वृत्तियां अपनेसें प्रतिबिम्बित होती हैं उनका उसी प्रकारसे प्रकाश कर देना है इसका आगे वर्णन किया जायगा अब यह आशंका है कि यदि सुषुप्ति बुद्धिवृत्तिही सुख दुःख गोचर मानी जाती है तौ जाग्रत आदिमेंभी सम्पूर्ण वृत्तियों का वृत्ति ग्राह्य होना अंगीकार करना युक्त है अपने गोचर वृत्ति होनेहीसे अपने व्यवहार हेतुका सामान्यसे कहना यथार्थ होनेसे वृत्तियोंका कोई साक्षी पुरुष कल्पना करना व्यर्थ है इसका उत्तर यह है कि ऐसा मानना युक्त नहीं है क्योंकि नियमके साथ अपने गोचर वृत्तियोंके कल्पना करनेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी अनवस्था दोषकी प्राप्ति यह है कि मैं सुखी हूँ इत्यादि वृत्तियोंमें सुख आदिके विशेषणता सहित होनेसे आदिमें उनका ज्ञान निर्विकल्पक होना अपेक्षित है अनन्त निर्विकल्पक वृत्तियोंकी अपेक्षा होनेसे अनवस्थाकी प्राप्ति है इससे नित्य एकही आत्मा ज्ञान स्वरूपके ज्ञानकी कल्पना कीजाती है व एकही आत्माका मानना यथार्थ विदित होता है मैं सुखी हूँ इत्यादि विशिष्ट ज्ञानके अर्थ बुद्धिवृत्तिहीका तादृशाकार (उसीके आकार रूप) होना संभव है पुरुषमें वृत्तिसारूप्य मात्र माननेसे वृत्ति आकारसे भिन्न आकार होना अंगीकारके योग्य न होने व पुरुषही स्वतंत्र आकार माननेसे परिणाम होनेकी प्राप्ति व परिणामसे अनित्य होनेकी सिद्धि

होगी इससे पुरुषको साक्षी मात्र मानना युक्त है अब यह प्रश्न है कि सुषुप्ति आदिमें साक्षीमात्र होनेसे कोई पुरुष होना सिद्ध होनेमेंभी यह संशय होता है कि पुरुष एकही है अथवा अनेक हैं इसपर पूर्वपक्ष यह है कि जाग्रत् आदि अवस्थारूप जे विरुद्ध धर्म हैं वह बुद्धिधर्म होना संभव होनेसे व श्रुतिमेंभी एक होना कहनेसे आत्मा एकही है परन्तु यद्यपि एक आत्मा सब बुद्धिओंका साक्षी है तथापि जिस बुद्धिकी वृत्ति होती है वही बुद्धि अपनी वृत्ति विशिष्टके साथ साक्षीको ग्रहण करती है अथवा प्राप्त होती है यथा मैं घटको जानता हूँ इत्यादि रूपोंसे उत्तर–यह कहना यथार्थ नहीं है क्योंकि ऐसा कहनेसे यह घट है यह एक बुद्धिकी वृत्ति होनेमें मैं घटको जानता हूँ यह अनुभव अन्य बुद्धिकी वृत्तिद्वारा नहीं हो सकता अब सिद्धांत इसका अगले सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १४८ ॥

जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ १४९ ॥

जन्म आदिके व्यवस्थासे पुरुषोंका बहुत होना है अर्थात् बहुत होना सिद्ध होता है ॥ १४९ ॥

पुण्यवान् स्वर्गको जाता है पापी नरकको जाताहै अज्ञानी बंधको व ज्ञानी मोक्षको प्राप्त होताहै कोई मनुष्यजाति कोई पशुजाति आदि अनेक योनिओंमें भिन्न भिन्न शरीरमें उत्पन्न हो भिन्न भिन्न अवस्था व दुःख सुखको प्राप्त होतेहैं इस प्रकारसे पुरुषका बहुत होना सिद्ध होताहै परन्तु जन्म मरणमें न पुरुषकी उत्पत्ति है न पुरुषका विनाश है केवल अपूर्व देह इन्द्रिय आदिके संघात विशेषसे संयोग व वियोग होता है ॥ १४९ ॥ अब पुरुषके एक होनेके प्रतिपादनका पूर्वपक्ष यह है.

उपाधिभेदेप्येकस्यनानायोगआकाशस्येवघटादिभिः॥१५०॥

उपाधि भेदमें एकका भी नाना योग होता है यथा आकाशका घट आदिकोंके साथ होता है ॥ १५० ॥

उपाधिसे एकही पुरुषका नाना शरीरके साथ योग होताहै यथा एकही आकाशका नाना घट ग्रह आदिसे संयोग होता है जैसे एक घट न रहने व द्वितीय घटके योग होनेसे आकाश प्रदेशकी व्यवस्था होती है इसी प्रकारसे विविध देहके जन्ममरण आदिसे पुरुषकी व्यवस्था है ॥ १५० ॥

उपाधिर्भिद्यते नतुतद्वान् ॥ १५१ ॥

उपाधि भेदको प्राप्त होती है उस उपाधिवालेमें भेद नहीं होता ॥ १५१ ॥

उपाधि भेदको प्राप्त होतीहै अर्थात् नाना रूप होती है उपाधिमें भेद होनेसे उस उपाधि विशिष्टमें अर्थात् पुरुषमें भेद नहीं होता इसका विशेष वर्णन छठवे अध्यायमें किया जायगा ॥ १५१ ॥

एवमेकत्वेनपरिवर्तमानस्यनविरुद्धधर्माध्यासः ॥ १५२ ॥

इसप्रकारसे एक भावसे सर्वत्र वर्तमानका विरुद्ध धर्मका प्रसंग नहीं है ॥ १५२ ॥

इस प्रकारसे अर्थात् उपाधि मात्रसे भेदको प्राप्त तत्त्व भावसे आकाशके समान एक भावसे सर्वत्र सब दिशामें वर्तमान आत्माका विरुद्ध धर्म जन्म मरणमें प्रसंग नहीं है अर्थात् सर्व व्यापकका जन्म मरण होना संभव नहीं होता जन्ममरण परिच्छिन्न पदार्थका होता है पुरुषमें बुद्धि धर्म सुख दुःख आदि व शरीर धर्मोंकी व्यवस्था स्फटिकमें अरुण नीलरूप आदि धर्मोंकी व्यवस्था होनेके तुल्य होती है ॥ १५२ ॥

अन्यधर्मत्वेऽपिनारोपात्तत्सिद्धि रेकत्वात् ॥ १५३ ॥

निश्चय करके अन्यके धर्म होनेमेंभी आरोप करनेसे उसकी सिद्धि नहीं है एक होनेसे ॥ १५३ ॥

अन्यके धर्महोनेमे अर्थात् पुरुष भिन्न प्रकृतिके धर्म होनेमें सुख आदि धर्म आरोप करनेसे पुरुषमें उसकी अर्थात् व्यवस्थाकी सिद्धि नहीं है अभिप्राय यह है कि पुरुषमें सुख आदि आरोप न करनेसेभी आरोपका अधिष्ठान पुरुषके एक होनेसे भेद होनेकी सिद्धि नहीं होती क्यों कि आकाश यद्यपि एक है परन्तु घट अवच्छिन्न आकाशोंकी घटोंके भेदसे भिन्नता होनेसे औपाधिक धर्मव्यवस्था घटित होती है आत्मत्व व जीवत्व आदि उपाधि अवच्छिनकी व्यवस्था होना घटित नहीं होता क्योंकि उपाधिके वियोगमें घटोंके आकाशोंके नाश होनेके समान उपाधिके नाशसे जीव नहीं मरता व एकही जीव वा पुरुषमें सुख दुःख जन्म मरण विरुद्धधर्म सिद्ध नहीं होते चैतन्यहीं मात्रसे एकता जैसा पूर्वही कहागयाहै मानना उचित है ॥ १५३ ॥

नाद्वैतश्रुतिविरोधोजातिपरत्वात् ॥ १५४ ॥

जातिपर होनेसे अद्वैत श्रुतिका विरोध नहीं है ॥ १५४ ॥

पूर्व पक्ष यह है कि कहीं श्रुति स्मृतिमें पुरुष व ब्रह्मका भेद कहाहै व कहीं अभेद अद्वैत वर्णन किया है द्वैत प्रतिपादक वाक्योंका अद्वैत प्रतिपादक श्रुति वाक्योंसे विरोध होगा इसका उत्तर यह है कि अद्वैत श्रुतिका अभिप्राय जातिपर होनेसे अद्वैत श्रुतियोंका विरोध नहीं है सामान्य धर्म होना जातिहै समधर्म होना मात्र जो जाति है उसीके प्रतिपादनमें अद्वैत श्रुतियोंका तात्पर्य है और जो द्वैत नाना पुरुष होनेके वर्णनमें श्रुति वाक्य हैं वह साधारण यथा सुख दुःख अवस्था

भेदसे व्यवस्थालोकमें सिद्ध है उसके प्रतिपादन विषयमें है व्यक्ति व व्यवस्था भेदसे व्यवस्थाप्रतिपादक वाक्य होने व अद्वैत श्रुतिके तत्त्वरूप जाति प्रतिपादक होनेसे अर्थात् विजातीय द्वैतके निषेध परहोनेसे द्वैत व अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियोंमें विरोध नहीं है यथा अनेक दीप उपाधि व व्यक्ति भेदसे अनेक कहे जाते हैं और जो भेद अंगीकार न करिके तत्त्व रूपसे सबको तेज रूप मात्रसे एकही पदार्थ मानैं तौ कुछ विरोध नहीं है इसी प्रकारसे पुरुषमें भेद व अभेदका होना जानना चाहिये ॥ १५४ ॥

शंका–आत्माके एक न होनेके समान एक जाति व रूप होनेमेंभी नानारूप व भेद प्रत्यक्ष होनेसे विरोध होना सिद्ध होताहै इससे एक जाति कहनाभी यथार्थ नहीं है इसके उत्तरमें यह सूत्र है–

विदितबंधकारणस्यदृष्ट्यातद्रूपम् ॥१५५॥

विदितबंध कारणकी दृष्टिसे रूपभेद नहीं है ॥१५५॥

विदित बंध कारण जो अविवेकहै उस अविवेकहीकी दृष्टिसे पुरुषमें रूप भेद है भ्रांति दृष्टिसे रूपभेद होनेसे रूपभेदकी सिद्धि नहीं है॥१५५॥तथा-

नान्धादृष्ट्याचक्षुष्मतामनुपलंभः॥ १५६ ॥

अन्धकी दृष्टिमें न प्राप्त होनेसे नेत्रवालोंको अप्राप्त नहीं है ॥ १५६ ॥

अभिप्राय यह है कि अंध जो मूढ अज्ञान हैं उनकी दृष्टिमें न प्राप्त होनेसे अर्थात् न देखने अथवा न जाननेसे नेत्रवान जो ज्ञानी है उनको अप्राप्त अर्थात् अदृश्य नहीं है अज्ञानीको नहीं बोध होता परंतु ज्ञानी को एकरूप होना बोध होता है इससे प्रत्यक्षसे बोधगत न होनेसे गतिसे एक रूप होनेकी असिद्धि नहीं है ॥ १५६ ॥

वामदेवादिर्मुक्तोनाद्वैतम् ॥ १५७ ॥

वामदेव आदि मुक्त हैं अद्वैत नहीं है ॥ १५७ ॥

अभिप्राय यह है कि जब कहने वाला कहता है कि वामदेव आदि मुक्त हैं इस कहनेसे यह विदित होता है कि कहनेवाला अपनेमें बंध होना मानकर यह कहता है कि वामदेव आदि मुक्त हैं मैं अभी बंधमें हूँ इससे द्वैतका होना सिद्ध है एक बद्ध व एक मुक्त होनेसे अखण्ड अद्वैत नहीं है ॥ १५७ ॥ वामदेव आदिभी परम मोक्षको नहीं प्राप्त हुए इस वर्णनमें यह सूत्र है ॥

अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यद प्येवम् ॥ १५८ ॥

अनादि कालसे वर्तमान कालतक अभाव होनेसे भविष्यत् कालमेंभी इसीप्रकारसे ॥ १५८ ॥

अनादि कालसे अबतक कोई परम मोक्षको नहीं प्राप्त हुआ तौ होने वाले कालमेंभी इसी प्रकारसे किसीकी पर मोक्ष नहीं होगा क्योंकि जो होने योग्य होता तौ अबतक किसीको अवश्य होता ॥ १५८ ॥

इदानीमिवसर्वत्रनात्यन्तोच्छेदः ॥ १५९ ॥

इसकालके समान सर्वत्र (सबकालमें) अत्यंत निवृत्ति नहीं है ॥ १५९ ॥

वर्तमान कालके समान सर्वत्र अर्थात् सब कालमें अत्यंत बंधकी निवृत्ति कि जिससे फिर कभी बंधन हो किसी पुरुषकी नहीं है यह अनुमानसे सिद्ध होता है क्योंकि जो परम मोक्षको प्राप्त होते जाते तो सबके मुक्त हो जानेपर संसारकी उत्पत्ति प्रलयका अभाव होजाता अथवा किसी कालमें होजाना संभव है परन्तु श्रुतिप्रमाण व अनुमानसे ऐसा होना सिद्ध नहीं होता ॥ १५९ ॥ शंका—जो पुरुषको एक रूप होना कहा है

व वर्तमानमें उसके विरुद्ध बोध होता है तो यह जानना चाहिए कि मोक्ष कालमे वा सब कालमें किस कालमें पुरुषका एक होना प्रतिपादन किया है समाधान यह है ॥

व्यावृत्तोभयरूपः ॥ १६० ॥

दोनोंरूप निवृत्त है ॥ १६० ॥

मोक्ष काल व जब मोक्ष नही है दोनों कालमें पुरुष बंधसे निवृत्त है व श्रुति स्मृतिसे नित्यमुक्त एकरूप पुरुष सिद्ध है अनेक रूप व भेद मायासे अज्ञानसे है ॥ १६० ॥ शंका साक्षी होनेकी अनित्यता होनेसे पुरुषोंका सदा एकरूप होना किस प्रकारसे हो सकता है ? समाधान ॥

साक्षात्संबंधात्साक्षित्वम् ॥ १६१ ॥

साक्षात् सम्बंधसे साक्षित्व है ॥ १६१ ॥

पुरुषका साक्षी होना जो कहा है वह साक्षात् उसके सम्बंध मात्रसे कहा है परिणाम रूप होनेसे नही कहा साक्षात् सम्बंधकरिके बुद्धि मात्रके साक्षी होनेका बोध होता है पुरुषमें साक्षात् सम्बंध अपनी बुद्धि वृत्तिहीका होता है व सम्बंध प्रतिबिम्बमात्रका है जैसे स्फटिकमें अरुण पदार्थके प्रतिबिम्बसे अरुणताकी प्रत्यक्षता होती है संयोगमात्रका सम्बंध नही है ॥ १६१ ॥ व द्वयमुक्त होने दोनो कालमें पुरुषके बंधरहित होनेमें विशेष वर्णन करते हैं

नित्यमुक्तत्वम् ॥ १६२ ॥

नित्यही मुक्त होना माननें योग्य है ॥ १६२ ॥

नित्यमुक्त होना अर्थात् नित्यही पुरुष सब दुःखसे शून्य है दुःख आदि बुद्धिके परिणामसे होते हैं पुरुषार्थ दुःख भोगकी निवृत्तिको कहतेहैं वह प्रतिबिम्बरूप दुःखकी निवृत्ति है यह पूर्वही कहा गयाहै॥१६२॥

औदासीन्यंचेति ॥ १६३ ॥

उदासीन होना भी ॥ १६३ ॥

उदासीन होना अर्थात् कुछ कर्म न करना भी पुरुषसे सिद्ध होता है पुरुष कर्तृत्वरहित है श्रुतिमें कहा है " कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्धीर्ह्रीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवेति" अर्थ काम विचि-कित्सा (संशय) श्रद्धा अश्रद्धा धैर्य अधैर्य विवेक लज्जाभयये सब मन ही है अर्थात् ये सब मनहींके कार्य है इससे पुरुष दुःख व कर्मबंधसे रहित है इतिशब्द सूत्रमें पुरुषधर्मप्रतिपादनकी समाप्ति सूचनके अर्थ है॥१६३॥शंका जैसा वर्णन किया है इस प्रकारसे पुरुष व प्रकृतिका विवेकसे परस्पर विरुद्ध धर्म होना सिद्ध होनेमें पुरुषका कर्ता होना व बुद्धिका ज्ञाता होना कैसें सिद्ध होता है उत्तर ॥ १६३ ॥

उपरागात्कर्तृत्वंचित्सान्निध्याच्चित्सा न्निध्यात्॥ १६४ ॥

उपरागसे कर्ता होना ज्ञानसंयोग होनेसे ज्ञानसंयोग होनेसे ॥ १६४ ॥

पुरुष व बुद्धिका यथायोग्य परस्पर सम्बन्ध है पुरुषमें जो कर्त्ता होनेका धर्म है वह बुद्धिके उपराग वा बुद्धिप्रतिबिंबसे है व बुद्धिमें जो ज्ञान है वह पुरुषके समीप होनेके सम्बन्धसे ज्ञानका प्रकाश है न पुरुषमें अपना स्वाभाविक कर्ता होनेका धर्म है न बुद्धिमें स्वाभाविक ज्ञान है एक दूसरेके सम्बन्धद्वारा है जैसे अग्नि व लोहके परस्पर संयोग विशेषसे परस्पर धर्म अर्थात् उपाधिसे एक दूसरे उष्णता व कठिनता होती है दोवार ज्ञानसंयोग होनेसे कहना अध्यायकी समाप्तिसूचनके अर्थ है ॥ १६४ ॥

इति श्रीप्यारेलालात्मजवांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि-श्रीप्रभुदयालुनिर्मिते सांख्यदर्शने देशभाषाकृतभाष्ये विषयोऽध्याय स्समाप्तः ॥ समाप्तश्चायं प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

सृष्टिविषयवर्णनमें द्वितीय अध्यायका आरंभ किया जाता है इस अध्यायमें सृष्टिका वर्णन है इस संशय निवारणके अर्थ कि प्रकृतिका सृष्टिकरनेमें प्रयोजन क्याहै क्योंकि विना प्रयोजन सृष्टि होनेमें मुक्तकाभी बंध होनेका प्रसंग है और विना प्रयोजन प्रवृत्ति नहीं होती न होना संभव है प्रथम सृष्टि उत्पन्न करनेका प्रयोजन वर्णन करते हैं ॥

विमुक्तमोक्षार्थंस्वार्थंवाप्रधानस्य॥ १ ॥

विमुक्तके[1] मोक्षके अर्थ अथवा प्रधानका अपने अर्थ है १

स्वभावसे दुःख बंधसे रहित विमुक्त पुरुषके प्रतिबिम्बरूप दुःखसे मोक्षके अर्थ वा विमुक्त नाम बद्धके मोक्षके अर्थ अथवा अपने पारमार्थिक दुःखसे मोक्षके अर्थ प्रधानका जगत उत्पत्तिरूप कर्म है उत्पत्ति करनेका अर्थ पूर्व अध्यायके सम्बन्धसे ग्रहण किया जाता है जगत्के कर्ता होनेके वर्णनमें अध्याय समाप्त हुवा है उस सम्बन्धसे सृष्टि करनेका अर्थका ग्रहण होता है यद्यपि मोक्षके समान भोगभी सृष्टिउत्पत्तिका प्रयोजन है क्योंकि विना सृष्टि व शरीरआदिके पुरुषको सांसारिक अनेक विषय सुख प्राप्त नहीं हो सकता विना सृष्टि जिन पदार्थोंमें सुख उत्पन्न करने अथवा दुःख उत्पन्न करनेका धर्म है उनका सफल होना व पुरुषको अनेक प्रकारके सांसारिक विषय भोग होना संभव नहीं होता तथापि मुख्य होनेसे मोक्षहीको कहा है विना बंध मोक्ष सुख बोध होना संभव नहीं है क्योंकि विनानिकृष्टके उत्कृष्टका ज्ञान नहीं हो सकता इससे बंधके पश्चात् मोक्षके अर्थ अर्थात् मोक्षसुखके लिये सृष्टिका प्रयोजन है यह भाव सूत्रका विदित होता है जो यह संशय होवै कि प्रकृति जडमें यह ज्ञान होना कि किसके अर्थ क्या कार्य करना चाहिये संभव नहीं है

---

१ मुक्तका मोक्ष कहना अयुक्त है क्योंकि बद्धका मोक्ष होना संभव है इससे विमुक्तका अर्थ बद्धहीका ग्रहण करना युक्त है और विमुक्तका अर्थ बद्धका इस प्रकारसे होता है विगतं मुक्तं मोचनं यस्य सः विमुक्तः बद्धः तस्य मोक्षार्थं विमुक्तमोक्षार्थं ।

तौ यद्यपि प्रकृति जड है परन्तु पुरुषके संयोगसे चेतनताको प्राप्त हो सृष्टिके करने व बुद्धि संयुक्त होनेका अनुमान होता है. शंका–जो मोक्षके अर्थ सृष्टि है तौ एक वारकी सृष्टिसे संभव होनेमें वारंवार सृष्टि होना जैसा श्रुति स्मृति प्रमाणसे सिद्ध है न होना चाहिए. उत्तर–

विरक्तस्यतत्सिद्धेः ॥ २ ॥

विरक्तको उसकी सिद्धि होनेसे ॥ २ ॥

एक वारकी सृष्टिसे मोक्ष संभव नहीं है जन्म मरण व्याधि आदि विविध दुःखसे जब जीव क्लेशित होता है तब प्रकृति पुरुषके विवेकसे उत्पन्न वैराग्यको प्राप्त होता है उस विरक्तको उसकी (मोक्षकी) सिद्धि होती है ॥२॥ एक वारकी सृष्टिसे वैराग्य न होनेका हेतु कहते हैं–

नश्रवणमात्रात्तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ॥ ३ ॥

अनादि वासनाके बलवान् होनेसे श्रवणमात्रसे उसकी सिद्धि नहीं है ॥ ३ ॥

बहुत जन्मके पुण्यसे धर्म उपदेशका श्रवण होता है उस श्रवणमात्रसे भी विना साक्षात्कार भये वैराग्य सिद्ध नहीं होता साक्षात्कार अनेक जन्मकी अनादि वासनाके बलवान होनेसे शीघ्र (जल्दी) नहीं होता योगनिष्ठासे होता है योगमें अनेक विघ्न होते हैं इससे अनेक जन्मके वैराग्य अभ्यासकी सिद्धिसे कभी किसीकी मोक्ष होती है ॥ ३ ॥

बहुभृत्यवद्वाप्रत्येकम् ॥ ४ ॥

अथवा बहुत भृत्यके प्रत्येकको ॥ ४ ॥

जैसे गृहस्थोंको प्रत्येकको स्त्री पुत्र भृत्य आदि भेदसे बहुत भरण

पोषणके योग्य होते हैं इसी प्रकारसे सत्व आदि गुणोंको प्रत्येकको असङ्ख्य पुरुष मोक्षके योग्य होते हैं इससे कितनेहीं पुरुषके मोक्ष प्राप्त होनेपरभी अन्य पुरुषोंके मोचनके अर्थ सृष्टिका प्रवाह होना घटित होता है क्योंकि पुरुष अनन्त है ॥ ४ ॥ शंका श्रुतिमें कहा है " एतस्मादात्मन आकाशः संभूत इत्यादि " अर्थ इस आत्मासे आकाश उत्पन्न हुवा इत्यादि इससे प्रकृतिमात्रका सृष्टि उत्पन्न करना क्यों कहना चाहिए पुरुषका भी सृष्टि करना श्रुतिसे सिद्ध होता है उत्तर ॥

प्रकृतिवास्तवेचपुरुषस्याध्यासासिद्धिः॥ ५ ॥

प्रकृतिमें वास्तवरूप होनेमें पुरुषके अध्यासकीभी सिद्धि होती है ॥ ५ ॥

प्रकृतिमें सृष्टि उत्पन्न करना वास्तवमें सिद्ध होता है व पुरुषका प्रकृतिके सम्बंधसे सृष्टिके उत्पन्न करनेमें अध्यासमात्र श्रुतिसे सिद्ध होता है यथा सेवकस्वामी सम्बंध होनेसे राजाके सेवक योधाओंको जो जय अथवा पराजय होता है उसका अध्यास (उपचार या आरोप) राजामें किया जाता है इसी प्रकारसे पुरुषकी शक्तिरूप प्रकृतिमें वर्तमान सृष्टि उत्पन्न करनेके धर्मका शक्ति व शक्तिमानको अभेदभाव ग्रहण करिकै शक्तिमान पुरुषमें उपचार किया जाता है॥५॥शंका प्रकृतिमें क्यों वास्तवरूप सृष्टि करना निश्चय किया जाता है क्योंकि सृष्टि स्वप्न आदिके तुल्यभी सुनी जाती है उत्तर. ॥

कार्यतस्तत्सिद्धेः ॥ ६ ॥

कार्यसे उसकी सिद्धि होनेसे ॥ ६ ॥

महत्तत्व आदिकार्योंसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गया है कारणरूप प्रकृतिका सृष्टि करना सिद्ध होता है क्यों कि कार्य कारणके परिणामसे होता है पुरुषमें परिणाम होनेका प्रमाण नहीं होता इससे कारणरूप

प्रकृतिके परिणामसे वास्तवमें प्रकृतिसे सृष्टिका उत्पन्न होना सिद्ध होताहै स्वप्नवत् श्रुतिके कहनेका अभिप्राय स्वप्नवत् अनित्य माननेसे है अन्यथा सृष्टि प्रतिपादक श्रुतिओंमें विरोध आवैगा ॥ ६ ॥ शंका–मुक्त पुरुषोंमेंभी प्रकृति क्यों प्रवृत्त नहीं होती. उत्तर–

चेतनोद्देशान्नियमः कंटकमोक्षवत् ॥ ७ ॥

चेतनके उद्देशसे कांटाके मोक्षके समान नियम है ॥७॥

चेतन ज्ञानवानके उद्देश (कहने)से कांटाके मोक्षके समान प्रकृतिका नियम है अर्थात् जैसे कांटा जो ज्ञानवानके लगता है तौ उससे वह छूट जाता है ज्ञानवान् उसको यत्नसे निकाल डालता है चेतन (ज्ञान-वान) के दुःखदेनेको कांटा समर्थ नहीं होता और वही अज्ञानको पशु आदिको जो नहीं निकाल सकता दुःखदेता है इसीप्रकारसे प्रकृति ज्ञान-वान कृतार्थसे छूट जाती है उसको दुःखात्मिका नहीं होती अन्य अज्ञा-नियोंको दुःखात्मिका होती है यह नियमकी व्यवस्था है इसीसे मुक्त पुरुषोंसे छूटनेसे प्रकृतिकाभी मोक्ष होना घटित होता है इसीसे मुक्तपुरुषमें प्रकृतिकी प्रवृत्ति नहीं होती शंका–पुरुषमें सृष्टिकी उत्पत्तिकी शक्ति होना अध्यस्त मात्र होना जो कहा जाता है यह यथार्थ नहीं है प्रकृतिके संयो-गसे पुरुषकाभी महत्तत्त्वआदिमें परिणाम होना उचित है. उत्तर–

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ८

अन्य योगमेंभी प्रत्यक्षसे लोहके दाहके समान उसकी सिद्धि नहीं है ॥ ८ ॥

अन्यके योगमेंभी अर्थात् प्रकृतिके योगमेंभी प्रत्यक्षसे लोहके दाहके तुल्य उसकी अर्थात् पुरुषके सृष्टि उत्पन्न करनेकी सिद्धि नहीं है अभि-प्राय यह है कि, जैसे लोहमें साक्षात् दग्ध करनेकी शक्ति नहीं है केवल अपने संयुक्त अग्निद्वारा दाह करनेवाला अध्यस्त मात्र है इसी प्रकारसे

प्रकृतिके संयोगद्वारा पुरुषका कर्त्ता होना है स्वाभाविक कर्तृत्व नहीं है अब सृष्टिका मुख्य निमित्त कारण कहते हैं ॥ ९ ॥

रागविरागयोर्योगःसृष्टिः ॥ ९ ॥

रागमें सृष्टि होती है विरागमें योग होता है ॥ ९ ॥

राग सृष्टिका कारण है विरागसे योग होता है योगमें सब वृत्तियोंके निरोध होने व आत्मज्ञान होनेसे मुक्ति होती है इससे विराग मुक्तिका कारण है ॥ ९ ॥ अब सृष्टिप्रक्रिया वर्णन किया जाता है ॥

महदादिक्रमेणपंचभूतानाम् ॥ १० ॥

महत्तत्व आदिके क्रमसे पांच भूतोंकी सृष्टि ॥ १० ॥

सृष्टि शब्दकी अनुवृत्ति पूर्व सूत्रसे होती है महत्तत्व आदिके क्रमसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गया है पंच भूतोंकी सृष्टि होती है शंका–इस श्रुतिमें " सप्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खंवायुं " अर्थ–उसने प्राणको उत्पन्न किया प्राणसे श्रद्धाको आकाशको वायुको पंच भूतसे पहिले प्राणकी सृष्टिको कहा है उत्तर–प्राण अंतःकरणके वृत्तिका भेद है यह आगे वर्णन किया जायगा इससे इस श्रुतिमें प्राणही महत्तत्वके अभिप्रायसे कहा गया है अर्थात् प्राण शब्दसे महत्तत्वको कहा है ॥ १० ॥

आत्मार्थत्वात्सृष्टेर्नैषामात्मार्थआरंभः ॥ ११ ॥

सृष्टिका आत्माके अर्थ होनेसे इनके आत्माके अर्थमें आरंभ नहीं है ॥ ११ ॥

सृष्टिका आत्माके अर्थ अर्थात् पुरुषके मोक्षके लिये होनेसे उनके आत्मा अर्थात् महत्तत्व आदिकोंके आत्माके अर्थ आरंभ नहीं है अर्थात् महत्तत्व आदिकोंका अपने लिये सृष्टि करनेका आरंभ नहीं है क्यों कि महत्तत्व

आदिकोंका कार्यरूप होनेसे विनाशी अनित्य होनेसे मोक्षके साथ योग नहीं है ॥ ११ ॥

दिक्कालावाकाशादिः ॥ १२ ॥

दिशा व काल आकाश आदिकोंसे ॥ १२ ॥

आकाश प्रकृति (कारण)से दिशावकाल कार्य उत्पन्न हुये हैं व आकाशके तुल्य विभुहैं आदिशब्दसे उपाधियोंको ग्रहण किया है अर्थात् दिशा व काल दोनों आकाशके कार्य व विभु हैं जो खण्डरूप दिशा व काल होते हैं वह अपने अपने उपाधिभेदसे आकाशसे उत्पन्न होते हैं आकाशके गुणविशेष जो सर्वगतविभु होना व नित्य होना है वह दिशा कालमें होने व आकाशके साथ सम्बंध होनेसे व आकाश अखण्ड नित्य होनेसे व काल दिशामें उपाधि भेदसे खण्डरूप माने जानेसे दिशा व कालको कार्य व आकाशको प्रकृतिरूप कहा है ॥ १२ ॥

अध्यवसायोबुद्धिः ॥ १३ ॥

निश्चयरूपा बुद्धि है ॥ १३ ॥

महत्तत्वका पर्य्याय बुद्धि है अर्थात् महत्तत्व व बुद्धि दोनों शब्दका एकही अर्थ है निश्चय करना बुद्धिकी वृत्ति है इससे निश्चय रूप कहाहै बुद्धिको महत्तत्व इससे कहतेहैं कि अपने व परके सकल कार्योंमें व्यापक है सबमें व्यापक होनेसे महा उत्कृष्ट तत्व मानाहै ॥ १३ ॥

तत्कार्यंधर्मादि ॥ १४ ॥

उसके धर्म कार्य आदि है ॥ १४ ॥

उसके महत्तत्वके कार्य धर्म आदिहैं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य कार्यों-का उपादान बुद्धि है अहंकार नहीं है बुद्धिहीका अतिशय सत्वका कार्य होना प्रमाणसे सिद्ध होता है ॥ १४

शंका—जो महत्तत्वके कार्य धर्म आदि उत्तम गुण हैं तो सम्पूर्ण प्राणि ओंमें अधर्मकी प्रबलता क्यों होती है इसका उत्तर वर्णन करते हैं ॥

महदुपरागाद्विपरीतम् ॥ १५ ॥

महत्तत्व उपरागसे विपरीत होता है ॥ १५ ॥

महत्तत्व रजोगुण व तमोगुणके उपरागसे वा सम्बंधसे विपरीत होताहै क्षुद्रधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्यका कारण होताहै कारणरूप बुद्धि प्रकृतिमें लयहो नित्य रहती है कार्यरूप परिणामको प्राप्त होती है अनित्यहै ॥ १५ ॥

अभिमानोऽहंकारः ॥ १६ ॥

अभिमान अहंकार है ॥ १६ ॥

मैहूं मैं कर्ता हूं इस भावको अभिमान वा अहंकार कहते हैं यह अहंकार अंतःकरण द्रव्य है अभिमान उसकी वृत्ति वा उसका धर्म है परन्तु धर्म धर्मीको अभेद मानकर अभिमान अहंकार है यह कहा है निश्चय बुद्धिकी वृत्तिहै निश्चित अर्थहीमें मैं मेरा यह ज्ञान अहंकारका वृत्तिरूप उत्पन्न होता है निश्चय व अभिमान वृत्तियोंके कार्य कारणभावके अनुसार वृत्ति मानोंका कार्यकारणभाव माना जाता है अर्थात् बुद्धि वा महत्तत्वका कार्य अहंकार माना जाता है जैसा पूर्वही कहा गया है ॥१६॥

एकादशपंचतन्मात्रंतत्कार्यम् ॥ १७ ॥

ग्यारह व पांच उसके मात्र उसके कार्य हैं ॥ १७ ॥

ग्यारह इन्द्रिय व शब्द आदि पांच उसके मात्रा उसके अर्थात् अहंकारके कार्य हैं मुझे इस इन्द्रियसे यह रूप आदि भोगके योग्य हैं यही सुखका साधन है इत्यादिके अभिमानहीसे आदि सृष्टि वा उत्पत्तिमें इन्द्रिय व उनके विषयोंकी उत्पत्ति होनेसे अहंकार इन्द्रिय आदिका हेतु है लोकमें

भोग अभिमानीहीका राग द्वारा भोगमें प्रवृत्त होना देखा जाता है भूत व इन्द्रियके मध्यमें राग धर्मयुक्त जो मन है वही आदिमें अहंकारसे उत्पन्न होता है क्योंकि मनसे राग होनेसे शब्द आदि कार्य होते हैं व शब्दरूप आदि मात्रोंके भोगमें राग होनेसे भोगके करण श्रवण चक्षु आदि इन्द्रिय कार्य उत्पन्न होते हैं स्मृतिमें मोक्षधर्ममें हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के रागहीसे चक्षु आदिकी उत्पत्ति कहाहै यथा "रूप रागादभूच्चक्षुः"इत्यादि अर्थ रूपके रागसे चक्षु (नेत्र) उत्पन्न हुए इत्यादि इससे अनुमान व स्मृति प्रमाणसे अहंकारसे मन मनसे राग रागसे शब्द आदि पांच मात्रा व मांत्रोंसे दशबाह्यइन्द्रिय कार्योंका उत्पन्न होना सिद्ध होता है ॥ १७ ॥

सात्विकमेकादशकंप्रवर्ततेवैकृताद हङ्कारत् ॥ १८ ॥

विकारको प्राप्त अहंकारसे ग्यारहवाँ अहंकारका सात्विक कार्य प्रवृत्त होता है ॥ १८ ॥

ग्यारहवाँ जो दश इन्द्रियके पश्चात् मन है वह षोडश गण मध्यमें सात्विकहै व विकारको प्राप्त जो अहंकार है उससे प्रवृत्त होता है अभिप्राय यह है कि, अहंकार तीन प्रकारका होता है सात्विक राजस तामस सात्विक अहंकारसे सात्विक मन प्रवृत्त होता है अर्थात् उत्पन्न होता है तथा राजस अहंकारसे दशइन्द्रिय व तामससे पंचमात्रा उत्पन्न होते हैं १८

कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ॥१९॥

कर्मइन्द्रिय ज्ञानइन्द्रिय सहित अन्तरका ग्यारहवाँ है ॥ १९ ॥

वाक् हस्त, पाद, पायु, (गुदा) व उपस्थ (लिंगवा योनि) यह पांच कर्मइन्द्रिय हैं. कर्ण, नासिका, रसना, त्वचा, नेत्र यह पांच ज्ञान

इन्द्रिय हैं इन दश इन्द्रियोंसहित अंतर इन्द्रिय ग्यारहवाँ मन है यह अर्थ है ॥ १९ ॥

आहंकारिकत्वश्रुतेर्नभौतिकानि ॥ २० ॥

श्रुतिसे आहंकारिक होना सिद्ध होनेसे भौतिक नहीं हैं२०॥

श्रुति प्रमाणसे अहंकारके कार्य होना सिद्ध होनेसे इन्द्रिय भौतिक नहीं हैं"इन्द्रिय भौतिक नहीं हैं"यह कहनेमें इन्द्रिय शब्दकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है इन्द्रियोंके आहंकारिक होनेकी जो श्रुतिहै वह इसका-लमें वेदके शाखाओंके लोप होजानेसे नहीं मिलती तथापि आचार्यके वाक्यसे माननेके योग्य है यद्यपि "एकोहं बहु स्याम्"अर्थ-एक बहुतहोऊं यहभी अहंकारसूचक श्रुति है व भौतिक होनेके प्रमाणमेंभी श्रुती हैं परन्तु आहंकारिक श्रुतिके मुख्य होनेसे भौतिक श्रुति गौणी मानना चाहिये ॥ २० ॥

शंका-भौतिकश्रुतिके गौणी अंगीकार करनेसेभी आहंकारिक होना घटित नहीं होता क्योंकि यह श्रुति है " अस्य पुरुषस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यम्" अर्थ-इस पुरुषकी वाक् अग्निमें लयहोती है प्राण वायुमें लय होते हैं नेत्र सूर्य्यमें लय होते हैं देवताओंमें इन्द्रियोंके लय होनेसे देवताओंका उपादान होनाभी ग्रहण होता है क्योंकि कारणहीमें कार्यलय होता है. उत्तर-

देवतालयश्रुतिर्नारंभकस्य ॥ २१ ॥

देवतामें लयहोनेकी जो श्रुति है वह आरंभककी नहीं है, अर्थात् आरंभकविषय सम्बंधी नहीं है ॥ २१ ॥

अग्नि आदि देवतामें लय होनेकी जो श्रुति है वह कार्य आरंभक कारणके विषयमें नहीं है क्योंकि जो आरंभक(आदिमें उत्पन्न करनेवाला)नहीं है उसमेंभी लय होना देखा जाता है यथा भूतलमें जलबिन्दुका लय हो-ना आदि इसीप्रकारसे देवताओंमें इन्द्रियोंके लयहोनेमें श्रुति है ॥२१॥

कोई मनको नित्य मानते हैं इस संदेह निवारणके अर्थ इन्द्रियोंको अनित्य वर्णन करते हैं.

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च ॥ २२ ॥

उनकी उत्पत्ति श्रुतिसे सिद्ध होनेसे व नाश देखनेसेभी ॥ २२ ॥

उनकी सब इन्द्रियोंकी उत्पत्ति है यथा श्रुतिमें कहा है " एतस्माज्जायते प्राणो मनस्सर्वेन्द्रियाणिच" अर्थ—इससे आत्मासे प्राण उत्पन्न होता है-मन व सब इन्द्रियांभी जो उत्पन्न होता है वह नाश होता है यह अनुमानसे सिद्ध है व वृद्धा अवस्था आदिमें नेत्रआदिके सदृशमनके क्षीणहोनेसे विनाश होनेका निर्णय होता है मनके नित्य होनेको वचन प्रकृति बीज पर है यह मानना चाहिये ॥ २२ ॥

अतीन्द्रियमिन्द्रियंभ्रांतानामधिष्ठाने ॥ २३ ॥

इन्द्रिय अतीन्द्रिय हैं भ्रान्तोंको अधिष्ठानमें (अधिष्ठानमें बोध होता है) ॥ २३ ॥

इन्द्रिय अतीन्द्रिय हैं अर्थात् अति सूक्ष्म है प्रत्यक्ष नहीं है भ्रान्तोंको अधिष्ठानमें अर्थात् भ्रान्त जो भ्रमको प्राप्त हैं उनको अधिष्ठानमें (गोलकमें) इन्द्रियोंका होना बोध होता है अर्थात् गोलक व इन्द्रियमें भेद नहीं मानते ॥ २३ ॥

शक्तिभेदेऽपिभेदासिद्धौनैकत्वम् ॥ २४ ॥

शक्ति भेद होनेमेंभी भेदकी सिद्धि होनेमें एक होना सिद्ध नहीं है ॥ २४ ॥

कोई यह कहते हैं कि, इन्द्रिय एकही है शक्ति भेदसे उससे विलक्षण कार्य होते हैं इस मतके प्रतिषेधकेलिये यह कहा है कि, एक इन्द्रियके

शक्ति भेद अंगीकार करनेमेंभी शक्तियोंकेभी इन्द्रिय होनेसे इन्द्रिय भेद सिद्ध होता है इससे इन्द्रियका एक होना सिद्ध नहीं होता भेद जब सिद्ध है तो भिन्न शब्द कल्पना मात्रसे अर्थात् इन्द्रिय शब्दके स्थानमें शक्ति भेद शब्द कहनेसे एकताकी सिद्धि नहीं होती ॥ २४ ॥ शंका–एक अहंकारसे नानाविधकी इन्द्रियोंकी कल्पना करनेमें विरोध होगा. उत्तर–

नकल्पनाविरोधःप्रमाणदृष्टस्य ॥ २५ ॥

प्रमाणदृष्टका कल्पनाविरोध नहीं है ॥ २५ ॥

जो प्रत्यक्ष प्रमाणसे नानाविध इन्द्रियोंका होना दृष्ट है अर्थात् देखा हुवा है प्रत्यक्षसे सिद्ध है उसमें कल्पनाविरोध नहीं होसकता ॥ २५ ॥

उभयात्मकंमनः ॥ २६ ॥

दोनों इन्द्रियात्मक मन है ॥ २६ ॥

ज्ञानइन्द्रिय व कर्मइन्द्रिय दोनों इन्द्रियात्मक मन है ॥ २५ ॥

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ॥ २७ ॥

गुणोंके परिणामभेदसे अवस्थाके तुल्य नाना भेद होना सिद्ध होता है ॥ २७ ॥

यथा एकही मनुष्य स्त्रीकेसाथ कामी विरक्तके साथ विरक्त अन्यके साथ अन्य होता है इसी प्रकारसे मन चक्षु आदिके संग चक्षु आदिमें एकभाव होकर दर्शन आदि विशेष वृत्तिओंसे नाना होता है क्यों नाना अर्थात् अनेक प्रकारका होता है सत्व आदि गुणोंके परिणाम भेदमें समर्थ होनेसे यह सूत्रका अर्थ है ॥ २७ ॥

रूपादिरसमलान्तउभयोः ॥ २८ ॥

रूप आदि रसमलान्त दोनोंके ॥ २८ ॥

रूप आदिसे रूप रस गंध स्पर्श शब्द अभिप्राय है अन्न रसोंका मल विष्टा है मलतक इन्द्रियका विषय है क्यों कि गुदाइन्द्रियसे मलत्याग होता है तात्पर्य यह है कि रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, ज्ञान इन्द्रियके विषय व बोलना, देना चलना, मैथुन करना, मलत्याग करना, कर्म इन्द्रियके विषय यह मलत्यागपर्य्यंत दोनों इन्द्रियोंके दशविषय हैं॥२८॥

द्रष्टृत्वादिरात्मनःकरणत्वमिन्द्रियाणाम्॥२९॥

द्रष्टा होना आदि आत्माका करण होना इन्द्रियोंका॥२९॥

द्रष्टा होना आदि अर्थात् देखनेवाला होना आदि पांच रूप आदि विषयोंका ग्राहक होना व वक्ता होना आदि पांच कर्म इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त होना व संकल्प कर्त्ता होना यह द्रष्टा होना आदि आत्माका अर्थात् पुरुषका दर्शन आदि वृत्तियोंमें होता है करण होना इन्द्रियोंका धर्म है जो यह शंका हो कि, अविकारी पुरुषमें द्रष्टा कर्त्ता होना आदि कैसे घटित होता है तो पूर्वोक्तके अनुसार यथा चुम्बकके समीप होनेहीसे लोहमें सञ्चलन होता है उसका कारण चुम्बकही कहा जाता है अथवा सैन्य करण करिकै आज्ञामात्रसे राजा युद्ध करता है शरीरसे राजा आप कुछ नहीं करता युद्ध योधा करते हैं परन्तु जय व पराजय होना राजाहीका कहा जाता है इसीप्रकारसे द्रष्टा होना आदि पुरुषमें कहा जाता है यह जानना चाहिये सन्निधिमात्रसे इन्द्रिय करणोंसे कर्ता है स्वरूपसे पुरुष कर्त्ता नहीं है ॥ २९ ॥

त्रयाणांस्वालक्षण्यम् ॥ ३० ॥

तीनोंका अपने अपने लक्षणका भाव है ॥ ३० ॥

तीनोंका महत्तत्त्व अहंकार मनका अपने अपने लक्षणका भाव है निश्चय आदि उत्कृष्ट गुण होना महत्तत्त्वका लक्षण है अपने आत्मामें विद्यमान गुणका आरोप करना अहंकारका लक्षण है संकल्प विकल्प करना मनका लक्षण है इन लक्षणोंसे अपने अपने लक्षणोंसे तीनोंका प्रत्यय होता है ॥ ३० ॥

सामान्यकरणवृत्तिःप्राणाद्यावायवःपंच ॥ ३१ ॥

प्राण आदि रूप पंच वायु करणकी (अंतःकरणकी) सामान्य (साधारण) वृत्ति है ॥ ३१ ॥

वायुके समान सञ्चार होनेसे प्राण आदि रूपसे जो पांच वायु अर्थात् प्राण,अपान, समान, उदान, व व्यान नामसे प्रसिद्ध हैं वे अन्तःकरणकी सामान्य (साधारण) वृत्ति हैं अर्थात् अंतःकरण त्रयके परिणाम भेद हैं अन्य प्राण आदिको वायु रूप वायु भेद मानते हैं कोई आचार्य वायुसे पृथक् प्राण आदिको अन्तःकरणके परिणाम वा कार्यभेद स्वीकार करके अन्तःकरणकी वृत्ति कहाहै वायुनामसे कहनेका आशय यह है कि वायुके समान संचार होनेसे वायु नामसे कहेजाते हैं प्राण वायु हृदय अपान गुदा समान नाभिमें उदान कण्ठमें व्यान सब शरीरमें रहताहै ये प्राण आदिके स्थान हैं ॥ ३१ ॥

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ॥ ३२ ॥

क्रम व विनाक्रम इन्द्रियकी वृत्ति है ॥ ३२ ॥

प्रथम निर्विकल्पक ज्ञान होता है पश्चात् क्रमसे सविकल्पक ज्ञान होता है अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध विषयोंमें प्रथम इन्द्रियद्वारा आलोचन ज्ञान विना विशेषणके होता है उसको निर्विकल्पक कहते हैं फिर उत्तर कालमें वस्तुके धर्मोंसे द्रव्यरूप धर्मोंसे जाति आदिसे जो विशिष्ट ज्ञान होता है उसको सविकल्पक कहते हैं आलोचन ज्ञानहीके दो भेद हैं अर्थात् निर्विकल्पक सविकल्पक दो प्रकारका ऐन्द्रियक ज्ञान आलोचन नामसे कहा जाता है कोई निर्विकल्पक ज्ञान मात्रको आलोचन व इन्द्रिय जन्य कहते हैं सविकल्पकको मन मात्रसे जन्य (उत्पन्नके योग्य) कहते हैं परंतु सविकल्पकको अर्थात् विशिष्ट ज्ञानकोभी इन्द्रियोंसे विशिष्ट ज्ञान होनेमें बाधक होनेके अभावसे सूत्रमें ऐन्द्रियक कहा है अर्थात् इन्द्रियकी वृत्ति माना है कोई यह कहते हैं कि, बाह्यइन्द्रियोंसे

लेकर बुद्धि पर्य्यंतकी वृत्ति उत्पत्ति क्रमसे होती है कभी व्याघ्र आदि देखनेके कालमें भय विशेषसे विद्युल्लताके समान सब इन्द्रियोंमें एकही वार वृत्ति होजाती है यह कहना असत् है सूत्रमें इन्द्रियोंके वृत्तिओं मात्रको क्रमिक अक्रमिक कहा है बुद्धि व अहंकार वृत्तियोंका प्रसङ्ग नहीं है एकहीवार अनेक इन्द्रियोंकी वृत्ति होनेमें संशयरूप विरुद्धपक्ष प्राप्त होनेसे उसके निर्णयके अर्थ व मनके अणु होनेके प्रतिषेधके अर्थ सूत्रमें क्रमसे व विनाक्रमसे इन्द्रिय वृत्ति होनेको वर्णन किया है ॥ ३२॥

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ३३ ॥

क्लिष्ट अक्लिष्ट भेदसे पांच प्रकारकी वृत्ती हैं ॥ ३३ ॥

दुःखकी देनेवाली सांसारिक वृत्ती जो पांच वृत्ती हैं वह क्लिष्ट कही जाती हैं और जो योगकालकी पांच वृत्ती हैं वह अक्लिष्ट उनके विपरीत कही जाती हैं अविद्या (अज्ञान) अस्मिता (अहंकार होना) राग, द्वेष व अभिनिवेश (मरणकी त्रास) यह पांच क्लिष्ट हैं और प्रमाण, विपर्यय, (विपरीत ज्ञान) विकल्प, निद्रा, स्मृति यह पांच अक्लिष्ट वृत्ती हैं प्रमाणका वर्णन पूर्वही होचुका है विवेक विरुद्ध अयथार्थ ज्ञान विपर्यय है किसीसे मनुष्यके सींग सुनकर यह जानकर भी कि मनुष्यके सींग नहीं होते यह कल्पना करना कि होते होंगे विकल्प है निद्रा स्मृति साधारण है विशेष व्याख्यान विपर्यय आदिका योगदर्शनमें देखना चाहिये॥ ३३॥

तन्निवृत्तावुपशांतोपरागः स्वस्थः॥ ३४ ॥

उनके निवृत्त होनेमें शांतोपरागहो स्वस्थ होता है ॥३४॥

उनके अर्थात् वृत्तिओंके निवृत्त होनेकी दशामें शांतोपराग हो अर्थात् सम्पूर्ण विषयोंके रागसे रहित होकर स्वस्थ होता है कैवल्य आनन्दको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

कुसुमवच्चमणिः ॥ ३५ ॥

कुसुमके समान जैसे मणि ॥ ३५ ॥

जैसे जपाकुसुम (गोडहरके फूल) के प्रतिबिम्बसे स्फटिकमणि जपाकुसुमके समान अरुण होजाती है और उसके न रहनेपर फिर अपने शुक्ल रूपको प्राप्त होजाती है उपाधि जनित अरुणता दूर होजाती है इसी प्रकारसे प्रकृतिसे जो वृत्तियाँ हैं उनकी निवृत्तिसे पुरुष निज स्वरूपमें स्वस्थ होता है व आनन्दको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

पुरुषार्थंकरणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ॥ ३६ ॥

पुरुषकेलिये करणका उत्पन्न होनाभी अदृष्टके प्रकट होनेसे ॥ ३६ ॥

पुरुषके अदृष्टके प्रकट होनेसे जैसे प्रधानकी प्रवृत्ति होती है इसी प्रकारसे पुरुषके अर्थ करणों (इन्द्रियों) की प्रवृत्ति वा उत्पत्ति होती है अदृष्टवशसे करणोंकी प्रवृत्ति इससे कहा है कि, करणोंका प्रवृत्त करनेवाला पुरुष नहीं होसकता क्योंकि पूर्वही पुरुषको क्रिया रहित कूटस्थ अंगीकार किया है व ईश्वरको जगत्का कर्ता नहीं माना इससे अदृष्टको प्रवर्त्तक माना है ॥ ३६ ॥ शंका—परके अर्थ आपसे करण किस प्रकारसे प्रवृत्त होते हैं उसका दृष्टांत यह है ॥

धेनुवद्वत्साय ॥ ३७ ॥

वत्सके अर्थ धेनुके समान ॥ ३७ ॥

यथा गौ वत्सकेलिये अपनेहीसे दुग्ध स्रवती है कोई यत्नकी अपेक्षा नहीं होती ऐसा स्वभावही है इसी प्रकारसे अपने स्वामी पुरुषके अर्थ करण आपही प्रवृत्त होते हैं सुषुप्तमें अपनेहीसे बुद्धिका उठना वा प्रकट होना प्रत्यक्षसेभी सिद्ध होता है ॥ ३७ ॥

करणंत्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ॥ ३८ ॥

अवान्तर भेदसे तेरह विधके करण हैं ॥ ३८ ॥

तीन अन्तःकरण दश बाह्य इन्द्रिय यह तेरह विधके करण हैं मुख्य करण केवल एक बुद्धि है उसके यह सब भेद हैं इससे यह कहा है कि, अवान्तर भेदसे अर्थात् भिन्न कार्यभेदसे तेरह हैं ॥ ३८ ॥ शंका-जो बुद्धि मुख्य करण है और अन्य गौण हैं तौ उनके गौण माने जानेका हेतु कौन गुण वा धर्म है उत्तर-

इन्द्रियेषुसाधकतमत्वगुणयोगात्कुठारवत्३९

इंद्रियोंमें अति साधक होनेके गुणयोगसे कुठारके सदृश गुण है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियोंमें परम्परा करिकै पुरुषार्थका अतिसाधक होना कारण स्वरूप बुद्धिका गुण है इससे तेरह प्रकारके करण होना सिद्ध होता है यह पूर्वसूत्रके साथ अन्वय (सम्बंध वा मेल) है कुठारके सदृश कहनेका अभिप्राय यह है कि यथा काटनेमें योग भिन्न करना अर्थात् योगसे पृथक् वा विभाग करदेनाही फल होनेसे प्रहारहीका मुख्य करणत्व है तथापि अतिसाधन गुणके योगसे कुठारकाभी करणत्व है अर्थात् कुठारका कारण होना सिद्ध होता है इसी प्रकारसे यद्यपि मुख्य करण बुद्धि है तथापि अतिसाधक होनेसे इन्द्रियोंका करणत्व है ॥ ३९ ॥

द्वयोःप्रधानंबुद्धिर्लोकवद्भृत्यवर्गेषु ॥ ४० ॥

दोनोंमें प्रधान बुद्धि भृत्यवर्गोंमें लोकके समानहै ॥४०॥

दोनोंमें बाह्य व अंतरके करणों (इन्द्रियों) के मध्यमें बुद्धिही प्रधान है अर्थात् मुख्य है क्योंकि सम्पूर्ण अर्थके पुरुषमें समर्पण करनेमें बाह्य व अन्तरके जो मन चक्षु आदि करण हैं उन सबमें उत्कृष्ट है जैसे राजाका कोई प्रधान भृत्य सब भृत्य वर्गोंमें अर्थात् सेवक वर्गोंमें मुख्य होता है इसी प्रकारसे बुद्धि सब करणोंमें प्रधान है ॥ ४० ॥ बुद्धिके प्रधान होनेमें हेतु वर्णन करते हैं ॥

अव्यभिचारात् ॥ ४१ ॥

व्यभिचार न होनेसे॥ ४१ ॥

अन्य इन्द्रिय अपने अपने विषय विशेष मात्रके ग्रहण करनेमें समर्थ हैं अन्य इन्द्रिय अन्य इन्द्रियके विषयके ग्रहणमें समर्थ नहीं है बुद्धि सब करणोंमें व्यापक होनेसे सब करणों(इन्द्रियों)के विषयोंको ग्रहण करती है किसी इन्द्रियके विषय ग्रहण करनेमें निश्चित वृत्ति वा धर्मवान् बुद्धिका व्यभिचार नहीं होता सबमें व्यापक होने व फलमें व्यभिचार न होनेसे बुद्धिकी प्रधानताहै ॥ ४१ ॥

तथाशेषसंस्काराधारत्वात् ॥ ४२ ॥

तथा सम्पूर्ण संस्कारके आधार होनेसे ॥ ४२ ॥

यथा व्यभिचार न होनेसे बुद्धिकी प्रधानता है तथा सम्पूर्ण संस्कारके आधार होनेसे प्रधानता है. क्योंकि चक्षु आदि अथवा अहंकार मन संस्कारके आधार नहीं हो सकते जो पूर्वही देखा वा सुनाहै उस्के स्मरणको नेत्र आदि कोई बाह्य इन्द्रिय समर्थ नहीं है क्योंकि स्मरण करना बाह्यइन्द्रियोंका गुण नहीं है जो बाह्यइन्द्रियोंका धर्म होता तौ अंध बधिरको रूप व शब्दका स्मरण न होता यद्यपि अंध बधिरको रूप व शब्दका प्रत्यक्ष नहीं होता परन्तु स्मरण होनेसे बाह्यइन्द्रियोंका धर्म नहीं है यह सिद्ध होता है जो मन व अहंकारका धर्म कहा जाय तौ तत्वज्ञानसे जब मन व अहंकारका लय होजाता है तबभी स्मरण होता है इससे सम्पूर्ण संस्कारकी आधार बुद्धि है व स्मरण बुद्धिका धर्म है सब संस्कारकी आधार होनेसे बुद्धिकी प्रधानता है॥४२॥

स्मृत्यानुमानाच्च ॥ ४३ ॥

स्मृतिद्वारा अनुमानसेभी ॥ ४३ ॥

स्मृतिद्वारा अनुमान होनेसेभी बुद्धिकी प्रधानता है क्योंकि स्मृति-

से अनुमान करना बुद्धिका कार्य है अन्य इन्द्रियका नहीं है ॥ ४३ ॥

संभवेन्नस्वतः ॥ ४४ ॥

आपसे संभव न होगा ॥ ४४ ॥

जो यह कहा जाय कि, स्मृति पुरूषकी वृत्तिहै इसका उत्तर यह है कि, आपसे पुरुषमें स्मृति होना संभव न होगा अर्थात् विना बुद्धि पुरुषमें स्मरण न होगा अथवा जो यह कहा जाय कि, बुद्धि मुख्य करण है इससे बुद्धिमें सब ज्ञान होना चाहिये इसके उत्तरमें यह कहाहै कि, विना चक्षु आदि करणोंके द्वारा बुद्धिका आपसे करण होना संभव न होगा विनाचक्षु आदि बुद्धिका करण होना सिद्ध नहीं होता अन्यथा अंधे आदिकोभी रूप आदिका ज्ञान होना चाहिये यह अर्थ व भावहै॥४४

आपेक्षिकोगुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ॥ ४५ ॥

क्रियाविशेषसे गुणप्रधानभाव आपेक्षिकहै ॥ ४५ ॥

आपेक्षिकहै अर्थात् एक दूसरेकी अपेक्षा अपने अपने क्रियाविशेषसे प्रधान है यथा बाह्यइन्द्रियोंके व्यापारमें मन मनके व्यापारमें अहंकार अहंकारके व्यापारमें बुद्धि प्रधान है ॥ ४५ ॥

तत्कर्मार्ज्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टालोकवत् ॥ ४६ ॥

उसके कर्मसे आर्जित (प्राप्त वा लब्ध) होनेसे लोकके तुल्य उसके अर्थ व्यापार होता है ॥ ४६ ॥

उसके (पुरुषके) कर्मसे आर्जित (लब्ध वा प्राप्त) कियाहुवा जो करणहै उसका उसके अर्थ अर्थात् उसी पुरुषके अर्थ लोकके तुल्य व्या-

पार होताहै अर्थात् यथा लोकमें जिस पुरुषसे मोललेने आदि कर्मसे कुठार आदि करण अर्जित होता है उसी पुरुषके अर्थ उस्का काटने आदिका व्यापार होता है अर्थात् उसी पुरुषके काम आताहै इसी प्रकारसे पुरूषके सन्निधि वा संयोगहीसे बुद्धिकी उत्पत्ति व बुद्धिमें शक्ति होनेसे बुद्धि पुरूषहीका कारण है पुरूषहीके अर्थ उस्का व्यापार है यद्यपि कूटस्थतासे पुरूषमें कर्म नहीं है तथापि यथा योधाओंका जय पराजय राजाका जय पराजय कहा जाताहै इसीप्रकारसे पुरुषके भोक्ता व स्वामी होनेसे पुरुषका कर्म उपचारसे कहाहै ॥ ४६ ॥

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवल्लोकवत् ॥ ४७ ॥

समान कर्मयोगमें बुद्धिकी प्राधान्य है लोकके समान लोकके समान ॥ ४७ ॥

यद्यपि पुरुषके अर्थ साधन भावसे सब करण कर्म योगमें समान है तथापि बुद्धिकी प्रधानता है जैसे लोकमें सब राजाके भृत्य राजाके सेवक होनेके भावसे समान हैं तथापि जो राजाका मंत्री वा कार्यका अधिकारी होता है वही प्रधान होता है और सब उसके आज्ञाकारी व आधीन होते हैं इससे बुद्धि सबमें उत्कृष्ट महत्तत्व है॥ ४७ ॥

इति श्रीप्रभुदयालुशास्त्रविनिर्मिते सांख्यदर्शने देशभाषाकृतभाष्येद्वितीयोऽध्यायस्समाप्तः ॥ २ ॥

इसके उपरांत प्रधानके स्थूल कार्य महाभूतशरीरका वर्णन व विविध योनिगति आदि ज्ञान साधन अनुष्ठानके हेतु अपर वैराग्यके अर्थ उसके उपरांतपर वैराग्यके अर्थ सम्पूर्ण ज्ञानसाधनके वर्णनमें तृतीय अध्यायका प्रारंभ किया जाता है ॥

अविशेषाद्विशेषारंभः ॥ १ ॥

अविशेषसे विशेषका आरंभ होताहै ॥ १ ॥

जिन्में शांत घोर मूढ यह विशेषण नहीं है ऐसे जो अविशेष पंचतन्मात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध हैं उनसे विशेष स्थूल महाभूतोंका आरंभ होता है अर्थात् मात्रोंकी अविशेष संज्ञा है स्थूल भूतोंकी विशेष संज्ञा है पंच मात्रोंसे स्थूल भूतोंकी उत्पति होती है यह अर्थ है ॥१॥ पूर्व अध्यायसे लेकर यहाँतक तेईसतत्वोंको कहिकर अब शरीरकी उत्पत्ति कहते हैं ॥

तस्माच्छरीरस्य ॥ २ ॥

तिससे शरीरका ॥ २ ॥

तिससे अर्थात् उक्त (कहेहुए) सूक्ष्म स्थूल तेईस २३ तत्वसे शरीरका आरंभ होता है अर्थात् शरीरकी उत्पत्ति होती है आरंभ होने शब्दकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है ॥ २ ॥

तद्बीजात्संसृतिः ॥ ३ ॥

उसके बीजसे संसृति होती है ॥ ३ ॥

उसके (शरीरके) बीजसे अर्थात् शरीरका बीज जो २३ तेईस तत्वरूप सूक्ष्म शरीर है उससे पुरुषकी संसृति (गमनागमन) होती है यद्यपि पूर्वोक्त हेतुओंसे पुरुषका आपसे गत आगत होना संभव नहीं होता परन्तु उपाधि अवस्थाभेदसे जैसा पूर्वहीं कहा गया है पुरुषका गमन आगमन होता है अर्थात् उपाधिसे पुरुष पूर्वकृत कर्म फलके भोगके अर्थ देह त्यागकर अन्य देहको जाता है ॥ ३ ॥

अविवेकाच्चप्रवर्तनमविशेषाणाम् ॥ ४ ॥

अविवेकसे अविशेषोंका प्रवर्तन होता है ॥ ४ ॥

अविवेकसे अविशेष अर्थात् ईश्वरत्व अनीश्वरत्व आदि विशेषता रहित सब पुरुषोंको जबतक विवेक नहीं होता प्रवर्तन अर्थात् संसृति

होती है विवेकके उत्तर संसृतिका नाश होता है ॥ ४ ॥ विनाविवेक संसृतिके नाश न होनेका हेतु क्या है यह वर्णन करते हैं ॥

उपभोगादितरस्य ॥ ५ ॥

इतरके उपभोगसे ॥ ५ ॥

इतर विवेकीसे भिन्न जो अविवेकी है उसके उपभोगसे अर्थात् अज्ञानीको कियेहुए कर्मका फलभोग अवश्य होनेसे अज्ञानीकी संसृतिका नाश नहीं होता ॥ ५ ॥

सम्प्रतिपरिमुक्तोद्वाभ्याम् ॥ ६ ॥

वर्तमान संसृति कालमें दोनोंसे मुक्त होता है ॥ ६ ॥

संसृति कालमें दोनोंसे अर्थात् शीत उष्णके सुख दुःख आदि द्वंद्वसे पुरुष मुक्त अर्थात् रहित होजाता है ॥ ६ ॥

मातापितृजंस्थूलंप्रायशइतरन्नतथा ॥ ७ ॥

बाहुल्यसे स्थूल शरीर मातापितासे उत्पन्न है इतर वैसा अर्थात् ऐसा नहीं है ॥ ७ ॥

बाहुल्यसे बाहुल्यकरके वा अर्थात् अधिकतासे वा बहुधा स्थूल शरीर मातापितासे उत्पन्न है बाहुल्यसे इससे कहा है कि कहीं तपोबल आदि कर्म विशेषसे विना योनिभी स्थूल शरीर होना सुना जाता है सामान्यसे मातापितासे स्थूल शरीर उत्पन्न होता है इसप्रकार इतर सूक्ष्म नहीं है अर्थात् सूक्ष्म शरीर मातापितासे उत्पन्न नहीं होता ॥ ७ ॥

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वंभोगादेकस्यनेतरस्य॥८॥

सृष्टिकी आदिमें जिस्की उत्पत्ति है ऐसे लिंगशरीरहीको एकका भोग होनेसे अन्यको न होनेसे

उस्का कार्यत्व (सुखदुःख) है ॥ ८ ॥

सृष्टिकी आदिमें सूक्ष्म लिंगशरीर जो उत्पन्न होता है उसीका सुख दुःख कार्य संयुक्त होना सिद्ध होता है क्योंकि लिंग शरीरहीको सुख दुःखका भोग होता है स्थूल मृतशरीरमें सुख दुःखका अभाव होता है इससे स्थूलमें भोग होना सिद्ध नहीं होता ॥ ८ ॥

सप्तदशैकंलिङ्गम् ॥ ९ ॥

सतरह तत्वका लिङ्गशरीर होताहै ॥ ९ ॥

ग्यारह इन्द्रिय पांच तन्मात्रा व बुद्धि यह सतरह तत्वसंयुक्त लिंगशरीर होता है अहंकारको लिंगशरीरमें बुद्धिके अंतर्गत मानकर भिन्न नहीं कहा ॥ ९ ॥

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ॥ १० ॥

व्यक्तिभेद कर्मविशेषसे होताहै ॥ १० ॥

कर्मविशेषसे व्यक्तिभेद अर्थात् पुरुष स्त्री पशुयोनि आदि शरीरोंका भेद होता है कर्म अनुसार कर्म भोगके अर्थ नाना प्रकारके शरीर होते हैं यह भाव है ॥ १० ॥

तदधिष्ठानाश्रयेदेहेतद्वादात्तद्वादः ॥ ११ ॥

उसके अधिष्ठानके आश्रय देहमें उस्के वादसे उस्का वाद है ॥ ११ ॥

उसके अर्थात् लिंगके अधिष्ठान (आश्रय) देहमें अर्थात् लिंगका आश्रय जो सूक्ष्म पंचभूत रचित देहहै जिसका आगे वर्णन होगा उस्का आश्रय जो षट्कौशिक देहहै उस्में उस्के वादसे अर्थात् लिंगके अधिष्ठान देहके वादसे उस्का वाद है अर्थात् षाट्कौशिक जो स्थूल देहहै उस्का वाद है यह अर्थ है लिंगके सम्बंधसे अधिष्ठानका देह होना सिद्ध होताहै व अधिष्ठानका आश्रय होनेसे स्थूलका देह होना सिद्ध होताहै यह

भावार्थ है इस प्रकारसे तीन शरीर सिद्ध होते हैं अन्यत्र जो लिंगशरीर व स्थूलशरीर दोही वर्णन किया है तीसरा अधिष्ठान शरीर जो लिंग शरीरका आश्रय (स्थान) है नहीं कहा उसका हेतु यह है कि लिंग-शरीर व अधिष्ठानशरीर दोनोंके सूक्ष्म होने व आधार आधेयभावसे वर्तमान होनेसे अधिष्ठानको लिंगशरीरके अंतर्गत मानकर एकही माना है ॥ ११ ॥

शंका-स्थूलशरीरसे भिन्न लिंगशरीरका अधिष्ठानरूप तीसरे शरीर कल्पना करनेकी क्या आवश्यकता है उत्तर-

न स्वातंत्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ॥ १२ ॥

छायाके समान व चित्रके समान विना उसके स्वतंत्र (स्वाधीन) न होनेसे ॥ १२ ॥

लिंगशरीर उसके विना अर्थात् अधिष्ठान शरीरके विना, स्वतंत्रतासे (विना अन्य आश्रयके आप अपने सामर्थ्यसे) नहीं रह सकता यथा छाया निराधार नहीं रहती चित्र निराधार स्थिर नहीं होता अथवा नहीं रहता इसीप्रकारसे विना अधिष्ठान लिंगशरीरका न रहना अनुमान किया जाता है स्थूलदेह त्यागकर लोकान्तरके गमनके अर्थ लिंग देहका आधारभूत अन्यशरीर अनुमानसे सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

शंका-लिंगशरीर मूर्त्तिमान् होनेपरभी वायु आदिके तुल्य आकाशही आधारमें रहै अन्य शरीर कल्पना करना मिथ्या है. उत्तर-

मूर्तत्वेपि नसंगात योगात् तरणिवत् ॥ १३ ॥

मूर्तहोनेपरभी नहीं होता संगसे योगसे सूर्यके समान होताहै ॥ १३ ॥

मूर्तिमान् होनेपरभी स्वतंत्रतासे विना संग स्थिर नहीं हो सक्ता सूर्य्यके तुल्य यथा प्रकाशरूप तेजवान् सूर्य आकाश संचारी है परन्तु

विना पार्थिव द्रव्यके स्थिर नहीं है यह अनुमानसे सिद्ध होताहै क्योंकि पिण्डरूप मूर्तिमान् द्रव्य होना पार्थिव द्रव्यमें होना विदित होता है इससे सूर्य आदि तेजवान् सब पार्थिव द्रव्यके संगही अवस्थित हैं इसी प्रकारसे लिंगशरीर सत्वप्रकाशमय है वह भूतोंके संगमें स्थिर होता है गमन आगमन करता है ॥ १३ ॥

अणुपरिमाणं तत्कृति श्रुतेः ॥ १४ ॥

कृति श्रुतिसे वह अणुपरिमाण है ॥ १४ ॥

कृति श्रुति जो क्रिया वर्णनमें श्रुति है उससे वह अर्थात् लिंग शरीर सूक्ष्म अणु परिमाण परिच्छिन्न है श्रुति यह है " विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि" इस श्रुतिमें बुद्धिकी प्रधानतासे विज्ञान संज्ञालिंगकी वर्णन कियाहै अर्थात् विज्ञान (लिंग) अनेक कर्म कर्ता है तथा लिंगशरीरके क्रियामें यह श्रुतिहै "तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनुक्रामति प्राणमनुक्रामन्तं सविज्ञानो भवति,, अर्थ–उसके पुरुषके निकरते हुये अर्थात् शरीरसे गमन करते हुये प्राण गमन करता है प्राण निकरते वा जाते हुये लिंगशरीर संयुक्त होता है अर्थात् लिंग सहितही जाता है इससे लिंग शरीरका अणु व परिच्छिन्न होना सिद्ध होता है क्योंकि विभु (व्यापक) में क्रिया नही हो सकती ॥ १४ ॥ अब परिच्छिन्न होनेमें दूसरा हेतु वर्णन करते हैं

तदन्नमयत्वश्रुतेश्च ॥ १५ ॥

उसके अन्नमय होनेकी श्रुतिसे भी ॥ १५ ॥

उसके अर्थात् लिंगके अन्नमय होनेकी श्रुति होनेसे एकदेशीय सूक्ष्म होना सिद्ध होताहै अन्न आदिके कार्य रूपका विभु होना संभव नहीं होता श्रुति यह है "ह्यन्नमयंहि सौम्य मन आपो मयः प्राणस्तेजो वाक्" इत्यादि अर्थ हे सौम्य अन्नमय मन है जल मय प्राण तेजमयी वाक् है इत्यादि यद्यपि मन आदि भौतिक नहीं हैं तथापि अन्न आदिसे उत्पन्न सजातीय अंश पूरण होनेसे अन्नमय होने आदिका व्यवहार होताहै यह समझना चाहिये ॥ १५ ॥

पुरुषार्थसंसृतिर्लिंगानां सूपकारवद्राज्ञः ॥ १६ ॥

लिंगौंकी संसृति पुरुषके अर्थ राजाके सूपकार (रसोईबनानेवाले) केसदृश है ॥ १६ ॥

जो यह शंका होवे कि अचेतन लिंगौंकी संसृति देहसे देहान्तरमें जाने की किस निमित्तहै इसके उत्तरके लिये यह कहाहै कि यथा राजाके लिये राजाके सूपकारोंका पाकशाला (रसोई घर) में जानाहोता है इसी प्रकारसे लिंग शरीरोंकी संसृति पुरुषके अर्थ होती है यह सूत्रका भाव है ॥ १६ ॥ सूक्ष्म शरीरको कहा अब स्थूल शरीरकाविचार करतेहैं

पांचभौतिको देहः ॥ १७ ॥

पंचभूतरचित देह है ॥ १७ ॥

पांच भूत जो पृथिवी जल तेज वायु आकाश हैं इनसे बनाहुआ देह है अर्थात् इन पांच भूतसंयुक्त पारिणामरूप कार्य देह है ॥ १७ ॥

चातुर्भौतिकमित्येके ॥ १८ ॥

कोई चातुर्भौतिक मानते हैं ॥ १८ ॥

कोई आकाशके आरंभक न होनेसे पृथिवी जल तेज वायु चारही भूतोंसे देहकी उत्पत्ति मानते हैं अर्थात् चारही भूत सम्बंधी देहकी उत्पत्ति है यह मानते हैं ॥ १८ ॥

एकभौतिकमित्यपरे ॥ १९ ॥

कोई एकही भूतसे उत्पन्न मानते हैं ॥ १९ ॥

कोई एक भूत मुख्य पृथिवी भूतसे शरीरकी उत्पत्ति मानते हैं अथवा मनुष्य आदि में पृथिवी तत्वके अधिक होनेसे पृथिवीमय सूर्य आदिमें तेज अधिक होनेसे एकतत्व तेजको मानकर तेजमय कहते हैं अ-

र्थात् एक भूत जो अधिकहै उसीको मुख्य व अन्य भूतोंको उपष्टम्भक (स्थितिके सहायक) मात्र मानते हैं ॥ १९ ॥

नसांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ॥ २० ॥

पृथक् भूतमें न देखे जाने अथवा ज्ञात न होनेसे स्वाभाविक चैतन्य नहीं है ॥ २० ॥

पृथक् पृथक् पृथिवी आदि भूतोंमें चेतन होना न देखनेसे यह बोध होता है कि भौतिक अर्थात् पंचभूतसे रचित देहका चेतन होना स्वाभाविक नही है किन्तु औपाधिक मात्र है ॥२० ॥

प्रपंचमरणाद्यभावश्च ॥ २१ ॥

और प्रपंचके मरण आदिका अभाव होता ॥ २१ ॥

जो देहका चैतन्य स्वाभाविक होता तो प्रपंचके मरण आदिका अर्थात् मरणे व सुषुप्ति अवस्थाके प्राप्त होनेका अभाव होता देहका चैतन्यरहित होनाही मरण व सुषुप्ति होना है स्वाभाविक चेतनता होनेमें मरण सुषुप्तिका होना संभव नहीं होता क्योंकि स्वाभाविक गुण जब द्रव्यका नाश होता है तभी नष्ट होता है द्रव्यके रहनेमें उसका नाश नहीं होता शरीर बने रहनेमें मरण आदि होनेसे देहका स्वाभाविक चेतन होना सिद्ध नहीं होता ॥ २१ ॥

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येक परिदृष्टे सांहत्ये तदुद्भवः ॥ २२ ॥

मद शक्तिके सदृश होवै प्रत्येक परिदृष्ट होनेपर मिलेहुयेमें उसकी उत्पत्ति संभव है ॥ २२ ॥

जो यह शंका होवै कि यथा मादक शक्ति भिन्न द्रव्योंमें विदित नहीं होती मिलित द्रव्योंमें प्रकट होती है इसी प्रकारसे शरीरमें चैतन्य माना

जावै इसपर यह कहा है कि प्रत्येक परिदृष्ट होनेपर मिले हुएमें उस्की उत्पत्ति होती है अथवा उस्की उत्पत्ति संभव है अर्थात् जो प्रत्येकमें कारण भावसे प्राप्त है यद्यपि सूक्ष्मतासे उस्का प्रत्यक्ष न होवै वही मिले हुये पदार्थोंके कार्यरूप द्रव्यमें प्रकट होता है जो प्रत्येकमें परिदृष्ट नहीं है वह मिले हुएमेंभी प्रकट नहीं हो सकता मादक द्रव्यमें मादकता शक्ति उत्पन्न होनेके दृष्टांतमें प्रत्येक पदार्थमें जिससे मिलकर मादक वा मद्य द्रव्य बनता है शास्त्र प्रमाण व अनुभवसे सूक्ष्म मादकता शक्ति होना सिद्ध होता है व सिद्ध है शरीरके प्रत्येक भूतोंमें सूक्ष्मतासेभी चैतन्य होना किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इससे मिले हुये भूतोंके कार्यशरीरमें चैतन्य होना संभव नहीं है जो समुच्चित भूतोंके कार्य होनेसे प्रत्येकभूतोंमें होनेका अनुमान किया जाय तौ उत्पन्न हुवा चेतन अनित्य होगा श्रुति व अनुमान प्रमाणसे चेतन एकरस नित्य होना सिद्ध होता है बिना नित्य होनेके कर्म फल भोग व विनाकर्मके दुःख सुख भोग फल होना असंभव है इससे अनेक भूतोंमें अनेक चैतन्य शक्ति कल्पना करनेसे एकही प्रमाण सिद्ध नित्य चित्त स्वरूप मानना उचित है॥२२॥ शरीरका वर्णन करिकै पुरुषार्थ प्राप्त होनेके विषयमें वर्णन करते हैं

ज्ञानान्मुक्तिः॥ २३ ॥

ज्ञानसे मुक्ति है ॥ २३ ॥

ज्ञानसे मुक्ति होती है अर्थात् जन्ममरण क्लेशके त्याग हेतु विवेकसे आत्मतत्व विचारनेमें अज्ञानकी हानि व तत्वज्ञानके लाभसे मुक्ति होती है

बंधो विपर्ययात् ॥ २४ ॥

विपर्ययसे बंध ॥ २४ ॥

विपर्ययसे अर्थात् ज्ञानके विपरीत अज्ञान वा अविवेकसे सुखदुःखात्मक रूप बंध होता है ज्ञान व विपर्ययसे मुक्ति व बंध कहकर ज्ञानसे मुक्ति होनेका विचार करते हैं ॥ २४ ॥

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ॥ २५ ॥

नियतकारणहोनेसे समुच्चय विकल्प नहीं है ॥ २५ ॥

यद्यपि विद्या व अविद्या सहित दोनों कर्म वेदमें सुने जाते हैं तथापि अविवेककी निवृत्ति व तत्वज्ञानका होना नियत कारण मोक्षका सिद्ध होनेसे अविद्याकर्म सहित जो ज्ञान है उस्का मोक्षके प्राप्तकरनेमें समुच्चय विकल्प दोनों नहीं हैं अर्थात् अविद्याके कर्म सहित जो ज्ञान है न वह अवश्य करिके मोक्ष प्राप्त करसकताहै न यही कहा जायसकता है कि कभी प्राप्त करताहै कभी नहीं प्राप्त करता अर्थात् अविद्या कर्मके सहित जो ज्ञान है उससे किसी प्रकारसे मोक्ष होना संभव नहीं है केवल अविवेक रहित ज्ञान मोक्षका नियत कारण है ॥ २५ ॥ समुच्चय विकल्पका दृष्टांत कहते हैं ॥

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ॥ २६ ॥

जैसे स्वप्न व जाग्रतसे ऐसेही मायिक व अमायिकोंसे दोनोंमें पुरुषकी मुक्ति नहीं है ॥ २६ ॥

जो मायाका कार्य वा माया सम्बंधी हो वह मायिक कहा जाता है यहां अभिप्राय असत्य होनेसे है अमायिक वह है जो स्थिर होवै सत्य हो मायिक कर्मकी संज्ञा अमायिक ज्ञानकी संज्ञा है यथा स्वप्नके असत्य कार्य व जाग्रतके सत्यकार्य वा पदार्थोंसे पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि यद्यपि स्वप्नकी अपेक्षा जाग्रत सत्यही है परन्तु कूटस्थ नित्य पुरुषकी अपेक्षा असत्य है असत् पदार्थसे सत् पुरुषार्थ फलनहीं होता इसी प्रकारसे मायिक जो असत् मायाका कार्य है व अमायिक जो कर्म सम्बंधी ज्ञान है इन दोनोंमे पुरुषार्थकी सिद्धि नहीं है क्योंकि अविद्या कर्मसहित जो ज्ञान है वह यथार्थ ज्ञान नहीं है जाग्रत अव-

स्थाकी ऐसी सत्यता है कि स्वप्नकी अपेक्षा सत्यहै परन्तु यथार्थमें नाशमान होनेसे नित्य पुरुषकी अपेक्षा असत्य है माया कर्मरहित निष्कर्म तत्वज्ञान मोक्ष साधक है माया कार्य अनित्य है अनित्य कर्मसंयुक्त होनेसे मोक्ष साधक नहीं हो सकता यह अभिप्रायहै ॥ २६ ॥ शंका उपास्यके अमायिक होनेसे आत्मोपासना ज्ञान सहित तत्व ज्ञानके मोक्षमें समुच्चय वा विकल्प होवै उत्तर–

इतरस्यापिनात्यन्तिकम् ॥ २७॥

इतरकोभी आत्यन्तिक नहीं है ॥ २७ ॥

जो यह कहा जावै कि विकल्प करिकै अन्य देव अथवा उत्कृष्ट पुरुषकी उपासनासे पुरुषार्थ सिद्ध होगा इसके उत्तरमें यह कहा है कि इतरकोभी आत्यन्तिक नहीं है अर्थात् इतर जो आत्मासे भिन्न उपास्य (उपासना योग्य) है उसकाभी आत्यन्तिक माया रहित होना सिद्ध नहीं होता जो उपास्यही माया रहित नहीं है उसका उपासक माया रहित होना असंभव है ॥२७ ॥

संकल्पितेप्येवम् ॥ २८ ॥

संकल्पितमेंभी इसीप्रकारसे ॥ २८ ॥

संकल्पित उपास्य जो देवता आदि हैं वहभी मायिक हैं मायारहित नहीं हैं क्योंकि जो शरीरवान देवता अथवा महात्माओंके शरीर हैं वह सब माया कार्य हैं क्योंकि जो इन्द्रियगोचर रूप शरीर आदि है सब अनित्य व मायाके व्यापार हैं ॥ २८ ॥ शंका यह उपासना वेदमें कहा है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थ यह सब निश्चय करिके ब्रह्म है इत्यादि उपासना अथवा सिद्ध शिव विष्णु आदिकी उपासना करनेसे क्या फल है उत्तर–

भावनोपचयाच्छुद्धस्यसर्वंप्रकृतिवत् ॥ २९ ॥

भावना सिद्धि होनेसे श्रद्धावान्को सब प्रकृतिके तुल्य है ॥ २९ ॥

भावना रूप जो उपासना है वह श्रद्धावान उपासना करनेवालेको सिद्ध होनेसे उपासना करनेवाले शुद्ध पाप रहित पुरुषको प्रकृतिके तुल्य ऐश्वर्य व सामर्थ्य, अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेकी शक्ति प्राप्ति होती है परन्तु मुक्ति केवल ज्ञानहींसे होती है उपासना आदि कर्मसे नहीं होती यह भाव है ॥ २९ ॥ अवज्ञान जो मोक्षका हेतु है उसका साधन वर्णन किया जाता है ॥

रागोपहतिर्ध्यानम् ॥ ३० ॥

रागके नाशका हेतु ध्यान है ॥ ३० ॥

ज्ञानका प्रतिबंधक (रोकने वाला) जो विषयोंका राग अर्थात् विषयोंकी चाह अथवा प्रीति है उसके नाश होनेका हेतु ध्यान है अर्थात् ध्यान साधनसे सम्पूर्ण विषयोंके रागका नाश होजाता है यहां ध्यान शब्दसे धारणा ध्यान समाधि तीनों ग्रहण करना चाहिये ॥ ३० ॥

वृत्तिनिरोधात्तत्सिद्धिः ॥ ३१ ॥

वृत्तिके निरोधसे उसकी सिद्धि होती है ॥ ३१ ॥

ध्येयसे भिन्न सम्पूर्ण पदार्थोंसे वृत्तियोंके रोकनेसे उसकी अर्थात् ध्यानकी सिद्धि होती है व ध्यानके सिद्ध होनेपर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ध्यान आरंभ करने मात्रसे ज्ञान नहीं होता ॥ ३१ ॥

धारणासनस्वकर्मणात्तत्सिद्धिः ॥ ३२ ॥

धारणा आसन व अपने कर्मसे उस्की सिद्धि होती है ॥ ३२ ॥

धारणा आसन व अपने आश्रम कर्मसे उसकी अर्थात् ध्यानकी सिद्धि होती है ॥ ३२ ॥

निरोधश्च्छर्दिविधारणाभ्याम् ॥३३॥

छर्दि व विधारणसे निरोध होता है ॥ ३३ ॥

छर्दि बमनको कहते हैं यहां अभिप्राय श्वासके बाहर निकालनेसे है व विधारण शब्दका अर्थ विशेष धारण करना है यहां विधारणसे दो अर्थ ग्राह्य हैं एक बाहरके वायुको भीतर धारण करना दूसरे वायुको रोकना स्तंभन करना अर्थात् छर्दिसे रेचक व विधारणसे पूरक व कुंभक अर्थ ग्रहण करना चाहिये रेचक पूरक कुंभक द्वारा वायुका निरोध होता है अर्थात् वायुवश होता है वायुवश होनेसे चित्त स्थिर हो ध्यानमें एकाग्र होता है इससे प्राणायामसे वायुको वश करना चाहिये यह अभिप्राय है ॥ ३३ ॥

स्थिरसुखमासनम् ॥ ३४ ॥

जो स्थिर व सुख साधन हो वह आसन है ॥ ३४ ॥

जो स्थिर व सुखका साधन है वह आसन है अर्थात् किसी आसनसे बैठना जिसमें स्थिर रहना व सुखसे रहना साधनसे होसकै वह आसन है व विशेष आसनके भेद व नामभी अन्य ग्रंथकारोंने लिखा है यथा सिद्धासन पद्मासन व स्वस्तिक इत्यादि ॥ ३४ ॥

स्वकर्मस्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ॥ ३५ ॥

अपने आश्रम विहितकर्मका अनुष्ठान करना स्वकर्म है ॥ ३५ ॥

ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास इन चार आश्रमोंमें जिस आश्रममें हो उस अपने आश्रमका जो विहित कर्म है वह स्वकर्म है उसको करना चाहिये ॥ ३५ ॥

वैराग्यादभ्यासाच्च ॥ ३६ ॥

वैराग्यसे व अभ्याससे ॥ ३६ ॥

विना यम,नियम,प्राणायाम, उत्तम अधिकारीयोंको वैराग्यसे व ध्यान-के अभ्याससे योग सिद्ध होता है क्यों कि वृत्तियोंका रोकना चित्तका एकाग्र होना विषय रागका छूटना योगमें मुख्य है यह वैराग्य व अभ्याससे होजाता है अन्य जे उत्तम अधिकारी नहीं है उनको यम नियम आदि करनेसे कठिनसे योगकी सिद्धि होती है ॥ ३६ ॥

विपर्य्ययभेदाःपंच ॥ ३७॥

विपर्य्ययके भेद पांच है ॥ ३७ ॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, यह पांच विपर्य्ययके भेद हैं व यही बंधके हेतु हैं अनित्य अशुचि दुःख अनात्मामें नित्य शुचि सुख आत्माका बोध करना अविद्या है आत्मा अनात्माका एक होना जानना अस्मिता है यथा मैं शरीरहूं यह बोध होना, राग द्वेष प्रसिद्ध हैं अभिनिवेश मरण आदि त्रासको कहते हैं यह पांच विपर्य्यय हैं ॥ ३७ ॥

अशक्तिरष्टाविंशतिधातु ॥ ३८॥

अशक्ति अट्ठाईसप्रकारकी है ॥ ३८ ॥

विपर्य्यय कारणसे अट्ठाईस प्रकारकी अशक्ति है ग्यारह इन्द्रियोंका नाश होना वनव तुष्टि व आठ सिद्धिकावध होना यह अट्ठाईस अशक्ति हैं इन्द्रियोंका बंध होना बधिर होना कुष्ठ होना अंध होना नपुंसक होना मूक होना आदि ग्यारह इन्द्रियोंकी अपनी अपनी बाधा है व नवतुष्टि व आठ सिद्धियोंके भेद आगे वर्णन किया है इस प्रकारसे अट्ठाईस अशक्ति हैं ॥ ३८ ॥

तुष्टिर्नवधा ॥ ३९ ॥

तुष्टि नवप्रकारकी है ॥३९॥

नव प्रकारके भेदको आगे सूत्रकार आपही वर्णन करेंगे ॥ ३९ ॥

सिद्धिरष्टधा ॥ ४० ॥

सिद्धि आठ प्रकारकी है ॥ ४० ॥

सिद्धियोंके भेद आगे वर्णन किया है ॥ ४०

अवान्तरभेदाःपूर्ववत् ॥ ४१ ॥

अवान्तरभेद पूर्वकेसमान है ॥ ४१ ॥

अवान्तर भेद विपर्ययके पूर्वके तुल्य हैं अर्थात् जो पांच भेद अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश पूर्वही कहाहै वह विपर्ययके भेद हैं यहां संक्षेपसे इतनाही कहा है विस्तारसे कहनेमें विपर्ययके बासठ भेद है वह यह हैं अव्यक्त, महत्तत्व, अहंकार, व पांच तन्मात्रा इन आठ अनात्माओंमें आत्मबुद्धि होना जो अविद्या है यह आठ तमके भेद है अर्थात् तम आठ प्रकारका होता है इनहीं आठका अस्मिता वृत्तिसे ग्रहण होनेसे अष्टप्रकारका मोह होता है शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन पांचका दिव्य अदिव्य भेदसे ग्रहणकरनेमें राग दशप्रकारका है इसीको महामोह शब्दसे वाच्य करके दशप्रकारका महामोह होना कहते हैं अविद्या व अस्मिताके आठ विषय व रागके दश विषय अठारा विषयमें अठाराविधका तामिस्र होताहै अर्थात् द्वेष होताहै और उन अठाराके विनाश आदिसे अठाराविधका अंधतामिस्र होता है अर्थात् अभिनिवेश होता है यह बासठ भेद है ॥ ४१ ॥

एवमितरस्याः ॥ ४२ ॥

इसी प्रकारसे इतरके ॥ ४२ ॥

इसी प्रकारसे इतरके अर्थात् अशक्तिके अवान्तर भेद अट्ठाईस गिनना चाहिये ॥ ४२ ॥

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधातुष्टिः॥४३॥

आध्यात्मिका आदि भेदसे नवप्रकारकी तुष्टि है ॥ ४३ ॥

आध्यात्मिका आदि नव तुष्टियोंके भेद इस प्रकारसे हैं कि प्रकृति, उपादान, काल, भाग्य, इन चार तुष्टियोंकी आध्यात्मिका संज्ञा है यह चार तुष्टी व बाह्य विषय शब्द आदिमें अर्जन (लाभकरना) रक्षण, क्षय, भोग, हिंसा, आदि दोष निमित्तकोंके उपरम (निवृत्ति होने) से तुष्टि होती है इन पांच सहितनव तुष्टी है प्रकृति नामक जो तुष्टि है वह यह है कि आत्माके साक्षात्कार होने पर्यंत जो परिणाम है उसमें यह मानना कि सब प्रकृतिही करती है मैं कूटस्थ पूर्णहूं ऐसी आत्माकी भावनाकरनेसे जो परितोष होताहै उसको प्रकृति तुष्टि कहते हैं व अम्भ भी कहते हैं और उससे संन्यास ग्रहण करनेसे जो तुष्टि होतीहै उसको उपादान तुष्टि व सलिलभी कहते हैं बहुत कालके समाधि व अनुष्ठानसे जो तुष्टि होती है उसको काल तुष्टि व तुष्टिरोध कहतेहैं प्रज्ञान परम काष्ठारूप धर्म मेघा समाधिमें जो तुष्टि होती है उसको भाग्य व वृष्टि कहते हैं यह चार आध्यात्मिक तुष्टी कही जाती हैं और पांच जो पांच बाह्य विषयके अर्जन आदि दोषनिमित्तककी निवृत्तिसे जैसा पूर्वहीं कहा गया है तुष्टि होती हैं यह नव तुष्टी वा तुष्टियां है इनमें बाध होना नवतुष्टियोंकी अशक्ति कही जाती है ॥ ४३ ॥

ऊहादिभिःसिद्धिः ॥ ४४ ॥

ऊहा आदिकोंसे सिद्धि होती है ॥ ४४ ॥

ऊहा१शब्द२ अध्ययन३ आध्यात्मिक दुःखनाश४ आधिभौतिक दुःखनाश५ आधिदैविक दुःखनाश६ सुहृत्प्राप्ति७दान८ इन ऊहा आदिसे आठ सिद्धियां होती हैं विना उपदेश पूर्वसंस्कारके अभ्याससे आपसे तत्व विषयमें संभावना होना ऊहा सिद्धि है, अन्यका पाठ सुनकर अपनेमें शास्त्र ज्ञान हो जाना, शब्दसिद्धि है, शिष्य आचार्य भावकरिकै शास्त्र अध्ययनसे तत्वज्ञान होना अध्ययनसिद्धि है अनायास अपने घरमें

परम दयालु अपने उपदेशको प्राप्त हो जानेसे उपदेश लाभ होना सुहृत्प्राप्ति सिद्धि है, धन आदि दानसे प्रसन्न करिकै उपदेश लाभ करना दान सिद्धि है आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिकका पूर्वही वर्णन किया गया है आध्यात्मिक आदि दुःखोंका नाश होना आध्यात्मिक आदि सिद्धियां हैं इनमें बाधा विघ्न होना अष्टसिद्धि अशक्ति कही जाती हैं शंका-ऊहा आदिहीसे अष्ट सिद्धि क्यों कही गई हैं योगतपबलसे अणिमा आदि अष्टसिद्धि होनेका प्रमाण है. उत्तर-

नेतरादितरहानेनविना ॥४५॥

विना इतरके हान इतरसे भिन्न नहीं है ॥ ४५ ॥

इतरसे अर्थात् ऊहन आदि पांचसे भिन्न तप आदिसे तात्त्विकी सिद्धियां नहीं हैं क्यों नहीं हैं विना इतरके हान होनेसे अर्थात् इतर जो विपर्यय (असत् ज्ञान) है विना उस्के हान (नाश) के वह सिद्धियां होती हैं इससे वे केवल संसारी मूढ जनोंको सिद्धियां भासित होती हैं परन्तु यथार्थ तात्त्विकी सिद्धियां नहीं हैं ॥ ४५ ॥ समष्टि सृष्टिको वर्णन करिकै अब व्यष्टि सृष्टिको वर्णन करते हैं.

दैवादिप्रभेदाः ॥ ४६ ॥

दैव आदि हैं भेद जिसके ऐसी सृष्टि है ॥ ४६ ॥

दैव आदि भेद संयुक्त यह सृष्टि है अर्थात् ब्राह्म प्रजापति इन्द्र पितर गंधर्व यक्ष राक्षस पिशाचकी सृष्टि दैव सृष्टि है पशु मृग पक्षी सर्प स्थावर यह तैर्यग्योनि सृष्टि है व मानुष्य एकही प्रकारकी सृष्टि है यह दैव आदि सृष्टिके भेद हैं ॥ ४६ ॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंतत्कृतासृष्टिराविवेकात् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मासे स्थावर पर्यंत उससे की गई सृष्टि विवेकपर्यंत पुरुषार्थरूप होतीहै ॥ ४७ ॥

ब्रह्मासे आरंभ करिकै स्थावर पर्यंत उससे अर्थात् प्रकृतिसे कीगई व्यष्टि सृष्टिभी समष्टिरूप विराट सृष्टिके तुल्य पुरुषोंको विवेकपर्यंत पुरुषार्थके अर्थ होतीहै अर्थात् पुरुषार्थकेलिये उपयोगी होती है ॥ ४७ ॥

ऊर्द्ध्वं सत्वविशाला ॥ ४८ ॥

ऊर्द्ध्वमें सत्वगुण अधिक युक्त सृष्टि है ॥ ४८ ॥

ऊर्ध्वमें भूलोंकके ऊपर सत्वगुणयुक्त अधिक सृष्टि है अर्थात् भूलों-कके ऊपर जो सृष्टि है उसमें सत्वगुण अधिकक है ॥ ४८ ॥

तमोविशालामूलतः ॥ ४९ ॥

नीचे तमोगुण अधिक युक्त सृष्टि है ॥ ४९ ॥

भूलोकसे नीचे जो सृष्टि है उसमें तमोगुण अधि है ॥ ४९ ॥

मध्येरजोविशाला ॥ ५० ॥

मध्यमे रजोगुण अधिकयुक्त सृष्टि है ॥ ५० ॥

मध्यमें भूलोंकमें जो सृष्टि है उसमें रजोगुण अधिक है ॥ ५० ॥
शंका–प्रकृति एक है एकके चित्र विचित्र सृष्टि करनेका हेतु क्या है?उत्तर–

कर्मवैचित्र्यात्प्रधानचेष्टागर्भदासवत् ॥ ५१ ॥

कर्मकी विचित्रतासे प्रधानकी चेष्टा गर्भ दासके समान है ॥ ५१ ॥

विचित्र कर्म निमित्तहीसे प्रधान अर्थात् प्रकृति विचित्रकार्य करनेकी चेष्टा करती है जैसे जो आदि गर्भअवस्थासे दास है वह अपनी

सेवा करनेकी प्रवीणतासे स्वामीके अर्थ नाना प्रकारकी चेष्टा सेवामें करता है ॥ ५१ ॥

आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः ॥५२॥

तिस्मेंभी आवृत्ति है एक एकसे उत्तर योनिके योग होनेसे त्यागके योग्य है ॥ ५२ ॥

तिस्में अर्थात् पूर्वोक्त ऊर्ध्वलोकमें अर्थात् स्वर्ग महः जनः तपलोकमें प्राप्त होनेमेंभी आवृत्ति है वहाँसे फिर पतित होता है एक एकसे उत्तर अर्थात् फिर एक एकके पश्चात् योनिके योग होनेसे नीचेसे नीचमें जन्म होनेसे ऊर्ध्वलोकभी त्यागके योग्य हैं ॥ ५२ ॥

समानंजरामरणादिजंदुःखम् ॥ ५३ ॥

जरा मरणआदिसे उत्पन्न दुःख समान है ॥ ५३ ॥

ऊर्ध्व व अधोगतवालोंको ब्रह्मासे स्थावरतकको जरामरणसे उत्पन्न दुःख सबको है इससे सब त्यागके योग्य है ॥ ५३ ॥

नकारणलयात्कृतकृत्यतामग्नवदुत्थानात् ॥ ५४ ॥

कारणमें लय होनेसे कृतार्थता (कृतार्थ होना) नहीं है मग्न (डूबेहुये) के समान फिर उठनेसे ॥ ५४ ॥

विना विवेक जब प्रकृतिके उपासनासे महत्तत्त्वादिमें वैराग्य होता है तब उपासक प्रकृतिमें लय होता है वैराग्यसे प्रकृतिमें लय होनेपरभी कृतार्थता नहीं होती जैसे जलमें डूबाहुवा फिर उठता है इसीप्रकारसे प्रकृतिमें लीनपुरुष ईश्वरभावसे अर्थात् ब्रह्मा विष्णु आदिरूपसे फिर उत्पन्न होते हैं विना विवेक कोई कर्म व उपासना दोष नाश करनेमें समर्थ

नहीं है ॥ ५४ ॥ अब यह शंका है कि कारणरूप प्रकृति किसीका कार्य नहीं हैं कि अन्य कारणके आधीनहो स्वतंत्र होकर अपने उपासकोंका फिर दुःख निदानरूप उत्थानको क्यों करती है.उत्तर–

अकार्यत्वेपितद्योगःपारवश्यात् ॥ ५५ ॥

कार्य न होनेमेंभी उस्का योग है परवश होनेसे ॥ ५५ ॥

यद्यपि प्रकृति कार्थ नहीं है तथापि कार्य न होनेमेंभी उस्का अर्थात् प्रकृतिमें लीनके फिर उत्थान होने अर्थात् उत्पन्न होनेका योग हैं क्यों योग है परवश होनेसे अर्थात् पुरुषोंके कर्मसंस्कारपर पुरुषके आधीन होनेसे भाव इस्का यह है कि बिना पुरुषोंके कर्मसंस्कार व चेतन पर पुरुष (परमात्मा)के संयोग जड प्रकृति सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं है पुरुषोंके कर्मसंस्कार रूप अदृष्ट संयुक्त होनेपरभी जड प्रकृति बिना चेतन पुरुषके संयोगसृष्टि नहीं करसकती इससे स्वतंत्र नहीं है यद्यपि पुरुषके इच्छाके आधीन न होने व पुरुषके अकर्ता प्रतिपादन किये जानेसे स्वतंत्र कही गई है तथापि चेतनकी सन्निधि बिना समर्थ न होनेसे स्वतंत्र (सर्वथा स्वतंत्र) नहीं है परपुरुषकी सन्निधि मात्रसे बिना इच्छा सम्बंध स्वाभाविक धर्मसे जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) से लोहा प्रेरित होकर क्रियामें प्रवृत्त होता है इसीप्रकारसे पुरुषसे प्रेरित प्रकृति सृष्टि उत्पत्तिमें प्रवृत्त होती है इससे कार्य न होनेपरभी पुरुषके आधीन है जो यह संशय हो कि यहाँ अयस्कांत (चुम्बक) के तुल्य प्रवृत्तिका निमित्त मात्र माननेका क्या हेतु है सूत्रमें परवश होना मात्र कहा है इससे परमात्मा ईश्वरको इच्छाके आधीन प्रकृति है यही अर्थ ग्रहण करना योग्य है इस्का उत्तर यह है कि पूर्वही अपनी इच्छासे सृष्टि उत्पन्न करनेवाला ईश्वर सिद्ध होनेका निषेध किया है ऐसा अर्थ ग्रहण करनेमें पूर्वापर विरोध होगा इससे अयस्कान्तहीके तुल्य पुरुषके प्रेरक होने व लोहेके तुल्य प्रकृतिका प्रवृत्त होनेमें आधीन मानना कहनेका अभिप्राय समझना उचित है परपुरुषकी सन्निधि व पुरुषोंके कर्म प्रकृतिके प्रवृत्त

होनेमें प्रेरक होनेसे प्रकृतिमें लीन पुरुषोंके संस्कार क्षय न होनेसे प्रकृति उनको फिर उत्पन्न करती है अब वह परपुरुष जिसकी सन्निधि मात्रसे प्रेरित होनेसे प्रकृति सृष्टि उत्पन्न करनेमें समर्थ होती है कैसा है यह वर्णन करते हैं ॥ ५५ ॥

सहिसर्ववित्सर्वकर्ता ॥५६॥

वह निश्चयसे सर्वज्ञ व सबका कर्ता है ॥ ५६ ॥

वह परपुरुष निश्चयसे सर्वज्ञान शक्तिमान सर्वकर्तृत्व शक्तिमान अर्थात् सब करनेमें समर्थ है अर्थात् सर्वज्ञ तो अपने स्वरूपहीसेहै व अयस्कान्तकी तुल्य सन्निधिमात्रसे प्रेरक होनेसे व उसकी प्रेरणा व ज्ञान शक्तिको प्राप्त हो प्रकृति सम्पूर्ण सृष्टिका कारण होनेसे मुख्य आदि सृष्टिकानिमित्त कारण पुरुषही सिद्ध होनेसे पुरुष सबका कर्ता है यह भाव है इसपर यह संशय होता है कि पूर्वही यह कहाहै कि ईश्वरका सृष्टि करना सिद्ध नहीं होता और यहां सर्वज्ञ सर्व कर्ता कहनेसे ईश्वरके प्रतिषेधमें विरोध होगा इस्के उत्तरमें यह कहा है कि— ॥ ५६ ॥

ईदृशेश्वरसिद्धिःसिद्धा ॥ ५७ ॥

ऐसे ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध है ॥ ५७ ॥

इस प्रकारकी अर्थात् सन्निधि मात्रसे प्रकृतिका प्रेरक व सृष्टिका निमित्त कारण होनेवाले ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध है ऐसे ईश्वर माननेका प्रतिषेध नहीं किया गया अपने इच्छासे सृष्टि उत्पन्न करनेवाला अथवा उपादानकरण होकर सृष्टि उत्पन्न करनेवाला ईश्वरके प्रमाणसे सिद्ध होनेका प्रतिषेध किया गया है यह अभिप्राय सूत्रका ग्रहण करना यथार्थ है बहुतेरे पूर्वसूत्र व इस सूत्रका अर्थ इस प्रकारसे कहते हैं कि जो पूर्व सृष्टिमें उपासना व कर्म विशेषसे कारण (प्रकृति) में लीन हुये हैं वह सर्गान्तरमें अर्थात् अन्य सृष्टिमें सर्वज्ञ सर्वकर्ता ईश्वर ब्रह्मा विष्णु आदि

पुरुष होते हैं इस प्रकारके ईश्वरकी सिद्धि सिद्ध है परन्तु ऐसा अर्थ ग्रहण करना यथार्थ नहीं है क्यों कि जिनका जन्म व नाश है वह अपनी उत्पत्तिके आप अपने जन्मसे प्रथम कारण नहीं होसकते और जब आपही जन्म व नाशसे रहित नहीं हैं तौ स्वतंत्रभी नहीं है यहभी सिद्ध होता है स्वतंत्र न होने व सदा न होनेसे सर्वज्ञ व सर्वकर्ता व सर्व शक्तिमान होना-भी संभव नहीं है यद्यपि सिद्ध रूप ईश्वरोंमें सृष्टिकी सामर्थ्य हो परन्तु अपनी उत्पत्तिसे पूर्व आदि सृष्टिमें सृष्टिके हेतु नहीं होसकते इससे सिद्ध रूप ईश्वरोंके माननेसे परमेश्वरका प्रतिषेध नहीं होसकता न सूत्रकारका ऐसा भाव होना सिद्ध होता है ईश्वरके सर्वथा प्रतिषेधमें जो अर्थ इस शास्त्रके विशेष सूत्रोंका कहते वा समझते हैं वह केवल भ्रम-मात्र समुझना चाहिये ॥ ५७ ॥

प्रधानसृष्टिःपरार्थंस्वतोऽप्यभोक्तृ-त्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ॥ ५८ ॥

आपसे करनेपरभी अर्थात् प्रधानका आपसे सृष्टि करनेप-रभी, भोक्ता होनेका सामर्थ्य न होनेसे ऊँटका कुंकुम (केसर) लैचलनेके समान प्रधानकी सृष्टि परके (पुरुषके) लिये है ॥ ५८ ॥

जैसे ऊँट केसर लैचलता है परन्तु उसका लैचलना अज्ञान होनेसे अपने भोगके अर्थ नहीं होता केवल स्वामीके अर्थ होता है इसी प्रकारसे प्रधानका सृष्टि करना परके अर्थ अर्थात् पुरुषकेलिये है ॥ ५८॥
शंका—अचेतन प्रधानका आपसे सृष्टि करना संभव नहीं है. उत्तर—

अचेतनत्वेऽपिक्षीरवच्चेष्टितंप्रधानस्य ॥ ५९ ॥

अचेतन होनेमेंभी क्षीरके समान प्रधान-का चेष्टित कार्य होताहै ॥ ५९ ॥

जैसे क्षीर विना चेतन पुरुषके प्रयत्न आपसे दधि रूप होजाता है इसी प्रकारसे अचेतन प्रधानकाभी आपसे विना दूसरेके प्रयत्न महत्तत्व आदिके रूपमें परिणाम होता है ॥ ५९ ॥

कर्मवद्दृष्टेर्वाकालादेः ॥ ६० ॥

अथवा काल आदिके कर्मके समान देखने (जानने) से ॥ ६० ॥

अथवा काल आदिके कर्मके तुल्य प्रधानका आपसे चेष्टाकरना सिद्ध होता है अर्थात् यह देखनेसे कि एक काल जाता है दूसरा आपसे विना चेतनके प्रयत्न आता है इसी प्रकारसे आपसे स्वभावसे विना चेतनके प्रयत्न प्रकृतिके कर्म करनेका अनुमान होता है ॥ ६० ॥

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसंधानाद्भृत्यवत् ॥ ६१ ॥

विना अभिसंधान सेवकके समान स्वभावसे चेष्टित है ॥ ६१ ॥

जैसे अच्छा सेवक स्वभाव (संस्कारही) से आवश्यक जो प्रतिदिनकी नियत अपने स्वामीकी सेवा है उसमें प्रवृत्त होता है अपने भोगके मनोरथ वा प्रयोजनसे प्रवृत्त नहीं होता इसी प्रकारसे संस्कार स्वभावहीसे पुरुषकेलिये प्रकृतिका चेष्टित कर्म है ॥ ६१ ॥

कर्माकृष्टेर्वानादितः ॥ ६२ ॥

अथवा कर्मके आकर्षणसे अनादिसे ॥ ६२ ॥

कर्मके अनादि होनेसे अनादि कर्म संस्कारके आकर्षणसे भी प्रधानकी आवश्यकी व्यवस्थित प्रवृत्ति है ॥ ६२ ॥

विविक्तबोधात्सृष्टिनिवृत्तिःप्रधानस्यसूदवत्पाके ॥ ६३ ॥

विविक्त पुरुषके ज्ञान होनेसे पाकमें रसोई बनाने वालेके सदृश प्रधानके सृष्टिकी निवृत्ति होती है ॥ ६३ ॥

पुरुषके पृथक् होनेके ज्ञान होनेसेपर वैराग्यसे पुरुषके अर्थ समाप्त होनेपर प्रधानके सृष्टि व्यापारकी निवृत्ति होती है जैसे पाक सिद्ध हो-जानेपर पाक बनाने वालेका व्यापार निवृत्त होजाता है इसीको अत्यन्त प्रलय कहते हैं ॥ ६३ ॥ शंका एकही पुरुषकी उपाधिमें विवेक ज्ञान उत्पन्न होनेसे प्रकृतिकी सृष्टि निवृत्ति होनेपर सबकी मुक्ति होना चाहिये. उत्तर–

इतरइतरवत्तद्दोषात् ॥ ६४ ॥

इतर इतरके तुल्य उस्के दोषसे ॥ ६४ ॥

इतर जो विविक्त ज्ञान रहित है वह अज्ञान अज्ञानके तुल्य बद्ध रहता है. क्यों बद्ध रहता है उसके प्रकृतिके दोषसे अर्थात् अज्ञानके प्रकृतिके दोष निवृत्त न होनेसे अज्ञान बद्ध रहता है ॥ ६४ ॥

द्वयोरेकतरस्यवौदासीन्यमपवर्गः ॥ ६५ ॥

दोनों वा एकका उदासीन होना मोक्ष है ॥ ६५ ॥

दोनों प्रकृति व पुरुषका उदासीन होना अर्थात् परस्पर वियोग होना अथवा एक पुरुषहीका उदासीन होना कि मैं मुक्तहोऊं यही पुरुषा-र्थता है यह विचारकर प्रकृति संयोगसे निवृत्त होना मोक्ष है ॥ ६५ ॥

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपिनविरज्यते प्रबुद्धरज्जुतत्वस्यैवोरगः ॥ ६६ ॥

अन्यके सृष्टि उपरागमें विरक्त नहीं होती यथा केवल रस्सीके ज्ञान प्राप्त हुएको सर्प ॥ ६६ ॥

तत्वज्ञान जिसको प्राप्त हुवा उससे विरक्त होने अथवा पृथक् हो-जानेपरभी प्रकृति अन्य मूढ (अज्ञानी) पुरुषमे सृष्टि उपरागकेलिये विरक्त नहीं होती अर्थात् मूढके अर्थ सृष्टि उत्पन्नकरती है जैसे केवल उसी पुरुषको जिसको सर्प नहीं रस्सी है यह बोध होगयाहै सर्पबोध वा भ्रम रस्सीमें भ्रमसे सर्पआकार भयको उत्पन्न नहीं करता मूढ जिस को बोध नहीं हुवा उस्को उत्पन्न करता है ॥ ६६ ॥

कर्मनिमित्तयोगाच्च ॥ ६७ ॥

कर्मनिमित्त योगसे भी ॥ ६७ ॥

सृष्टि होनेमें निमित्त जो कर्म है उस्के सम्बंधसे भी बद्ध मूढ पुरु-षके अर्थ सृष्टि करती है ॥ ६७ ॥ अब यह शंका है कि विना सब पुरु-षोंकी प्रार्थना विना अपेक्षा विशेष किसीमें प्रधानकी प्रवृत्ति किसीमें निवृत्ति होती है इसमें नियामक क्या है किस पुरुषका कौन कर्म है इसमें कोई नियामक न होनेसे कर्मका कोई नियामक नहीं है वा ज्ञात नहीं होता इसको उत्तरमें यह कहाहै—

नैरपेक्ष्येऽपिप्रकृत्युपकारेऽविवेकोनिमित्तम् ६८

अपेक्षा न होनेमें भी प्रकृतिके उपकारमें अविवेक निमित्त है ॥ ६८ ॥

पुरुषोंको अपेक्षा न होनेपरभी पुरुष व प्रकृतिमें भेद होनेका विवे-क न होनेसे यह मेरा स्वामी है यही मैं हूँ इस अविवेकहीसे प्रकृति सृष्टि आदिसे पुरुषोंका उपकार करती है जिस पुरुषमें व अपनेमें भेद ज्ञान होनेका विवेक प्रकृति नहीं देखती व उसमें अविवेक होनेसे वासना होती है उसीमें प्रकृतिकी प्रवृत्ति होतीहै इससे प्रकृतिकी प्रवृत्तिमें अविवे कनिमित्त है यही नियामक है ॥ ६८ ॥ प्रश्न प्रकृतिके प्रवृत्ति स्वभा-

व होनेसे विवेक होनेपरभी निवृत्ति होना संभव नहीं होता प्रकृतिकी निवृत्ति कैसे होती है. उत्तर-

नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात् ६९

नर्तकी (नाचनेवाली) के तुल्य चरितार्थ(किएगएकी सिद्धि) होनेसे प्रवृत्तकीभी निवृत्ति होती है ॥ ६९ ॥

प्रधानका सामान्यसे प्रवृत्ति स्वभाव नहीं है जिस्का निवृत्त होना संभव न हो प्रधानका प्रवृत्त होना केवल पुरुषके निमित्त है इससे पुरुषार्थ समाप्तिरूप चरितार्थ होनेमें प्रवृत्त प्रधानकी निवृत्ति युक्त हय- था नर्तकी जो नृत्य दर्शनके अर्थ प्रवृत्त होती है नृत्यका मनोरथ सिद्ध होनेपर निवृत्त होती है ॥ ६९ ॥

दोषबोधेपिनोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ॥७०॥

दोष बोध होनेहीमें कुलवधूके समान प्रधानका उपसर्पण (पासजाना) नहीं होता ॥ ७० ॥

परिणामी होना दुःखात्मक होना आदि प्रकृतिके धर्म पुरुषसे देखे जानेसे अर्थात् समझे जानेसे लज्जाको प्राप्त प्रकृतिका फिर पुरुषके पास जाना नहीं होता जैसे कुलवधू यह जानकर कि मेरा स्वामी मेरा दोष जान लिया लज्जित कुलवधू स्वामीके पास नहीं जाती अर्थात् प्रकृति का दुःखात्मक होनेका बोध होनेसे फिर पुरुष बंधको नहीं प्राप्त होता७०

नैकान्ततोबंधमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते॥७१॥

विना अविवेक पुरुषको एकान्त (एकरस) से बंध व मोक्ष नहीं है ॥ ७१ ॥

दुःखके योग व वियोग रूप जो बंध व मोक्ष हैं वह पुरुषको तत्वसे सदा नहीं हैं केवल अविवेकसे हैं विना अविवेक पुरुषको बंध नहीं है७१

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससंगत्वात्पशुवत् ॥ ७२ ॥

प्रकृतिहीके साथ संग होनेसे तत्वसे दुःखसे पशुके सदृश बंध होताहै ॥ ७२ ॥

प्रकृतिहीके साथ संग होनेसे अर्थात् दुःख साधन धर्मोंके साथ लिप्त होनेसे तत्वसे दुःखसे बंध होताहै अन्यथा नहीं तथा संगरहित होनेसे मोक्ष होता है यथा रस्सीके संग वा सम्बंध होनेसे पशुका बंध व संग रहित होनेसे मोक्ष होता है ॥ ७२ ॥

रूपैस्सप्तभिरात्मानंबध्नाति प्रधानंकोशकारवद्विमोच यत्येक रूपेण ॥७३ ॥

आत्माको कुसियारीके कीडेके समान सातरूपसे प्रकृति बांधतीहै व एकरूपसे छोडाती है ॥ ७३ ॥

धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य, इन सात रूप दुःख हेतुओंसे प्रकृति आत्माको बांधती है जैसे कुसियारीका कीडा अपने बनायेहुये वासस्थानसे अपने आत्माको बांधता है वही प्रकृति एकरूपसे अर्थात् केवल एक ज्ञानसे दुःखसे आत्माको छोडाती है ७३

निमित्तत्वमविवेकस्यनदृष्टहानिः॥ ७४॥

अविवेकके निमित्त होनेसे दृष्ट हानि है ॥ ७४ ॥

बंध व मुक्ति होना जो अविवेकसे कहा है उसमें यह शंका निवारणके अर्थ कि बंध व मुक्ति अविवेकसे कहना यथार्थ नहीं है क्योंकि अविवेक न त्यागके योग्य है न ग्रहणके योग्य है लोकमें यह दृष्ट (देखा गया वा

विदित) है कि दुःख व उसका अभाव जो सुख है उसीसे आपही त्याग व ग्रहणके योग्य होना विदित होता है अन्यथा दृष्टकी हानि है अर्थात् प्रत्यक्षसे सिद्ध हुयेकी हानि है, सूत्रमें यह कहा है कि पुरुषमें अविवेक बंध मोक्षका निमित्त होना मात्र कहा गया है अविवेकही बंध व मोक्ष नहीं है इससे अविवेकके निमित्त मात्रहोनेमें दृष्टकी हानि नहीं है॥७४॥
अब विवेक सिद्ध होनेंके उपायमें अभ्यासका वर्णन किया जाता है

तत्वाभ्यासान्नेतिनेतीतित्यागा द्विवेकसिद्धिः ॥ ७५ ॥

यह नहींहै यह नहींहै इस त्यागरूप तत्व-अभ्याससे विवेककी सिद्धि है ॥ ७५ ॥

प्रकृतिपर्यन्त जड पदार्थोंमें यह नही है यह नहीं है (यह आत्मा नहीं है) इस अभिमान त्यागरूप तत्वके अभ्याससे आत्माके विवेक की सिद्धि होती है अर्थात् यह विचार करनेसे कि यह मे नही हूँ यह शरीर जो अस्थि नाडी मांस लोहूसे बना चर्मसे बंधा मूत्रपुरीषसे पूर्ण दुर्गंध युक्त जरा शोकसे व्याप्त रोगको स्थान है यह मिथ्या नाशमान व निषिद्ध है यह मैं नहीं हूँ इस शरीरमें मोहित होना अज्ञान मात्र है यथा नदीके कँगारके वृक्ष अथवा वृक्षके पक्षीका कँगार व वृक्षसे वियोग होता है इसी प्रकारसे इस देहसे वियोग अवश्य होना है और देहसे भिन्न यावत् पदार्थ हैं इन सब नाश होनेवालोंसे मैं भिन्न हूँ ऐसी भावना करनेके अभ्याससे आत्माके विवेककी सिद्धि होती है ॥ ७५ ॥

अधिकारिप्रभेदान्ननियमः ॥ ७६ ॥

अधिकारीयोंके भेदसे नियम नहीं है ॥ ७६ ॥

मन्द आदि अधिकारियोंके भेद होनेसे अभ्यास करनेमें इसी जन्ममें क्रियमाण अभ्यासमें विवेककी सिद्धि होती है यह नियम नहीं है इससे

अभ्यासमें परिश्रम व साधन विचार विशेष करिकै आत्मज्ञानमें उत्तम अधिकार प्राप्त करना उचित है ॥ ७६ ॥

बाधितानुवृत्त्यामध्यविवेकतोऽप्यपभोगः ॥७७॥

बाधितोंकी अनुवृत्तिसे मध्य विवेकसे भी अपभोग है ॥ ७७ ॥

मन्द मध्यम, उत्तम विवेकके भेद है उत्तम विवेकसे असम्प्रज्ञात योग होता है जिसमें सब वृत्तियोंका निरोध होजाता है उससे मोक्ष होती है फिर दुःख नहीं होता व सम्प्रज्ञात योगमें वृत्तियोंका संस्कार सम्बंध रहता है इससे प्रारब्धवशसे फिर दुःख प्राप्त होता है इससे यह कहा है कि बाधित जो दुःख आदि हैं उनकी अनुवृत्तिसे अर्थात् नाश होनेके पश्चात् फिर प्राप्त होनेसे मध्य विवेकसेभी अपभोग है अर्थात् मन्दविवेक जिसमें आत्मा साक्षात्कार नहीं होता वह तौ अप भोगही है उसमें दुःख निवृत्त नहीं होता मध्यम विवेक जिसमें कहीं सम्प्रज्ञात योगसे आत्मा साक्षात्कार होता है और दुःख निवृत्त होजाता है उसमेंभी संस्कारका नाश नहीं होता प्रारब्ध वशसे फिर दुःख प्राप्त-होता है इससे उत्तम विवेकहीसे मोक्ष होना सिद्ध होता है अन्यथा नहीं यह भाव है ॥ ७७ ॥

जीवन्मुक्तश्च ॥ ७८ ॥

जीवन्मुक्तभी ॥ ७८ ॥

जीवन्मुक्तभी मध्य विवेकमें स्थित होता है जीवन्मुक्तमें प्रमाण कहते हैं ॥ ७८ ॥

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः ॥ ७९ ॥

उपदेशके योग्य व उपदेश करने वालेके भावसे उसकी सिद्धि है ॥ ७९ ॥

शास्त्रमें विवेक विषयमें उपदेश करनेवाला गुरू व उपदेशके योग्य जो शिष्य है दोनोंके भावसे अर्थात् गुरू व शिष्यके भावसे जीवन्मुक्तका मध्यम विवेकवान् होना सिद्ध होता है उपदेश करनेवालेके उपदेशसे जीवन्मुक्त होनेकी सिद्धि कहनेसे यह अभिप्राय सूचित होता है कि जीवन्मुक्तहीका उपदेश करनेमें अधिकार है ॥ ७९ ॥

श्रुतिश्च ॥ ८० ॥

श्रुतिभी ॥ ८० ॥

श्रुतिभी जीवन्मुक्त होनेमें प्रमाण है यथा " ब्रह्मैवसन्ब्रह्माप्येति " इत्यादि अर्थ ब्रह्महीहो ब्रह्ममें लय होता है अर्थात् ब्रह्म भाव व प्रेममें मग्रहो ब्रह्ममें लय होता है इत्यादि ॥ ८० ॥ शंका—मध्यमविवेकवान जीवन्मुक्तहीका उपदेष्टा होना कहा है मन्द विवेकवानके उपदेश करनेमें क्या हानि है. उत्तर—

इतरथान्धपरम्परा ॥ ८१ ॥

अन्यथा अन्धपरंपरा होनेकी प्राप्ति है ॥ ८१ ॥

अन्यथा अर्थात् मध्यम विवेकवानके उपदेशक न होने व मन्द विवेक वानके उपदेशक होनेमें अन्धपरम्पराकी प्राप्ति होगी क्योंकि मन्द विवेकवान् उपदेश करनेवालेहीको जब यथार्थ बोध नहीं है तौ जिस अंशमें उसको निश्चय है उसमें यथार्थ उपदेश करैगा और जिसमें उसीको भ्रम है उसमें मिथ्या उपदेश करैगा शिष्यकोभी भ्रांति युक्त करदे वैगा फिर वह अन्यको भ्रांत करैगा इसीप्रकारसे एक दूसरेमें अंध परम्पराकी प्राप्ति होगी इससे जीवन्मुक्त मध्यम विवेकवानही उपदेश कर्त्ता होना योग्य है॥८१॥शंका—ज्ञानसे कर्मक्षय होजानेपर फिर जीवन्मुक्त कैसे जीवन धारण करता है क्यों कि विना कर्म शरीर न रहना चाहिये. उत्तर—

चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥ ८२॥

चक्रभ्रमणके तुल्य शरीर धारण करता है ॥८२॥

जैसे कुम्हारके कर्म निवृत्त हो जानेपरभी पूर्व कर्मके वेगसे आपही कुछ कालतक चक्र (कुम्हारका चाक) घूमता रहता है इसी प्रकारसे ज्ञान होनेसे कर्म निवृत्त हो जानेपरभी प्रारब्ध कर्मोंके संस्कार वेग करिके (वेगसे) जीवन्मुक्त शरीर धारण किये रहता है ॥ ८२ ॥

संस्कारलेशात्तत्सिद्धिः ॥ ८३ ॥

संस्कारलेशसे उसकी सिद्धि है ॥ ८३ ॥

संस्कारलेशसे अर्थात् किंचित् कर्म संस्कार होने अथवा रहनेसे उसकी अर्थात् शरीर होनेकी सिद्धि है अर्थात् जब सर्वथा कर्मसंस्कारका नाश होता है तब शरीर धारण नहीं होता और जो कुछभी संस्कार रहता है तो फिर जन्म होता है ॥ ८३ ॥

विवेकान्निश्शेषदुःखनिवृत्तौकृतकृत्यतानेतरान्नेतरात् ॥ ८४ ॥

विवेकसे सर्वथा दुःखनिवृत्त होनेमेंकृत कृत्यता (कृतार्थ होना) है दूसरेसे नहीं दूसरेसे नहीं ॥ ८४ ॥

विवेकसे परम वैराग्यद्वारा सबवृत्तियोंका निरोध होनेसे जब सब दुःखोंसे छूटता है तभी पुरुष कृतार्थ होता है औरसे जीवन्मुक्ति आदिसेभी कृतार्थ होना संभव नहीं है इससे कहा है कि, केवल विवेकसे कृतार्थ होना सिद्ध होता है दूसरे उपायसे पुरुष कृतार्थ नहीं होता यह निश्चय है दूसरेसे नहीं यह दो बार कहना अध्यायकी समाप्ति सूचनके अर्थ है॥८४॥

इति श्रीप्यारेलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततरहीत्याख्यग्रामवासिप्रभुदयालुशास्त्रविन्निर्मितेसांख्यदर्शने देशभाषाकृतभाष्ये वैराग्याध्यायस्तृतीयः समाप्तः ॥ ३ ॥

ने मारकर अथवा बली कुत्ता बलसे छीनलेताहै तौ अति दुःखी होता-है और जो आपसे छोड देताहै तौ दुःखसे छूटताहै ॥ ५ ॥

अहिर्निर्ल्वयिनीवत् ॥ ६ ॥

सांपकी केचुलके समान ॥ ६ ॥

जैसे सांप पुरानी खाल केचुलको छोड देताहै इसी प्रकारसे मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा करनेवाला) प्रकृतिको बहुतकाल भोग की हुई जीर्ण त्यागके योग्य जानकर त्याग करता है ॥ ६ ॥

छिन्नहस्तवद्वा ॥ ७ ॥

अथवा छिन्न हस्तके समान ॥ ७ ॥

अथवा जैसे कटेहुए हांथको फिर कोई अंगिकार नहीं करता न उस्का कोई अभिमान करता है इसी प्रकारसे त्याग कीहुई प्रकृतिका फिर ज्ञानी अभि-मान नहीं करता ॥ ७ ॥

असाधनानुचिन्तनंबन्धायभरतवत्॥८॥

असाधनमें अनुचिन्तन करना भरतके तुल्य बंधके अर्थ होताहै ॥ ८ ॥

विवेक जो अंतरंग साधन अंतःकरणसे नहीं होता तौ यद्यपि धर्म होवै तौ भी अनुष्ठान करनेवालेके बंधका कारण होताहै जैसे जडभरत दया करिकै हरिणके बच्चाका पोषण किया वह दया उन्हींके बंधकी कारण हुई इससे विना विवेक धर्म कर्मका अनुष्ठानभी भरतके तुल्य बंधका हेतु होता है॥८॥

बहुभिर्योगेविरोधोरागादिभिःकुमारीशङ्खवत् ९

बहुतके साथ योग होनेसे राग आदिसे कुमारीके चूडियोंके समान विरोध होताहै ॥ ९ ॥

बहुतसे संग न करना चाहिये क्यों कि बहुतके संगमें राग आदिकोंसे कलह होता है वह कलह योगको भ्रष्ट करता है जैसे कुमारीके हांथकी चूडी इस कुमारीके हांथकी चूडियोंके दृष्टांतका व्याख्यान यह है कि एक कुमारीके घरमें महिमान आये महिमानोंकेलिये कुमारी धान कूटने लगी कूटनेमें उसकी चूडियां झनकार करतीथीं उसको यह लज्जा होतीथी कि, महिमान मेरी चूडियोंका शब्द सुनकर यह समझेंगे कि इसके घरमें कुछ और अन्न नहीं है और रंक है इससे अपने हाथसेधान कूटती है इस लज्जासे वह एक एक फोर चली जब दो रहगईं तबतक शब्द होना बंद न हुआ जब एक रहगई तब शब्द होना बंद होगया उसको सुख हुवा इच्छाअनुसार अपना काम किया इसीप्रकारसे एकाकी होनेमें योगीको सुख होता है संगमें कलह व दुःख होता है॥९॥

द्वाभ्यामपितथैव ॥ १० ॥

दोके साथभी उसी प्रकारसे ॥ १० ॥

जो यह समझा जाय कि बहुतसे संग न करना चाहिये दो होनेमें हानि नहीं है तो दो होनेमेंभी हानि होना जानकर संगका निषेध किया है कि दोके साथमेंभी उसी प्रकारसे कलह व विरोध होता है इससे एकान्त एकाकी रहना चाहिये ॥ १० ॥

निराशःसुखीपिङ्गलावत् ॥ ११ ॥

आशा रहित वेश्याके समान सुखी होवै ॥ ११ ॥

आशाको त्याग करिकै पुरुष सन्तोषको प्राप्त हो सुखको लाभ करै जबतक आशा त्याग नहीं करता सुखको नहीं प्राप्त होता जैसे एक पिंगला नाम वेश्या एक दिन कान्ताकी इच्छा करती रही परन्तु कोई उसदिन उसके मनोरथ पूर्णकरनेको न आया तब उसको बडा खेद हुवा कुछ कालमें खेदके पश्चात् उसको ज्ञान हुवा कि तुच्छ मनुष्योंकी

विवेक ज्ञान साधनके वर्णनमें चतुर्थाध्यायका प्रारंभ किया जाता है व साधारण समझनेकेलिये विवेक ज्ञान साधनमें दृष्टांत इतिहास सहित वर्णन करते हैं

राजपुत्रवत्तत्वोपदेशात् ॥ १ ॥

राजाके पुत्रकेसमान तत्वउपदेशसे ॥ १ ॥

राजाके पुत्रके समान तत्वउपदेशसे विवेक उत्पन्न होता है यह सूत्रका अर्थ है विवेक होनेका अर्थ पूर्व अध्यायके सम्बंधसे ग्रहण किया जाता है राजाके पुत्रके तुल्य कहनेसे इस इतिहाससे अभिप्राय है कि कोई राजाका पुत्र किसी दोष विशेषसे जब वह छोटाथा किसीके साथ निकाल दिया गयाथा उसको किसी चांडालने लेकर पालन पोषण किया चाण्डालके गृहमें रहनेसे अज्ञानसे उसने अपनेकोभी चाण्डाल मान लिया कुछ कालगत हुए कोई इसके हालका जाननेवाला आकर कहा कि तू राजपुत्र है और ऐसा हाल है तू चाण्डाल नहीं है यह सुनकर वह उसीक्षण चाण्डालका अभिमान छोंडकर सच्चा जो राजा होनेका भावथा उसको प्राप्त हुवा कि मैं राजाहूँ इसी प्रकारसे परिपूर्ण चेतन अविनाशी शुद्ध निर्विकाररूप तू है प्रकृतिरूप नहीं है यह तत्व उपदेश करुणावान् गुरुसे सुनकर प्रकृति अभिमानको छोंडकर मैं ब्रह्मरूप हूं अर्थात् तत्व पदार्थ वा जातिसे एकही होनेसे उससे विजातीय संसारी नहीं हूं ऐसा जानकर अपने स्वरूपको आलम्बन करता है ॥ १ ॥

पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि॥२॥

पिशाचके समान अन्यके अर्थ उपदेशमेंभी ॥ २ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रजी अन्यके अर्थ अर्थात् अर्जुनकेलिये उपदेश करते थे वहाँ समीप एक पिशाच था अर्जुनके अर्थ जो उपदेश किया गया उसके सुननेसे पिशाचको विवेक उत्पन्न होगया अन्यकेलिये उपदेश

होनेमें भी पिशाचके तुल्य समीपस्थको विवेक उत्पन्न होता है इससे सज्जन महात्माओंके समीप जाना सत्संगकरना उचितहै यह भाव है॥२॥

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ ३ ॥

अनेकवारके उपदेशसे आवृत्ति करना चाहिये ॥ ३ ॥

एक वारके उपदेशसे ज्ञान न होनेसे उपदेशकी आवृत्ति अर्थात् फिर फिर चिन्तन करना चाहिये क्योंकि छान्दोग्य आदिमें जो इतिहास श्वेतकेतु आदिके हैं उनमे अनेकवार वारम्वार चिन्तन व मनन करनेका उपदेश है इससे आवृत्ति करना आवश्यक है आवृत्तिकरना चाहिये ॥ ३ ॥

पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥

पिता पुत्रके सदृश जाननेवाला होनेसे ॥ ४ ॥

अपने पिता व पुत्रके तुल्य अपना मरण व उत्पन्न होना जानलेनेसे (अनुमान करनेसे) वैराग्य सहित विवेक होता है अर्थात् विना अन्यके उपदेश अपने पिता व पुत्रहीके देखने व स्मरण करनेसे व यह विचारनेसे कि जैसे मेरे पुत्र उत्पन्न हुवा है इसी प्रकारसे एक दिन मैं उत्पन्न हुवाहूंगा व जैसे मेरे पिताका मरण हुवा है इसी प्रकारसे मेरा मरण होगा वैराग्य व विवेक उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

श्वानवत् सुखिदुःखीत्यागवियोगाभ्याम् ॥ ५ ॥

कुत्ताके समान त्याग व वियोगसे सुखी व दुःखी होता है ॥ ५ ॥

परिग्रह न करना चाहिये क्योंकि द्रव्योंके त्यागसे लोक सुखी होता है वियोगसे दुःखी होताहै जैसे कुत्ता मांसको लिये जाता है जो किसी-

आशा करिके मैं सब जन्म गतकर दिया मनुष्योंकी आशासे कुछ नहीं है ऐसा विचारकर आशाको छोंड दिया जबतक वह आशा करती रही नींद न आई दुःखी रही जब आशा त्यागकर दिया सुखपूर्वक सोगई आशा त्यागनेसे यथा पिङ्गला सुखी हुई है तथा आशा त्यागकर पुरुष सुखी होवै यह उपदेश है ॥ ११ ॥

अनारंभेऽपिपरग्रहेसुखीसर्पवत् ॥ १२ ॥

विनाघर बनायेभी सर्पकेतुल्य परके घरमें सुखी होवै ॥ १२ ॥

ज्ञानी घर बनानेका आरंभ न करै विना घर बनाये सर्पके तुल्य सुखी रहै सर्प जहां छिद्र पाताहै वहां घर बना लेताहै इसी प्रकारसे ज्ञानी जहां पहुंच जाय वही घर है परके घरमें सुखी रहै ॥ १२ ॥

बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपिसारादानं षट्पदवत् ॥ १३ ॥

बहुशास्त्र व गुरु उपासनमेंभी भ्रमरके समान सारका ग्रहण करै ॥ १३ ॥

जैसे भ्रमर फूलोंसे सारको ग्रहण करता है इसी प्रकारसे विवेकी सब शास्त्रों व गुरुके उपदेशमें सारको ग्रहणकरै ॥ १३ ॥

इषुकारवन्नैकचित्तस्यसमाधिहानिः ॥ १४ ॥

बाण बनानेवालेके समान एकाग्रचित्त हुएकी समाधिकी हानी नहीं होती ॥ १४ ॥

यथा एक बाणका बनानेवाला बाणको बना रहाथा उसी समयमें एक राजा बडी भीर समेत पाससे चलागया उसने न जाना इसी प्रकारसे

जिस्का अच्छे प्रकारसे एकाग्र चित्त हो जाता है उस्का चित्त अन्य विषयोंमें नहीं जाता व एकाग्रताईसे समाधिके द्वारा विवेकके साक्षात्कार होनेकी सिद्धि होती है ॥ १४ ॥

कृतनियमोल्लंघनादानर्थक्यंलोकवत् ॥ १५ ॥

कृत नियमके उल्लंघनसे लोकके समान अनर्थक होना है ॥ १५ ॥

शास्त्रमें जो नियम योगियोंके लिये किया है उस कृत नियमके उल्लंघनमें ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती उल्लंघन करनेसे केवल अनर्थक होना है जैसे लोकमें भेषज आदिमें जो विहित पथ्य है उस्के उल्लंघनसे रोगनाशकी सिद्धि नहीं होती ॥ १५ ॥

तद्विस्मरणेपिभेकीवत् ॥ १६ ॥

उस्के भूलनेमें भी भेकीके समान ॥ १६ ॥

उसके अर्थात् नियमके भूलनमेंभी अनर्थ होताहै जैसा कि भेकीका दृष्टांत है इसकी कथा यह है कि कोई राजा शिकार खेलने गयाथा वहाँ एक माया रूपिणी सुन्दरी कन्याको देखा राजा उस्की सुन्दरताको देखकर उससे अपनी भार्या होनेकी प्रार्थना किया उसकन्याने अंगीकार किया परंतु यह नियम किया कि जब तुम मुझे जल देखाओगे तब मैं जलमें प्रवेश करजाऊंगी एक समय क्रीडा करके दोनों श्रमित भये उस कन्याने कहा जल कहाँ है राजाको जो उसने नियम कियाथा भूलगया जल देखाया कि यह जल है जल दिखातेही वह कन्या मायारूपा इच्छाचारी भेकी रूप हो जलमें प्रवेश करगई राजा बहुत प्रकारसे जलमें खोजा पता न लगा। राजाको नियम भूलनेसे अत्यंत दुःख हुवा इसी प्रकारसे नियम भूलनेसे योगमें अनर्थ होताहै यह अभिप्राय है ॥ १६ ॥

नोपदेशश्रवणेऽपिकृतकृत्यतापरा

मर्शादृतेविरोचनवत् ॥ १७ ॥

विना परामर्श (विचार) विरोचनके सदृश उपदेश श्रवणमेंभी कृतार्थता नहीं है ॥ १७ ॥

विना परामर्श अर्थात् गुरुवाक्यके तात्पर्यनिर्णय करनेवाले विचारके उपदेश वाक्य सुननेंमें भीतत्वज्ञान होनेका नियम नहीं है ब्रह्माके उपदेश सुननेमें इन्द्र व विरोचन दोमेंसे विरोचनको परामर्शके अभावसे भ्रान्ति बनी रही इससे गुरुके उपदेशमें मनन करनाभी आवश्यकहै केवल सुन नेसे कृतार्थता नहीं होती अर्थात् सुनलेनेसे कोई कृतार्थ नहीं हो जाता १७

दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य ॥ १८ ॥

उन दोनोंके मध्यमें इन्द्रका परामर्श जनागया ॥ १८ ॥

उन दोनों इन्द्र व विरोचनमेंसे केवल इन्द्रका परामर्श जानागया अ-र्थात् इन्द्रमें परामर्श होनेसे उपदेशका बोध हुआ विरोचनको परामर्शके अभावसे उपदेशका बोध न हुआ इससे परामर्श आवश्यकहै ॥ १८ ॥

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानिकृत्वासिद्धि र्बहुकालात्तद्वत् ॥ १९ ॥

बहुकालसे प्रणति ब्रह्मचर्य (वेदाध्ययन) व सेवा करिके उस्के समान सिद्धि होती है ॥ १९ ॥

बहु कालसे प्रणति (नम्रता) वेदाध्ययन व सेवा करिकै अर्थात् बहु-तकाल गुरुकी सेवासे उसके समान अर्थात् इन्द्रके समान अन्यकोभी सिद्धि (तत्वज्ञानकी सिद्धि) होती है ॥ १९ ॥

नकालनियमोवामदेववत् ॥ २० ॥

वामदेवके सदृश कालका नियम नहीं है ॥ २० ॥

पूर्वजन्मके साधनके संस्कारसे शीघ्र (जल्दी) भी सिद्धि होती है उसको बहुतकालका नियम नहीं है यथा वामदेवको जन्मान्तरके साधनसे गर्भहीमें ज्ञान उदय हुवा और यह कहा " अहमनुरभवंसूर्यश्चेति " अर्थ–मै मनु हुआथा और सूर्य हुआथा इस प्रकारसे जन्मान्तरका ज्ञान व ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ यह श्रुति बृहदारण्यकमें है इसी प्रकारसे जन्मान्तरके साधनसे अन्यकाभी शीघ्रही तत्वज्ञान हो सकता है ॥ २० ॥

अध्यस्तरूपोपासनात्पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव ॥ २१ ॥

अध्यस्तरूपोंके उपासनासे परम्पराक्रम होनेके द्वारा यज्ञउपासकोंके समान ॥ २१ ॥

अध्यस्तरूप जो ब्रह्मा विष्णु हर आदिहैं उनके उपासकोंको परम्परा क्रमसे यज्ञ उपासकों के तुल्य उच्चलोंगोकी अर्थात् ब्रह्म आदिलोगोंकी क्रमसे प्राप्ति होतीहै अथवा सत्व शुद्धिद्वारा क्रमसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है परन्तु साक्षात् ज्ञानकी सिद्धि नहीं है इससे साक्षात् ज्ञानकी सिद्धि शुद्ध परमात्मज्ञानहीसे है ॥ २१ ॥

इतरलाभेऽप्यावृत्तिःपंचाग्नियोगतोजन्मश्रुतेः ॥ २२ ॥

इतरके लाभ होनेपर भी आवृत्ति होती है पंचाग्नि योगसे जन्म सुनेनेसे ॥ २२ ॥

निर्गुण आत्मासे इतर जो अध्यस्तरूप ब्रह्मलोक पर्यंत हैं उसके लाभ होनेपरभी फिर आवृत्ति होती है अर्थात् फिर जन्म आदि व दुःखकी प्राप्ति होती है किस प्रमाणसे आवृत्ति होनेकी सिद्धि है पंचाग्नियोगसे जन्म सुननेसे अर्थात् छान्दोग्यउपनिषद्के पंचम प्र-

पाठकमें यह वर्णन किया है कि देवयानमार्गसे ब्रह्मलोकमे प्राप्त हुवा जो पुरुषहै उस्काभी स्वर्ग, मेघ, पृथ्वी, देवता, स्त्री रूप, पंच अग्निमें आहुति होनेंसे फिर जन्म होताहै और जो ब्रह्म लोकसे आवृत्ति न होनेमें वाक्य है वह जिस्को ज्ञान उत्पन्न है उसके विषयमें है जो प्रकृति कार्य विषयमें बँधा व तत्वज्ञान रहित है उसके लिये नहीं है

विरक्तस्यहेयहानमुपादेयमुपादा नंहंसक्षीरवत् ॥ २३ ॥

विरक्तका त्यागके योग्यका त्याग व करना ग्रहणकेयोग्यका ग्रहण करना हंसके क्षीर ग्रहण करनेके समान होता है २३

यथा हंस दूध व जलके एक भाव होनेपर अर्थात् दोनोंके मिल-जानेपर असार जलको त्यागकर सार जलको ग्रहण करता है इसी प्रकारसे विरक्तको हेय (त्यागकी योग्य) जो प्रकृति है उसका त्याग व विवेकसे आत्मज्ञानका धारण वा ग्रहण होता है जैसे हंसही जलसे भिन्न करके दूधको ग्रहण करता है काक आदि नहीं करते इसी प्रकारसे विरक्तही आत्मज्ञानको धारण कर्ता है वा प्राप्त होता है अज्ञानी विषयी नहीं प्राप्त होता ॥ २३ ॥

लब्धातिशययोगाद्वातद्वत् ॥ २४ ॥

जिस्को अतिशय ज्ञान प्राप्त है उसके योगसे भी उसके समान होता है ॥ २४ ॥

जो अतियोगसाधनसे अतिशय ज्ञान व अधिकारको लाभ किया है उसके संगसेभी उसके सदृश विवेक उदय होता है यथा अलर्क-को दत्तात्रेय महात्माके संग मात्रसे आपसे विवेक उदय हुवा ॥ २४ ॥

नकामाचारित्वंरागोपहतेशुकवत् ॥ २५ ॥

रागोपहत पुरुषके समीप शुक (सुवा) के सदृश कामचारी न होना चाहिए॥ २५ ॥

रागोपहत पुरुषके समीप अर्थात् जिसका चित्त राग करिकै ग्रस्त हैं अच्छे रूप आदि विषयके ग्रहणकी इच्छा युक्त है उसके समीप इच्छा अनुसार गमन न करना चाहिये यह अभिप्राय है क्यों कि उसके संगसे अपने चित्तकोभी रागग्रस्त वा बद्ध होजानेका भय है बंध जानेके भयसे इस प्रकारसे रागोपहतका संग न करना चाहिये जैसे वहेलिया अथवा अन्य मनुष्यसे बांधे जानेके भयसे शुकपक्षी इच्छासे गमन नहीं करता अथवा जैसे दानाके लालचमें शुक काम चारीहो (इच्छा अनुसार जाकर) फँस जाता है ऐसा कामचारी इन्द्रिय विषयमें न होना चाहिये ॥ २५ ॥

गुणयोगाद्बद्धः शुकवत् ॥२६ ॥

गुणयोगसे शुकके समान बद्ध होता है ॥ २६ ॥

कामी विषयी पुरुषोंका संग न करना चाहिये क्यों कि उनहीके गुणोंके योगसे बद्ध होता है अर्थात् बंध जाता है यथा शुक पक्षी व्याधके गुण योग अर्थात् जाल रस्सीके योगसे बंध जाता है अथवा रूप गुणके योगसे रूपलोलुप पुरुषोंके बांधनेसे बंध जाता है ॥ २६ ॥

नभोगाद्रागशांतिर्मुनिवत् ॥ २७ ॥

मुनिके सदृश भोगसे रागकी शांति नहीं होती ॥ २७॥

विषयभोगसे यथा सौभरिमुनिके रागकी शांति नहीं हुई इसी प्रकारसे विषय भोगसे रागकी शांति नहीं होती. अर्थात् जो यह संकल्प करे कि अच्छेप्रकारसे भोग करिकै जब चित्त शांत हो जायगा तब छोंड देना होगा तौ विषय भोगसे चित्त कभी शांत नहीं होता इच्छा वनही रहती है केवल विवेक वैराग्यहीसे रागकी शांति होती है ॥ २७ ॥

दोषदर्शनादुभयोः ॥२८॥

दोनोंमें दोष देखने (विचारने) से ॥२८॥

दोनोंमें अर्थात् प्रकृति व प्रकृतिके कार्यमें परिणामी होना दुःखात्मक होना आदि दोष देखनेसे अर्थात् विचारनेसे विषयके रागकी शांति होती है यथा सौभरिमुनि जबतक भोगमें प्रवृत्त रहे तबतक रागकी शांति न हुई जब संग दोषका विचार किया तब वैराग्यसे रागका नाश हुवा॥२८॥

नमलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत् ॥ २९ ॥

अजके समान मलिन चित्तमें उपदेशका बीज नहीं जमता ॥ २९ ॥

उपदेश रूप जो ज्ञान वृक्षका बीज है उस्का अंकुर विषय प्रीतिसे जिस्का चित्त मलिन है उस्के चित्तमें नहीं जमता जैसे राजा अजको अपनी स्त्रीका शोकथा स्त्रीकी प्रीतिसे चित्त मलिन होनेके कारणसे वसिष्ठ ऐसे उपदेश करता राजाको उपदेश किया परन्तु राजाके मलिन चित्तमे उपदेशके बीजका अंकुर उत्पन्न न हुवा ॥ २९ ॥

नाभासमात्रमपिमलिनदर्पणवत् ॥३० ॥

मलिन दर्पणके समान आभास मात्रभी नहीं होता ॥३०॥

जैसे मलिन दर्पणमें किंचित् आभास अर्थात् प्रतिबिंबकी छाया मात्र भी नहीं देख पडती ऐसेही मलिन चित्तमें ज्ञानका आभास नहीं होता ३०

नतज्जस्यापितद्रूपतापंकजवत् ॥३१ ॥

उससे उत्पन्नकाभी कमलके सदृश वहीरूप होना सिद्ध नहीं होता ॥ ३१ ॥

उससे अर्थात् उपदेशसे उत्पन्नकाभी वही रूप होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् जैसा उत्तम उपदेश है वैसाही उत्तम ज्ञान मलिन चित्तमेंभी

होवै यह नहीं होता जो कुछ हुवाभी तो वह उपदेशके अनुसार नहीं होता जैसा उत्तम कमलका बीज जो निकृष्ट पंकमें पडजाता है तो उससे यद्यपि कमल उत्पन्न होता है परंतु पंक (कीचड) के दोषसे बीजके समान उत्तम नहीं होता ॥ ३१ ॥

नभूतियोगेऽपिकृतकृत्यतोपास्य सिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत् ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्य योगमेंभी कृतार्थता नहीं है उपास्योंकी सिद्धिकी तुल्य उपास्योंकी सिद्धिकी तुल्य ॥ ३२ ॥

ऐश्वर्य योगमें (ऐश्वर्य होनेमें) भी कृतार्थता नहीं है अर्थात् क्षय होनेके भयका दुःख होनेसे कृतार्थता नहीं है जैसे उपास्य जो ब्रह्मा आदि हैं उनको सिद्धि प्राप्त होनेमें भी कृतार्थता नहीं है क्योंकि उनका भी योगनिद्रा आदिमें योगाभ्यास करना सुना जाता है अर्थात् ऐश्वर्य व सिद्धिको प्राप्त उपास्य ब्रह्मा आदि भी सर्वथा मुक्त नहीं है वह भी योग साधक हैं इस्से ऐश्वर्य योगमें कृतार्थता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीप्यारेलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि प्रभुदयालुशास्त्रविन्निर्मिते सांख्यदर्शनेदेशभाषाकृतभाष्ये चतुर्थोऽध्यायःसमाप्तः॥ ४ ॥

पंचम अध्यायमें इस शास्त्रमें अन्यके पूर्वपक्षोंका समाधान करनेके अर्थ व अपने मत सिद्ध करनेमें हेतु व प्रमाणोंको सूत्रकार वर्णन करते हैं-

मंगलाचरणंशिष्टाचारात्फलदर्शनात् श्रुतितश्चेति ॥ १ ॥

मंगलाचरण किया गया है शिष्टाचारसे फल दर्शनसे और श्रुतिप्रमाणसे ॥ १ ॥

इस शंका निवारणके अर्थके प्रथम सूत्रके आदिमें अथ शब्द व्यर्थ कहाहै इस सूत्रमें यह कहा है कि अथ शब्दसे मंगलाचरण किया गया है यह मंगलाचरण शिष्टाचारसे (अच्छे पुरुषोंके करनेसे) फल दर्शनसे) व श्रुति प्रमाणसे अर्थात् श्रुतिमें कथित होनेसे आदिमें कियाजाना यथार्थ व उचित है ॥ १९ ॥

नेश्वराधिष्ठितेफलनिष्पत्तिःकर्मणा तत्सिद्धेः ॥ २ ॥

ईश्वरके अधिष्ठित होने में फलकी सिद्धि नहींहै कर्मसे उस्की (फलकी) सिद्धि होनेसे ॥ २ ॥

पूर्वही ईश्वरकी सिद्धि न होनेसे इत्यादि सूत्रोंसे ईश्वरके इच्छापूर्वक सृष्टि कर्ता होनेके प्रमाणका प्रतिषेध किया है परन्तु जे ईश्वरके प्रतिपादनमें यह कहते हैं कि, कोई कर्म फलका देनेवाला ईश्वर सिद्ध होता है इत्यादि पूर्वपक्ष स्थापनकरनेवालोंके हेतुओंके प्रतिषेधकरनेके अभिप्रायसे प्रथम ईश्वरके फल दाता होनेके प्रतिषेधमें इस सूत्रमें यह कहा है कि ईश्वर अधिष्ठित कारणमें कर्म फल रूप परिणामकी सिद्धिमानना युक्त नहीं है क्योंकि आवश्यक कर्महीसे फलकी सिद्धि होना संभव है अर्थात् आवश्यक कर्म विशेष व प्रकृतिके संयोग विशेषसे स्वाभाविक फल विशेष होताहै यह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे सिद्ध है इससे आवश्यक कर्महीसे फलकी सिद्धि होनेसे ईश्वरसे फल होनेकी सिद्धि नहीं है ॥ २ ॥

स्वोपकारादधिष्ठानंलोकवत् ॥ ३ ॥

अपने उपकारसे लोकके समान अधिष्ठान होवै ॥ ३ ॥

ईश्वरको फलदाता न मानकर और ईश्वरका सृष्टि करनेमें कुछ प्रयोजन न माननेसे जो ईश्वरके सृष्टि कर्ता होनेका प्रतिषेध किया गया है उस प्रतिषेधका यथार्थ होना अंगीकार न करके ऐसा माना जावै कि ईश्वरके अधिष्ठाता होनेमें ईश्वरकाभी कुछ अपना उपकार होना माना

जावै और अपने उपकारसे अधिष्ठान होवै जैसे लोकमें राजा आदि अपने भृत्य आदि व राज्य आदि कार्यमें अपने उपकार समेत अधिष्ठाता होते हैं ऐसा माननेमें क्या दोषहै इसका उत्तर आगे सूत्रमें कहते हैं॥ ३

लौकिकेश्वरवदितरथा ॥ ४ ॥

अन्यथा लोकवाले ईश्वरोंके सदृश होगा ॥ ४ ॥

अन्य प्रकारसे अर्थात् जैसा ईश्वरका लक्षण पूर्ण काम आदिहै उसके विरुद्ध जो ईश्वरका भी उपकार होना अंगीकार किया जावै तौ लोकवाले ईश्वरोंके सदृश वह भी संसारी अपूर्ण काम होगा ॥ ४ ॥

पारिभाषिकोवा ॥ ५ ॥

अथवा पारिभाषिक होगा ॥ ५ ॥

पारिभाषिक होगा अर्थात् उसमें परिभाषा मात्र होगी भाव इसका यह है कि संसारी सृष्टि आदिमें उत्पन्न पुरुषको जो ईश्वर मानोगे तो संसारी सृष्टिके आदिमें उत्पन्न पुरुषमें ईश्वर शब्दका कथनमात्र होगा जैसा हम मानते हैं वैसाही तुह्मारा मानना हो जायगा अर्थात् योग व तप विशेषसे प्रकृतिमें लीन हुये जो सृष्टिकी आदिमें समर्थ ऐश्वर्यको प्राप्त पुरुष उत्पन्न होते हैं उनको हम सिद्ध कहते हैं तुम ईश्वर कहते हो यह समझा जायगा अथवाशब्द कहनेका अभिप्राय यह है कि सृष्टि करनेमें ईश्वरका उपकार वा प्रयोजन माननेमें लौकिक ईश्वरके तुल्य ईश्वरके आप्त काम होनेमें प्रतिषेध होता है इससे दोमें एक मानना चाहिये अर्थात् चाहै यह मानैं कि रागसे अपने उपकारके अर्थ लौकिक ईश्वरके तुल्य सृष्टि कर्ता नहीं है अथवा है तो परिभाषिक नाममात्र है ॥ ५ ॥ शंका–विना रागही सृष्टि कर्ता माना जावै उत्तर ॥

नरागादृतेतत्सिद्धिःप्रतिनियत-कारणत्वात् ॥ ६ ॥

विना राग उस्की सिद्धि नहीं है प्रतिनियत कारण होनेसे ॥ ६ ॥

विना राग उस्की अर्थात् सृष्टिकी सिद्धि नहीं हो सकती किस हेतुसे नहीं हो सकती प्रतिनियत कारण होनेसे प्रतिनियत कारण वह है कि जो कार्यकी उत्पत्तिका विशेष कारण हो विना उस्के वह कार्य न होसके विना रागके प्रवृत्ति नहीं होती इस्से राग प्रवृत्तिका प्रतिनियत कारण है प्रवृत्ति विना सृष्टिकार्य होना संभव नहीं है इससे रागके प्रतिनियत कारण होनेसे विना रागके सृष्टिकी सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ६ ॥

तद्योगेऽपिननित्यमुक्तः ॥ ७ ॥

उस्के योगमें भी ईश्वर माननेमें नित्य मुक्त न होगा ॥ ७ ॥

उस्के अर्थात् रागके योग होनेमें भी ईश्वर होना अंगीकार करनेमें ईश्वर नित्य मुक्त न होगा नित्य मुक्त न होनेसे तुह्मारे सिद्धांतकी हानि होगी ॥ ७ ॥ शंका—तीनों गुणोंकी सम अवस्थारूप जड प्रकृतिमें नित्य इच्छा आदिका होना संभव नहीं है इससे दोप्रकारसे इच्छा आदिका होना मानने योग्य है एक यह कि प्रधानकी शक्तिके योगसे साक्षात् चेतन सम्बंधसे इच्छा आदि धर्म होते हैं अथवा अयस्कान्त मणिके तुल्य सन्निधि सत्ता मात्रसे प्रेरक होनेसे होते हैं इन दोमेंसे प्रथम प्रधान शक्तिके योग होनेका उत्तर वर्णन करते हैं॥ ७ ॥

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥ ८ ॥

प्रधानके शक्तिके योगसे माना जाय तौ संगकी प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

प्रधानशक्ति, इच्छा आदिका पुरुषमें योग होनेसे सृष्टि करना पुरुषमें माना जाय तौ पुरुषमें भी संग होनेका धर्म प्राप्त होगा व श्रुतिमें पुरुषको असंग वर्णन किया है श्रुतिविरुद्ध होगा इस्से प्रधान शक्तिका योग

अंगीकार करना युक्त नहीं है पुरुषके असंग वर्णन करनेमें श्रुति यह है "सयत्तत्र पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसङ्गोह्ययं पुरुषः" अर्थ जिससे कि वह उक्त ज्ञानवान् विवेकको प्राप्त तिसमे विवेक प्राप्त होनेमें आत्मज्ञान होनेकी दशामें पुरुषको (अपने आत्माको) प्रकृतिसे भिन्न जनता है इससे पुरुष असंग है ॥ ८ ॥

सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्यम् ॥ ९ ॥

सत्तामात्रसे चेतनका ऐश्वर्य माना जावै तौ सबका ऐश्वर्य सिद्ध है ॥ ९ ॥

जो अयस्कांतके तुल्य सन्निधि सत्ता मात्रसे चेतनका ऐश्वर्य होना माना जायगा तो सब भोक्ता पुरुषोंका विशेषण रहित ऐश्वर्य जैसा हम कहते हैं उसी प्रकारसे होना सिद्ध होता है क्योंकि अखिल (सम्पूर्ण) भोक्ताओंके संयोगहीसे प्रधान करके महत्तत्व आदिकी उत्पत्ति होनेका अनुमान होता है अन्यथा नहीं होता सन्निधि सत्तामात्रसे ईश्वरका होना यद्यपि सिद्ध होता है परन्तु सन्निधि सत्तामात्रसे ऐश्वर्य होना व प्रकृतिका स्वामी व भोक्ता होना सब पुरुषोंका सिद्ध होता है सब पुरुषोंका व ईश्वरका एकही सदृश सन्निधि सत्ता मात्रसे चेतनैश्वर्य सिद्ध होनेसे ईश्वरकी विशेषता नहीं रहती व ईश्वर होनेमें भी जो हमारा सि-द्धांत है वही सिद्ध होता है अपनी इच्छासे सृष्टिका उत्पन्न करनेवाला सर्व समर्थ होना आदि जैसा तुम मानते हो उस प्रकारसे सिद्ध नहीं होता इससे तुम्हारे सिद्धांतकी हानी है ॥ ९ ॥

प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः ॥ १० ॥

प्रमाणके अभावसे उसकी सिद्धि नहीं है ॥ १० ॥

जो यह कहाजावे कि ईश्वरके सृष्टि कर्ता होनेके प्रमाण विरुद्ध तर्क करना असत तर्क है कुतर्क करिके ईश्वरका प्रतिषेध करना युक्त नहीं है इस शंका निवारणके लिये यह कहा है कि प्रमाणके अभावसे उस्की

अर्थात् ईश्वरके सृष्टि कर्ता होनेकी सिद्धि नहीं है अभिप्राय यह है कि जो किसी प्रमाणसे ईश्वरका सृष्टिकर्त्ता होना सिद्ध होता तौ उसका प्रतिषेध करना असत होता परन्तु प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता इससे असत् नहीं है क्योंकि प्रत्यक्षसे ईश्वरका सिद्ध न होना साधारण विदित है अनुमान शब्दसे सिद्ध न होनेके हेतु आगे सूत्रोंमें वर्णन करते हैं ॥१०॥

सम्बंधाभावान्नानुमानम् ॥ ११ ॥

संम्बधके अभावसे अनुमान नहीं होसकता ॥ ११ ॥

सम्बंध शब्दका अर्थ यहाँ व्याप्तिका है सम्बंधके अभावसे अर्थात् व्याप्तिकी सिद्धि न होनेसे ईश्वरका अनुमान नहीं हो सकता क्योंकि सम्बंध (व्याप्ति)का ज्ञान पूर्व प्रत्यक्षसे होता है ईश्वरमें पूर्व प्रत्यक्षका कुछ सम्बंध नहीं है इससे अनुमानसे ईश्वरका प्रमाण नहीं होसकता अथवा प्रयोजन व प्रवृत्तिमें सम्बंध होनेसे विना प्रयोजन कर्ममें प्रवृत्ति नहीं होती ईश्वरमें प्रयोजन होना सिद्ध न होनेसे प्रयोजनके अभावसे ईश्वरके सृष्टि कर्ता होनेका अनुमान नहीं होसकता ॥ ११ ॥

श्रुतिरपिप्रधानकार्यत्वस्य ॥ १२ ॥

श्रुतिभी प्रधानकार्य होनेकी है ॥ १२ ॥

श्रुतिभी प्रधानके कार्य होनेमें है इससे शब्दसे भी इश्वरका सृष्टिका कारण होना व जगत् ईश्वरका कार्य होना अर्थात् प्रकृतिकी सदृश ईश्वरका उपादान कारण होना सिद्ध नहीं होता जगत्के प्रधानके कार्य होनेके प्रमाणमें श्रुति यह है " अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः" अर्थ एका अजा (प्रकृति) लोहित शुक्ल कृष्ण रूपको अर्थात् रजः सत्वतमगुण रूपको अपने स्वरूपसे बहुत प्रजा जिसने उत्पन्न किया उसको एक अज पुरुष उसके साथ प्रीति करता हुवा शयन करता है अर्थात् भोग करता है व दूसरा अज (पुरुष)जो विरक्त है वह इस भो·

ग की हुई अजाको परित्याग करताहै और "तदैक्षत बहुस्यामि" इत्यादि अर्थ उसने ईक्षा किया कि मैं बहुत होऊं इत्यादि जो चेतनकी प्रतिपादक श्रुति हैं वह सृष्टिकी आदिमें महत्तत्व औपाधिक जो महापुरुष है उसको जो ज्ञान उत्पन्न हुवाहै उसके ज्ञानवर्णनमे हैं अथवा कूल गिरनेकी इच्छा करता है यह कहनेके समान प्रकृति विषयमें यह श्रुति गौणी है ऐसा मानना चाहिये जो ऐसा नहीं माना जावैगा तौ "साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च" अर्थ साक्षी चेतनके बल निर्गुण है इत्यादि श्रुतिसे परिणामी होना पुरुषमें संभव नहीं होता इससे प्रधानहीका कार्य जगत्है यह जो ईश्वरका प्रतिषेध है ऐश्वर्यमें वैराग्य होनेके अर्थ व विना ईश्वर ज्ञानकेभी मोक्ष प्राप्त होनेके योग्य है यह प्रतिपादनके अर्थ प्रौढिवादमात्रहै यह जानना चाहिये अन्यथा औपाधिकोंके नित्य ज्ञान इच्छा आदि महत्तत्वके परिणाम रूपोंके अंगीकार करनेमें औपाधिकोंका कूटस्थ होना संभव होगा औपाधिकोंका नित्यकूटस्थ होना सिद्ध न होनेसे प्रमाणके योग्य नही है इत्यादि प्रकृतिके जगत्कर्ता होनेका प्रतिषेध ब्रह्ममीमांसामें अर्थात् वेदान्त सूत्रोंमें देखना चाहिये॥१२॥ अब अविद्यासे बंध नहीं होता यह जो प्रथम अध्यायमें सिद्धांत वर्णन किया है फिर यहाँ विस्तारसे वर्णन करते हैं ॥

नाविद्याशक्तियोगोनिःसंगस्य ॥ १३ ॥

निःसंगका अविद्या शक्तिके साथ योग नहीं है ॥ १३ ॥

जो यह शंका करैकि प्रधान नहीं है अविद्या शक्ति चेतनमें रहती है उसीसे बंधन होता है उसके नाशसे मोक्ष होता है इसके उत्तरमें यह सूत्र है कि निःसंग (संगरहित) पुरुषका अविद्याशक्तिके साथ साक्षात् योग होना संभव नही होता क्योंकि प्रकृति वा प्रकृतिकार्य रूप अपनेको अज्ञानसे पुरुषका मानना अविद्या है यह अविद्या विकार विशेष अधिकार हेतु संयोगरूप संगके विना संभव नहीं होता ॥१३॥शंका—अविद्या वशहीसे अविद्याका योग कहना चाहिये और अविद्याके पारमा-

र्थिक न होनेसे अविद्याके साथ संग नहीं है ऐसा मानना चाहिए उत्तर–

तद्योगेतत्सिद्धावन्योन्याश्रयत्वम् ॥ १४ ॥

उस्के योगमें उस्की सिद्धि होनेमें परस्पर आश्रय होना है ॥ १४ ॥

उस्के योगमें उस्की सिद्धि होनेमें अर्थात् अविद्याके योगसे अविद्या सिद्ध होनेमें परस्पर एक दुसरेके आश्रय होनाहै और इसप्रकारसे परस्पर आश्रय होना मानते जानेमें अनवस्था दोषकी प्राप्ति है ॥ १४ ॥ शंका–बीजांकुरके तुल्य होनेमें अनवस्था दोष नही है अर्थात् जैसे यह नहीं जाना जाता है कि बीज पहिले हुआ अथवा अंकुर इसी प्रकारसे अविद्या अविद्याके आश्रय होनेमें कहना चाहिए. उत्तर–

नबीजांकुरवत्सादिसंसारश्रुतेः॥१५॥

संसारके सादि होनेके प्रमाणमें श्रुति होनेसे बीज व अंकुरके तुल्य नहीं है ॥ १५ ॥

संसारके आदि संयुक्त होनेमें श्रुति प्रमाण होनेसे बीज व अंकुरके तुल्य नहीं है श्रुति यह है " विज्ञानघन एवैभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायतान्येवानु विनश्यति " अर्थ विज्ञान घनही इनभूतोंसे उठाकर अर्थात् उत्पन्न करिकै उनहीको फिर नाश करता है इत्यादि ॥ १५ ॥

विद्यातोऽन्यत्वेब्रह्मबाधप्रसङ्गः ॥ १६ ॥

विद्यासे अन्य होनेमें ब्रह्मके नाश होनेका प्रसंग है ॥ १६ ॥

जो विद्यासे अन्य होनाही अविद्या शब्दका अर्थ माना जावै तो ब्रह्मके ज्ञान नाश होनेसे ब्रह्म (आत्मा)के भी नाश होनेका प्रसंग है क्योंकि ब्रह्मज्ञानरूप विद्या (ज्ञान) भिन्न अर्थात् विना विद्या नहीं रह सकता ॥ १६ ॥

अबाधेनैष्फल्यम् ॥१७॥

बाधा न होनेमें निष्फल होना है ॥ १७ ॥

जो अविद्या भी रही और विद्यामय जो ब्रह्म है उसमें विद्यासे अविद्याको बाधा न हुई अर्थात् अविद्याका नाश न हुवा तौ विद्याका होनाही निष्फल है अन्यपुरुषमें भी विद्या होनेसे कुछ फल न मानना चाहिए और विद्याका होना व माननाही वृथा है ॥ १७ ॥

विद्याबाध्यत्वे जगतोप्येवम्॥ १८ ॥

विद्यासे बाधाके योग्य होनेमें जगत्का भी इसी प्रकारसे ॥ १८ ॥

जो विद्यासे बाधा (नाश)के योग्य है उसको अविद्यासे नाश माना जावै तौ जगत्का प्रकृति महत्तत्व आदि अखिलप्रपंच जो है सबका अविद्या होना सिद्ध होगा क्यों कि विद्यासे यह सब बाधा (नाश) के योग्य है और जो अविद्याही प्रकृति महत्तत्व आदि सब हैं तौ ज्ञानसे अविद्याके नाश होनेमें चक्षु आदिसे स्थूल जगत्का प्रत्यक्ष न होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता इससे विद्यासे बाधा (नाश) के योग्य अविद्याका लक्षण नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

तद्रूपत्वे सादित्वम् ॥ १९ ॥

उसीके रूप होनेमें सादि होना सिद्ध होगा ॥ १९ ॥

उसीके रूप होनेमें अर्थात् विद्यासे बाधाके योग्य पदार्थही अविद्या होनेमें अविद्याका अनादि होना सिद्ध नही होगा अर्थात् जो किसी प्रकारसे विद्यासे नाशके योग्य पदार्थही अविद्या मान ली जावै तथापि पुरुषमें अविद्याका सादि (आदि सहित) होना सिद्ध होगा अनादि होना सिद्ध न होगा क्योंकि विज्ञानघन एव इत्यादि अर्थविज्ञानरूपही है इत्यादि श्रुतियोंसे प्रलय आदिमें पुरुषका ज्ञान स्वरूप होना सिद्ध होता इस्से

अविद्या संयोग पुरुषमें अनादि पारमार्थिक सिद्ध नहीं होता अविद्याके अनादि माननेवालोंका मत मिथ्या है अविद्या बुद्धिका धर्म है पुरुषका धर्म नहीं है यह श्रुतिप्रमाणसे पुरुषके विज्ञानरूप होनेसे सिद्ध है ॥१९॥

न धर्मापलापःप्रकृतिकार्यवैचित्र्यात् ॥ २० ॥

प्रकृतिके कार्योंमें विचित्रता होनेसे धर्मका अपलाप (मिथ्या कथन) संभव नहीं होता ॥ २० ॥

प्रत्यक्ष न होनेसे धर्मकर्मका अपलाप संभव नहीं होता अर्थात् यह जो कहा गया है कि कर्म निमित्तसे प्रधानकी प्रवृत्ति होती है इसपर जो यह शंका की जावैं कि इस कर्म वा धर्मका यह फल हुवा अथवा इस धर्मसे प्रकृतिकी प्रवृत्ति होती है यह प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं होता प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे ऐसा मानना मिथ्या है इस पूर्वपक्षके समाधानके अर्थ यह कहा है कि प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे धर्मका अपलाप नहीं है अनुमानसे यह सिद्ध है कि नानाप्रकारके कर्म अनुसार प्रकृतिके विचित्र कार्यरूप सृष्टि होती है अन्यथा प्रकृतिके विचित्रकार्य अनेकप्रकारके शरीर व भोग होनेका कोई हेतु सिद्ध नहीं होता ॥ २० ॥ अन्यभी प्रमाण वर्णन करते हैं ॥

श्रुतिलिंगादिभिस्तत्सिद्धिः ॥ २१ ॥

श्रुतिप्रमाण आदिसे उसकी सिद्धि है ॥ २१ ॥

श्रुतिप्रमाणसे धर्म आदिकी सिद्धि है श्रुति यह है "पुण्यो वै पुण्येन भवति पापः पापेन" अर्थ पुण्यसे उत्तम व पापसे निकृष्ट होता है धर्मके प्रत्यक्ष न होनेसे मूढ वाद करते हैं कि धर्मका मानना मिथ्या है परन्तु धर्म अनुमानसे वेदप्रमाणसे विद्यासे अर्थात् ज्ञान उदय होनेसे योगिओंको प्रत्यक्षसे सिद्ध होनेसे सिद्ध होता है जो यह संशय होकि प्रत्यक्ष नहीं है इस्से न मानना चाहिए इस संशयनिवारणके लिये आगे सूत्रमें उत्तर वर्णन करते हैं ॥ २१ ॥

न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात्॥ २२ ॥

अन्यप्रमाणोंके अवकाश होनेसे नियम नहीं है ॥ २२ ॥

प्रत्यक्षके अभावसे वस्तुके अभाव होनेका नियम नहीं है क्योंकि जो प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं होता वह अनुमान आदि अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध होता है अन्यप्रमाणोंके अवकाश होनेसे प्रत्यक्षहीसे सिद्ध होनेका नियम नही है इससे अनुमानआदि प्रमाणोंसे धर्म सिद्ध होनेसे सिद्ध व सत्य है ॥ २२ ॥ धर्मके तुल्य अब अधर्मकोभी सिद्ध करते हैं ॥

उभयत्राप्येवम् ॥ २३ ॥

दोनोंमेंभी इसी प्रकारसे ॥ २३ ॥

दोनोंमें इसी प्रकारसे कहनेका अभिप्राय यह है कि यथा धर्ममें अनुमान व शब्दप्रमाण हैं तथा अधर्ममें हैं दोनोंमें एकही प्रकारसे जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अर्थात् सिद्धिश्चेत्समानमुभयोः॥ २४ ॥

अर्थसे सिद्धि होवै तौ दोनोंका समान प्रमाण है॥ २४ ॥

वेदविहित जो कर्म हैं उनके विरुद्ध कहनेमें जो अर्थ प्राप्त होता है वह अधर्म है इस प्रकारसे अर्थात् जो धर्म नहीं है वह अधर्म है अर्थापत्तिसे अधर्मकी सिद्धि होती है अधर्मका प्रमाण नहीं है जो यह संशय हो तौ इसके निवृत्त होनेके अर्थ यह कहा है कि दोनोंका धर्म व अधर्मका समान प्रमाण है अर्थात् श्रुतिमें दोनोंका समान वर्णन है यथा विधिमें धर्मका वर्णन है तथा निषेधमें अधर्मका वर्णन है " परदारान्न गच्छेत् " अर्थ परस्त्रीमें गमन न करै इत्यादि श्रुति वाक्य हैं ॥ २४ ॥

अंतःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम् ॥ २५ ॥

धर्मआदिकोंका अंतःकरणधर्मत्व है ॥ २५ ॥

धर्मआदिका अंतःकरण धर्मत्व है अर्थात् धर्मआदि अंतःकरणके धर्म हैं अंतःकरण कार्य व कारणरूपसे होता है प्रकृति अंश विशेष जो अंतःकरण है उसमें धर्म अधर्म संस्कार आदिक प्रलयमें रहते हैं ॥ २५ ॥ शंका धर्मआदि अंतःकरणके धर्म होवैं परन्तु प्रकृतिके कार्योंके विचित्र होनेसे व श्रुतिप्रमाणसे धर्मआदिकी सिद्धि जो कहा है यह अयुक्त है क्योंकि त्रिगुणात्मक प्रकृति व उस्के कार्योंकी श्रुतिहीसे बाधा होती है श्रुति यह है " साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च " अर्थ साक्षी ज्ञानरूप केवल निर्गुण है तथा " अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगंधवच्च " अर्थ शब्दरहित स्पर्शरहित रूपरहित नाशरहित रसरहित नित्यगंधरहित है इत्यादि वाक्योंसे प्रकृति गुणके नाश होने व न रहनेका प्रमाण होता है उत्तर–

गुणादीनां च नात्यन्तबाधः ॥ २६ ॥

गुणआदिका अत्यन्त नाश नहीं है ॥ २६ ॥

गुणआदिका अर्थात् सत्वआदिका व उनके धर्म सुख आदिका व उनके कार्य महत्तत्व आदिका स्वरूपसे नाश नहीं है संसर्ग न रहनेसे चेतनमें गुण आदिका नाश है यथा लोहेके उष्ण होनेकी बाधा होती है अर्थात् लोहेके उष्ण होनेका नाश होता है ॥ २६ ॥ शंका स्वप्न मनोरथके तुल्य मिथ्या माननेमें कैसे स्वरूपसे नाश होना यथार्थ नहीं है उत्तर–

पंचावयवयोगात् सुखादिसंवित्तिः ॥ २७ ॥

पंच अवयवोंके योगसे सुख आदिकी उपलब्धि अथवा सिद्धि होती है ॥ २७ ॥

न्यायके पांच अवयव हैं प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, व निगमन इन पांच अवयवोंके योगसे अर्थात् मेलसे सुखआदि अप्रत्यक्ष पदार्थोंकी अनुमानद्वारा सिद्धि होती है यथा सुख सत् है यह प्रतिज्ञा है किस हेतुसे सत् है अर्थक्रियाकारी होनेसे यह हेतु है जो जो अर्थक्रि-

याकारी (प्रयोजन सिद्धिरूप क्रिया करनेवाला) होता है वह सत् होता है जैसे चेतन पुरुष यह उदाहरण है सुख पुलकादि रूप अर्थ क्रियाकारी है यह उपनय है तिससे सुख सत् है यह निगमन है इस प्रकारसे पांच अवयवोंके योगसे अनुमानद्वारा गुणआदि अप्रत्यक्ष पदार्थोंका सर्वथा नाश होना सिद्ध नहीं होता कारणरूपसे रहना सिद्ध होता है ॥ २७ ॥ अब नास्तिक जो प्रत्यक्षमात्र प्रमाण मानते हैं अन्यप्रमाणको व्याप्तिकी सिद्धि न मानकर नही मानते उनकी यह शंका है—

न सकृद्ग्रहणात्सम्बन्धसिद्धिः ॥ २८ ॥

एकवार सहचारके ग्रहणसे सम्बंधकी सिद्धि नहीं होती ॥ २८ ॥

एकवारके सहचारके ग्रहणसे सम्बंध (व्याप्ति) की सिद्धि नहीं होती वारम्वारकी प्राप्ति नहीं होती क्योंकि धूम व अग्निको कहीं साथ होते देखकर सदा साथही होना नहीं मान सक्के विना धूमभी अग्नि होता है नहीं कहीं हाथी व अग्नि एक जगह देखकर फिर कभी हाथी देखकर अग्निका होना अनुमान करना भी मानने योग्य होगा इससे व्याप्तिग्रहणके असंभव होनेसे अनुमानसे अर्थकी सिद्धि नहीं है ॥ २८ ॥ अब इस अप्रत्यक्षपदार्थमें व्याप्तिग्रहण न होनेकी शंका निवारण व व्याप्तिसे अनुमानद्वारा अब प्रत्यक्ष पदार्थोंके सिद्ध करनेके अर्थ सूत्रकार प्रथम व्याप्तिका लक्षण वर्णन करते हैं—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ॥ २९ ॥

नियतधर्मसहित होना दोनोंका अथवा एकका व्याप्ति है ॥ २९ ॥

नियतधर्म सहित होना अर्थात् धर्मीके धर्मका उस्के साथही रहना सहचार है दोनोंका अर्थात् साध्यसाधनका अथवा एक साधनमात्रका जो नियत धर्म अर्थात् व्यभिचाररहित सहचार है वह व्याप्ति है दोनोंका यह सम व्याप्तिपक्षमें कहाहै और नियम तर्कके साथ जो अनुकूल हो वह ग्रहणके योग्य है नियत धर्म सहित होना व्याप्ति होनेसे व्याप्तिग्रह (व्याप्तिग्रहण) असंभव नहीं है यह भाव है ॥ २९ ॥

न तत्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः ॥ ३० ॥

वस्तुकी कल्पनाका प्रसंग होनेसे तत्वान्तर (भिन्नतत्व) नहीं है ॥३०॥

व्याप्तिका आश्रय जो वस्तु है उस्कीभी कल्पना होनेके प्रसंगसे नियत धर्म सहित होनेसे भिन्न कोई पदार्थ व्याप्ति सिद्ध नही होती अर्थात् जो वस्तु सिद्ध है उसीकी व्याप्ति होनेमात्रकी कल्पना की जाती है यह हमारा (ग्रंथकारका) मत है अब अन्यआचार्योंका मत वर्णन करते हैं ॥ ३० ॥

निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ॥ ३१ ॥

---

१ एक साधनमात्रका दृष्टान्त कार्यद्रव्यमें समझना चाहिये क्योंकि साध्यकारणके साथ साधनकार्यका सम्बंध अवश्य होताहै क्योंकि कार्य विना कारणके नहीं होता वा नहीं रहता है व कारण विना कार्यके रहताहै व होता है यथा धूम कार्य विना अग्निके नही होता व अग्नि कारण विना धूमके रहताहै व चकमक पत्थर आदिसे विना धूमके प्रकट होताहै तथा विना कार्यके कारणका होना व विना कारणके कार्यका न होना पृथिवी घट कनककुण्डल आदि दृष्टान्तोंसे समझलना चाहिये कार्य विना कारण न होनेसे कारण साध्यमें कार्यसाधन मात्रका सहचार है दोनोंका सहचार (साथ रहना) पृथिवी गंध आदिमें जानना चाहिये क्योंकि विना पृथिवी गंध नही होता व विना गंध पृथिवी नही होती इत्यादि ।

अपनी शक्तिसे उत्पन्न व्याप्ति है कोई आचार्य यह मानते हैं ॥ ३१ ॥

कोई आचार्य यह कहते हैं कि व्याप्यकी निजशक्तिसे उत्पन्न शक्ति विशेष रूप तत्वान्तर व्याप्ति है परन्तु निजशक्तिमात्र जबतक द्रव्यमें स्थित है व्याप्ति नहीं है और उत्पन्न हुएका द्रव्यसे वियोग होजाने व दूरदेशमें प्राप्त होजानेपरभी व्याप्तिभाव नहीं रहता यथा देशान्तरमें प्राप्त धूमकी अग्निसे व्याप्य न होनेसे व देशान्तरमें गमनसे वह शक्ति नष्ट हो जाती है इससे यह लक्षण यथार्थ नहीं है हम अपने लक्षणमें नियत धर्मका साथ होना कहा है इससे हमारे लक्षणके अनुसार उत्पत्ति कालावच्छिन्नता सहित धूम विशेषणके योग्य है अर्थात् जिसकालमें धूम अग्निसे उत्पन्न हो रहाहै अग्नि सम्बंध रहित नहीं हुआ उस काल परिमाण युक्तही धूम लक्षणमें घटित होता है इससे दोषकी प्राप्ति नहीं है ॥ ३१

आध्येयशक्तियोगइतिपंचशिखः॥ ३२ ॥

आध्येयशक्तिका योग व्याप्ति है यह पंचशिख आचार्य मानतेहैं ॥३२ ॥

प्रकृतिआदिका बुद्धिआदिमें व्यापक होने व बुद्धि आदिके व्याप्य होनेके व्यवहारसे प्रकृतिआदिकी आधारताशक्ति व्यापकता व बुद्धिआदिकी आधेयता शक्ति व्याप्यता है आधेयशक्ति (व्याप्य होनेके धर्म) का योग अर्थात् आधेय शक्तिमान् होना व्याप्ति है तथा आधार अग्निमें आधेय धूम होनेकी शक्तिका योग व्याप्ति है यह पंचशिख आचार्यका मत है ॥ ३२ ॥ शंका व्याप्य वस्तुकी स्वरूपशक्तिही व्याप्ति है यह मानना चाहिए आधेयशक्तिके कल्पना करनेका क्या प्रयोजन है उत्तर–

न स्वरूपशक्तिर्नियमः पुनर्वादप्रसक्तेः॥ ३३॥

पुनर्वाद (पुनरुक्ति) के प्रसंगसे स्वरूप-शक्ति नियम (व्याप्ति) नहीं है ॥ ३३ ॥

यथा घट कलश है यह कहनेके तुल्य स्वरूपशक्ति कहनेमें व्याप्य व व्याप्यके स्वरूपमें अर्थभेद ज्ञात न होनेसे पुनर्वाद होनेका प्रसंग होता इससे स्वरूपशब्द ग्रहण न करके व्याप्तमें व्याप्य धर्मता उपपादन (प्रतिपादन) के अर्थ शक्तिपदको ग्रहण किया है ॥ ३३ ॥

विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः ॥ ३४ ॥

विशेषणके अनर्थक होनेके प्रसंगसे ॥ ३४ ॥

व्याप्यका व्याप्यस्वरूप विशेषण कहना पुनर्वाद होनेसे अनर्थक है अनर्थक होनेके प्रसंगसे स्वरूप शब्दको ग्रहण नहीं किया ॥ ३४ ॥ अब अन्य दूषण कहते हैं

पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥

पल्लवआदिमें सिद्ध न होनेसे ॥ ३५ ॥

पल्लव आदि वृक्ष आदिसे व्याप्य हैं अर्थात् वृक्ष आदि व्यापक व पल्लव आदि व्याप्य हैं पल्लव आदि व्याप्यमें स्वरूपशक्तिमात्र कहना व्याप्तिका लक्षण संभव नहीं होता क्योंकि पल्लव छिन्न होजाने अर्थात् कटजानेपरभी पल्लवोंके स्वरूपकी शक्ति वृक्षमें रहनेसे व्याप्यताकी सिद्धि होगी और आधेयशक्ति पल्लवोंके कटनेके समयमें नष्ट होगी इससे कटजानेपर व्याप्तिका अभाव है ॥ ३५॥ शंका पंचशिखनें व्याप्यकी शक्तिसे उत्पन्न शक्तिविशेषरूप व्याप्ति है यह क्यों नहीं कहा ऐसा नहीं कहा तो धूमके अग्निके आधेय होनेके अभावसे अग्निका व्यापक व धूमका अग्निसे व्याप्य होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् धूमकी व्याप्यता सिद्ध नहीं होती उत्तर–

आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ॥ ३६ ॥

आधेयशक्तिका व्याप्ति होना सिद्ध होनेमें समान न्याय (समान युक्ति होने) से निजशक्तिसे उत्पन्नभी व्याप्तिरूपसे सिद्ध है ॥ ३६ ॥

जैसे भावविशेष व युक्तिसे आधेयशक्तिका व्याप्ति होना सिद्ध होता है ऐसेही निजशक्तिसे उत्पन्नभी व्याप्ति होना सिद्ध होता है नानाविधके सहचाररूप व्याप्तियोंके होनेसे एक दूसरेके सदृश न होनेमें जैसे नाना अर्थ व शब्द होनेमें दोष नहीं है दोष न समझना चाहिए अपने मतमें भी नानाविधके सहचारही अनेकव्याप्ति होना जाननेके योग्य हैं अनुमानके हेतु होनेमात्रमें व्याप्तियोंकी सामान्यता समझना चाहिये यथा तृण, अरणि, मणि, कार्यरूप हैं परन्तु एक दूसरे परस्पर विजातीय होना सिद्ध होता है अर्थात् कार्यत्वरूप परजातिसे समान है व अपरजातिभेदसे भिन्न हैं इसी प्रकारसे अनुमान हेतु होनेमात्रसे सहचारोंकी समानता व प्रकार भेदसे वह अनेक व विजातीय हैं अनुमानप्रमाणके बाधक भ्रम दोष निवारणके अर्थ व व्याप्तिके निश्चित होनेके अर्थ यह व्याप्तिका वर्णन किया गया अब उक्त पंच अवयवरूप शब्दका ज्ञान जनक (उत्पन्न करनेवाला) होना सिद्ध करनेके प्रयोजनसे शब्द शक्तिका प्रतिपादन व शब्द प्रमाणमें विरुद्ध पक्षवालोंके दूषणोंका प्रतिषेध किया जाता है ॥ ३६ ॥

वाच्यवाचकभावः सम्बंधःशब्दार्थयोः ॥३७॥

वाच्यवाचकभाव शब्द व अर्थका सम्बंध है ॥ ३७ ॥

अर्थमें वाच्यता शक्ति व शब्दमें वाचकता शक्तिका भाव दोनों शब्द

व अर्थका सम्बंध है इस सम्बंधके ज्ञानसे शब्दसे अर्थका बोध होता है ॥ ३७ ॥ शक्तिग्राहकोंको वर्णन करते हैं ॥

त्रिभिस्सम्बंधसिद्धिः ॥ ३८ ॥

तीनसे संबंधकी सिद्धिहै ॥३८ ॥

आप्तोपदेश, वृद्धव्यवहार, प्रसिद्धपदसमानाधिकरण, इन तीनसे सम्बंध ग्रहण किया जाता है यह तीन सम्बंधके सिद्ध होनेके हेतु हैं॥ ३८

नकार्यनियमउभयथादर्शनात् ॥ ३९ ॥

दोनों प्रकारसे देखनेसे कार्यमें नियम नहीं है ॥ ३९ ॥

शक्तिग्रह कार्यहीमें होता है यह नियम नहीं है क्योंकि लोकमें कार्यके तुल्य अकार्यमेंभी वृद्धव्यवहारआदि देखनेमें आते हैं यथा गौ लावो इस कार्यपर वृद्धवाक्यसे गौ ले आनेका व्यवहार देखा जाताहै इसी प्रकारसे तेरे पुत्र उत्पन्न हुवा इत्यादि सिद्धिपदार्थ परवाक्यसे पुलकादि होनेका व्यवहार देखा जाता है इस प्रकारसे कार्य व अकार्य दोनोंमें शक्तिग्रह देखनेसे कार्यमात्रमें नियम नहीं है ॥ ३९ ॥ शंका लोकमें अर्थ व प्रत्यय आदिके देखनेसे सिद्ध पदार्थमेंभी शक्तिग्रह होवै परंतु वेदमें अकार्य बोधनके वृथा होनेसे कैसे अकार्यमें शक्तिग्रह होगा उत्तर–

लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः ॥ ४० ॥

लोकमें व्युत्पन्नको वेदार्थकी प्रतीति होती है ॥ ४० ॥

लोकमें जो पुरुष शब्दशक्तिमें व्युत्पन्न होता है उसीको लोकानुसार वेदके अर्थकी प्रतीति होती है लोकमें शब्दशक्ति भिन्न हो व वेदमें भिन्न हो ऐसा नहीं होता इससे लोकमें सिद्ध अर्थ पर शक्तिग्रह होना देखनेसे वेदमेंभी उस्की सिद्धि होती है ॥ ४० ॥

न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद्वेदस्यतदर्थस्यातीन्द्रियत्वात् ॥ ४१ ॥

आप्तोपदेश आदि तीनसे वेदमें शक्तिग्रहका होना वेदके अपौरुषेय होनेसे व वेदार्थके अतीन्द्रिय होनेसे संभव नहीं होता ॥ ४१ ॥

जो किसी पुरुषसे न कहा गया हो वह अपौरुषेय है वेद किसी पुरुषसे कथित सिद्ध न होनेसे अपौरुषेय है अपौरुषेय होनेसे आप्तोपदेशसे वेदार्थमें शक्तिग्रह होना संभव नहीं होता तथा वेदार्थके अतीन्द्रिय (अप्रत्यक्ष) होनेसे वेदार्थमें वृद्धव्यवहार व प्रसिद्धपद समानाधिकरण होनेका ग्रहण नहीं होसकता ॥ ४१ ॥ वेदार्थके अतीन्द्रिय होनेके प्रतिषेधमें प्रथम उत्तर वर्णन करते हैं ॥

न यज्ञादेःस्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्टयात् ॥ ४२ ॥

नहीं प्रकृष्टफल करनेवाले होनेसे यज्ञ आदिके स्वरूपहीसे धर्म होना विदित होता है ॥ ४२ ॥

जो वेदार्थका अतीन्द्रिय होना कहा है यह युक्त नहीं है क्योंकि देवता उद्देश्यक द्रव्यत्याग आदिरूप यज्ञदान आदिका स्वरूपहीसे धर्म होना वैशिष्टयसे अर्थात् प्रकृष्टफल करनेवाले होनेसे विदित होते हैं फलविशेष होने व इच्छा आदिरूप होनेसे यज्ञादिक अतीन्द्रिय नहीं हैं जो यह कहा जाय कि देवता आदि अतीन्द्रिय हैं तो अतीन्द्रियोंमें भी पदार्थ होनेके धर्मसे सामान्यरूपसे प्रतीति होनेका आगे वर्णन कियेजानेसे अतीन्द्रिय नहीं हैं ॥ ४२ ॥ अपौरुषेय होनेसे जो आप्त उपदेशका अभाव कहा है उसका उत्तर कहते हैं ॥

निजशक्तिर्व्युत्पत्त्याव्यवच्छिद्यते ॥ ४३ ॥

निजशक्ति व्युत्पत्तिद्वारा विभाग वा भेद सहित उपदेश की जाती है॥ ४३ ॥

अपौरुषेय होनेमेंभी वेदोंकी जो निज अर्थात् स्वाभाविकी अर्थोंमें शक्ति है वही परम्परासे आप्तपुरुषोंकरिके इस शब्दका यह अर्थ है ऐसी व्युत्पत्तिद्वारा अर्थान्तरसे पृथक् करिके जो अर्थ जिस शब्दमें नियत है उसीसे उपदेश की जाती है आधुनिकशब्दके समान कोई आपसे संकेत नहीं करता जिस्से पौरुषेय होनेकी अपेक्षा होवे ॥ ४३ ॥

योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ॥ ४४ ॥

योग्य व अयोग्योंमें प्रतीतिजनक (उत्पत्तिकर्ता) होनेसे उसकी सिद्धि है ॥ ४४ ॥

योग्य व अयोग्योंमें अर्थात् प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षपदार्थोंमें सामान्य धर्मसे साधारणसे पदोंका अर्थमें प्रतीतिजनक होना अनुभवसे सिद्ध होनेसे उस्की अर्थात् शक्तिग्रह (अर्थ ग्रहणशक्ति)की सिद्धि है परन्तु जो सामान्य नहीं है ऐसा विशेष अतीन्द्रिय अपूर्ववाक्य है उस्का ग्रहण इस पूर्ववर्णनमें न समुझना चाहिए शब्दगतविशेषका वर्णन किया जाता है ॥ ४४ ॥

न नित्यत्वं वेदानांकार्यत्वश्रुतेः ॥ ४५ ॥

कार्य होना श्रुतिप्रमाणसे सिद्ध होनेसे वेदोंकी नित्यता नहीं है ॥ ४५ ॥

"सतपोऽतप्यत तस्मात्तपस्तपनात्त्रयो वेदा अजायन्त" इत्यादि अर्थ उसने तप किया उस तप करनेसे तीनवेद उत्पन्न हुए इत्यादि श्रुतिसे वेदका कार्य होना नित्य न होना विदित होता है ॥ ४५ ॥

न पौरुषेयत्वंतत्कर्तुःपुरुषस्याभावात् ॥ ४६ ॥

उस्के कर्ता पुरुषके अभावसे पौरुषेय नहीं है ॥ ४६ ॥

बहुत मनुष्य यह मानते हैं कि वेदका कर्ता पुरुष ईश्वर है इस शास्त्रमें शास्त्रकार पुरुषको अकर्ता माना है इसीसे मुक्तरूप ईश्वरमें सृष्टि कर्तृत्वके सिद्ध होनेका प्रतिषेध किया है कर्तृत्वके अभावसे ईश्वर वेदका कर्ता नहीं होसकता व कर्ताभावसे ईश्वरका अभाव है इससे इस सूत्रमें कहा है कि उनके (वेदोंके) कर्ता पुरुष ईश्वरके अभावसे अर्थात् कर्तृत्वके अभावसे वेद पौरुषेय नही हैं अर्थात् ईश्वरकृत नहीं है किस हेतुसे कर्ता पुरुषका अभाव है वह हेतु आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ४६ ॥

मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात्॥ ४७ ॥

मुक्त व अमुक्त दोनोंके योग्य न होनेसे ॥ ४७ ॥

मुक्त वा अमुक्त दोनों होनेमें वेदके निर्माणमें योग्य नही हो सकता मुक्त होनेमें सर्वज्ञ होनेपरभी रागरहित होनेसे सहस्र शाखा वेदके निर्माणमें अयोग्य हैं मुक्त न होनेमें अज्ञान सर्वज्ञ न होनेसे अयोग्य है इस्से ईश्वरके वेद कर्ता न होनेसे वेद अपौरुषेय है ॥ ४७ ॥ जो ऐसा समुझा जावै कि अपौरुषेय होनेसे वेदानित्य स्वतःसिद्ध है तौ अपौरुषेय होनेसे नित्य होना सिद्ध नही होता इस्का दृष्टांत आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥

नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमङ्कुरादिवत् ॥ ४८ ॥

अपौरुषेय होनेसे अङ्कुरआदिके तुल्य नित्य होना सिद्ध नहीं होता ॥ ४८ ॥

यथा अंकुर आदि अपौरुषेय नित्य नहीं है तथा वेदभी नित्य नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥ शंका अंकुरके कार्यरूप होनेसे घटके सदृश पौरुषेय होनेका अनुमान किया जावै उत्तर—

तेषामपि तद्योगेदृष्टबाधादिप्रसक्तिः ॥ ४९ ॥

उनकाभी उसके साथ योग होनेमें दृष्टकी बाधा होनेका प्रसंग है ॥ ४९ ॥

उनका उक्त अंकुर आदिका इस्के साथ योग होनेमें अर्थात् पौरुषेय होनेके योगमें दृष्टकी बाधा होनेका प्रसंग है भाव इसका यह है कि जो पौरुषेय है वह शरीरजन्य (शरीरसे उत्पन्न होनेके योग्य) है यह व्याप्ति लोकमें दृष्ट है अर्थात् प्रत्यक्षसे सिद्ध है अंकुर आदिमें ऐसा होना दृष्ट नही है इस्से दृष्ट व्याप्तिकी बाधा होनेका प्रसंग होगा ॥ ४९ ॥

यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ॥ ५० ॥

जिस अदृष्टमें भी कृत होनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है वह पौरुषेय है ॥ ५० ॥

दृष्टके समान अदृष्टमें भी जिस वस्तुमें कर्ता करिके बुद्धिपूर्वक कृत होनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है वह पौरुषेय है अर्थात् यही पौरुषेय कहा जाता है अभिप्राय इस्का यह है कि यद्यपि नित्य ईश्वर जो वेदका कर्ता पुरुषमाना जाता है वह वेदका कर्ता युक्तिसे सिद्ध न हो व प्रत्यक्षसे सिद्ध न हो तथापि वेदमें कृतहोनेकी बुद्धि होनेसे वेदको आदि पुरुष वा ब्रह्मासे उक्त होनेसे पौरुषेय मानना चाहिये इस हेतुसे कि यथा दृष्टपदार्थ कोई मन्दिरको उत्तम रचना चित्रकारी संयुक्त देखने व उसमें भोग्यपदार्थ शय्या भोजन वस्त्र आदि पदार्थ देखनेसे कर्ताको करते व धरते हुये न देखने परभी चेतन कर्तासे बुद्धिपूर्वक कृत होनेकी बुद्धि होती है इसी प्रकारसे वेदमें धर्म अधर्म आदि उत्तम उपदेश विधि निषेध होनेसे किसी बुद्धिमान पुरुषसे बुद्धिपूर्वक कृत होनेके अनुमानसे पौरुषेय होनेका बोध होता है कोई इस सूत्रका अर्थ इस्के

विरुद्ध वर्णन करते हैं वेदको सर्वथा अपौरुषेय स्वतः सुषुप्तके श्वासके निकसनेके सदृश आदि पुरुषके श्वाससे उत्पन्न मानते हैं परन्तु यह सर्वथा अयुक्त व असंभव कथन है क्योंकि किसी प्रमाणसे विना चेतन ज्ञानवान् जड शब्दका आपसे वाक्यरचना करना व यथोचित तत्वार्थ प्रतिपादन करना संभव नहीं हो सकता ॥ ५० ॥

निजशक्त्यभिव्यक्तेःस्वतःप्रामाण्यम् ॥ ५१ ॥

निजशक्तिकी प्रकटतासे स्वतः प्रामाण्य है ॥ ५१ ॥

जो यह शंका होकि आप्तवाक्यमें आप्तके विश्वासमात्रसे जो पदार्थ अपनेको निश्चित नही होता व उसका प्रत्यक्ष नही होता उसका भी प्रामाण्य मान लिया जाता है ऐसाही वेदका प्रामाण्य है अपनेको यथार्थ होनेका निश्चय नही हो सकता इस शंका निवारणके अर्थ व यह सूचित करनेके अर्थकी आप्तके विश्वासहीसे वेदका प्रामाण्य नही है वेदकी शब्दशक्तिहीसे जो अर्थ प्रतीत है उससे स्वतः वेदोंका प्रामाण्य सिद्ध होता है सूत्रमें यह कहाहै कि निजशक्ति अर्थात् वेदोंके अपने शब्दशक्तिसे जो अर्थ सत्यताकी प्रतीति है उसकी प्रकटतासे अर्थात् मंत्र व आयुर्वेद आदिमें उसके प्रकट होनेसे सम्पूर्ण वेदोंका प्रामाण्य आपहीसे सिद्ध होताहै अभिप्राय यह है कि मंत्र व आयुर्वेदमें जैसा कथित है उस प्रकारसे करनेसे मंत्र व औषधका फल सिद्ध होनेसे वेदके शब्दार्थहीसे वेदोंका आपही सत्य होने व प्रमाण योग्य होनेका निश्चय होता है गुण आदिकोंका अत्यन्त नाश नही है यह जो प्रतिज्ञा है इस प्रतिज्ञामें सुख आदि सिद्ध करनेके लिये अनुमितिके उपयोगी पंच अवयवों व पंच अवयवोंके शब्दरूप होनेसे शब्दप्रमाणका वर्णन किया अब गुण आदिकोंको अन्ययुक्तिसे सिद्ध करनेमें अन्य हेतुको वर्णन करते हैं ॥ ५१ ॥

नासतःख्यानंनृशृंगवत् ॥ ५२ ॥

मनुष्यके सींगके समान असतका ज्ञान होना संभव नही होता ॥ ५२ ॥

ज्ञानमात्रसे व पंच अवयवद्वारा अनुमानसे जो सुख आदि सिद्ध होते हैं जिनका वर्णन किया गया है वह सत होनेहीसे ज्ञानसे सिद्ध होते हैं जो अत्यन्त असत् है उस्का ज्ञान होना संभव नही होता यथा असत् मनुष्यके सींगका ज्ञान नही होता प्रमाणसे सिद्ध होनेसे सुख आदि गुण सत् हैं ॥ ५२ ॥ अब पूर्वपक्ष यह है कि यद्यपि गुण आदिका सत् होना अंगीकार किया जाय तथापि गुण आदिकोंका अत्यन्त बाध नही है यह कहना मिथ्या है मिथ्या होनेका हेतु वर्णन करते हैं ॥

न सतोबाधदर्शनात् ॥ ५३ ॥

नाश देखनेसे सत नही है ॥ ५३ ॥

विनाशकालमें गुण आदिका नाश होना देखनेसे गुण आदि अत्यन्त सतभी नही हैं ॥ ५३ ॥ जो यह समझा जावै कि सत् व असतसे भिन्न जगत् माना जावै तौ जो कहीं सत् व कहीं असत् होनेका भ्रम होता है यह न होवे विलक्षण होनेसे सत् व असत् दोनों मानना चाहिए तो इस्का उत्तर यह है ॥

नानिर्वचनीयस्यतदभावात् ॥ ५४ ॥

अनिर्वचनीयका भान नहीं होता उस्के अभावसे ॥ ५४ ॥

उस्के अभावसे अर्थात् सत् असतसे भिन्न वस्तु होनेके अभावसे अर्थात् ऐसा पदार्थ जो प्रमाणसे सिद्ध नही हैं अप्रसिद्ध है ऐसे अनिर्वचनीयका भाव नही होता सत् असत्से भिन्न होना व वही सत् व वही असत् समकाल व अवस्थामें होना दोनों असंभव है इससे ऐसा मानना अयुक्त है ॥ ५४ ॥

नान्यथा ख्यातिःस्ववचोव्याघातात् ॥ ५५ ॥

अपने वचनके व्याघातसे अन्यथा ख्याति नहीं है॥ ५५॥

जो यह कहा जावै कि अन्यपदार्थ अन्य रूपसे भासित होता है तौ यह अपनेही वचनका व्याघात है कि शब्दसे अन्यथा कहता है व भाव उसका अन्यथा कहता है और अन्यमें अन्यस्वरूप होना भी मनुष्यके सींगकी तुल्य मिथ्या है इससे अन्य वस्तुका अन्यरूपसे भासित होना कहनाभी असंगतहै ॥ ५५ ॥ अब अत्यन्त बाध (नाश) न होनेमें अपना सिद्धांत वर्णन करते हैं-

सदसत्ख्यातिबाधाबाधात्॥५६॥

सत् असत् ख्याति (कथन) बाध व अबाध होनेसे॥ ५६ ॥

प्रतिपन्न धर्मीमें निषेधबुद्धि विषय होनेको बाध कहते हैं सत् व असत् कहना बाध व अबाधसे होता है सब वस्तुओं (पदार्थों)के नित्य होनेसे स्वरूपसे गुणोंका बाध नहीं है इससे सत हैं व संसर्गसे सब वस्तुओंका चैतन्यमें बाध है अर्थात् जब ज्ञानसे बाह्य होते हैं बुद्धिगत नहीं होते ज्ञान संसर्गरहित होते हैं तब नष्ट सदृश ज्ञात होते हैं इससे असत् है यथा पट आदिमें अरुणरूप आदि जबतक पटमें दृष्ट होते हैं सत् विदित होते हैं पटसे दूर हो जानेमें नष्ट समुझे जाते हैं परंतु स्वरूपसे उनका नाश सर्वथा नहीं होता इसी प्रकारसे अवस्था भेदसे कालान्तरमें गुणोंका परिणाममात्र होता है अत्यन्त बाध नहीं होता सत् असत् दोनों विरुद्ध हैं इससे दोनों होना कहना यथार्थ नही है जो यह संशय होतौ प्रकार भेद होनेसे विरोध नहीं होता यथा तत्व रूपसे जो चांदी है वह अपने रूपसे सतहै परन्तु सीपमें जो चांदीका बोध होता है उसमें भ्रमसे सत्यके सदृश बोध होनेसे असत् है इसी प्रकारसे जगत् प्रकृति कार्यरूप अपने स्वरूपसे सत् है चैतन्य आदिमें अध्यस्तरूप असत् है इस प्रकारसे प्रकृति सत् असतस्वरूप है ॥ ५६ ॥ यह सत् असत् पदार्थका निरूपण करिकै फिर शब्द विषयमें विशेष विचार करते हैं ॥

प्रतीत्यप्रतीतिभ्यांनस्फोटात्मकःशब्दः ॥५७

प्रतीति व अप्रतीति दोनो होनेसे शब्द स्फोटात्मक नहीं है ॥ ५७ ॥

प्रत्येक वर्णोंसे भिन्न कलश इत्यादि रूप अखण्ड एक पद वर्णोंके संयोगसे माना जाता है कलश आदि विशेष शब्द जिस अर्थके वाचक होते हैं उस अर्थके बोधको स्फुट (प्रकट) करते हैं शब्दसे अर्थ ज्ञानके प्रकट होने वा प्रतीत होनेको स्फोट कहते हैं शब्दसे यह स्फोट होता है इस्से शब्दको स्फोटात्मक कहते हैं इस स्फोटके प्रतिषेधमें यह कहा है कि शब्दको जे स्फोटात्मक मानते हैं उनका मत सत्य नहीं है शब्द स्फोटात्मक नहीं है क्यों नही है प्रतीति अप्रतीतिसे अर्थात् शब्दसे अर्थकी प्रतीति होती है और नहीं भी होती प्रथम जिस्को इस स्फोटका ज्ञान हो गया है कि यह विशेष शब्द इन विशिष्ट अर्थोंके वाचकहें उसीको अर्थका बोध होता है जिस्को स्फोटका ज्ञान नहीं है उस्को शब्द विशेषसे अर्थ विशेषका ज्ञान नहीं होता अर्थात् उस्को अर्थ बोध करानेकी शब्दोंमें स्वतः (आपसे) शक्ति नही है इस्से शब्दमें स्फोटकल्पना व्यर्थ है ॥ ५७ ॥

नशब्दानित्यत्वंकार्यताप्रतीतेः ॥ ५८ ॥

कार्य होनेकी प्रतीतिसे शब्दकी नित्यता नही है ॥ ५८ ॥

शब्द उत्पन्न होताहै व नष्ट होता है इस्से कार्य है कार्य होनेकी प्रतीतिसे शब्द नित्य नहीं है इस हेतुसे कि गकारका उच्चारण सुनकर यह प्रत्यभिज्ञान होता है कि यह वही अक्षर गकारहै जो पूर्वही सुनाथा अथवा जिस्को पूर्वही गकार मानतेथे शब्दको नित्य माननायुक्त नहीं है उत्पन्नगकारबोध होनेसे अनित्य है पूर्वगकारके सजातीय होनेसे प्रत्यभिज्ञानका होना सिद्ध होता है वही एकही होना सिद्ध नही होता अन्यथा घट आदिकोंको भी प्रत्यभिज्ञा होनेसे नित्य मानना होगा॥५८॥

पूर्वसत्वस्याभिव्यक्तिर्दीपेनेवघटस्य ॥ ५९ ॥

दीपसे घटके समान पूर्व सिद्ध सत्वकी प्रकटता है ॥ ५९ ॥

जो शब्द सत्तारूपसे पूर्वहीसे सिद्ध है वह धुनिसे केवल प्रकट होता है यही उत्पन्न होता है यथा घटसत्ता अर्थात् घटका होना पूर्वही सिद्ध होनेपर भी जब अंधकारसे दृष्ट नहीं होता तब घट नहीं हैं ऐसा विदित होता है दीपके प्रकाशसे उसकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) होती है इसी प्रकारसे पूर्व सिद्ध शब्दकी उच्चारणसे अभिव्यक्ति होती है ५९

सत्कार्यसिद्धान्तश्चेत्सिद्धसाधनम् ॥ ६० ॥

सत्कार्य सिद्धांत होवै तौ सिद्ध साधन है ॥ ६० ॥

अनागत अवस्थाको छोडकर जो वर्तमान अवस्थाका लाभ करना अभिव्यक्ति अंगीकार की जावै तौ सत्कार्य सिद्धांतहै अर्थात् कार्यके सदा सत् होनेका सिद्धांतहै ऐसी नित्यता सब कार्योंकी है सब कार्योंकी नित्यता होनेमें सिद्ध साधन दोष होगा और जो यह माना जाय कि वर्तमानही रूपसे सत है ज्ञान मात्र होना अभिव्यक्ति है तौ घट आदिकोंकीभी नित्यता सिद्ध होगी इससे घटआदिके तुल्य कार्यरूप शब्द अनित्यहै ॥ ६० ॥ अब आत्माके अद्वैत माननेवालोंके मतका प्रतिषेध करतेहै ॥

नाद्वैतमात्मनोलिंगात्तद्भेदप्रतीतेः ॥ ६१ ॥

आत्माके लिंग (लक्षण) से उस्के (आत्माके) भेदकी प्रतीति होनेसे अद्वैत नहीं है ॥ ६१ ॥

यद्यपि यथा आत्माके भेद लिंग (लक्षण) में श्रुति वाक्य हैं तथा अभेद वाक्यभी हैं तथापि अजा वाक्यमें जिस्मे यह वर्णन किया है कि एक पुरुष प्रकृतिको भोग करता है व दूसरा विवेकसे प्राप्त वैराग्य से प्रकृतिको त्याग करताहै त्याग आदि लिंग (लक्षण) से आत्माके

भेदही होनेकी सिद्धि होती है अद्वैत वाक्य साधर्म्य होने व वैधर्म्य न होनेसे एकता प्रतिपादन पर है अत्यन्त अभेद प्रतिपादक नहीं हैं अत्यन्त अभेदमें एकका त्यागकरना अन्यका त्याग न करना यह भेद होना संभव नहीं होसक्ता इससे अद्वैत नहीं है ॥ ६१ ॥ श्रुति प्रमाणसे भेद होना वर्णन करिकै प्रत्यक्ष भी अद्वैत होनेका बाधक है यह वर्णन करते हैं ॥

नानात्मनापिप्रत्यक्षबाधात् ॥ ६२ ॥

अनात्मासे कभी प्रत्यक्ष बाध होनेसे अद्वैत नहीं है ॥६२॥

अनात्मासे अर्थात् भोग्य प्रपंचसे प्रत्यक्षसे बाध होनेसे आत्माका अद्वैत होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि एक आत्मामें अनेक प्रकारके भोग होना सिद्ध नहीं हो सकते और आत्माके भोग्योंमे भेद न होनेमें घट पट आदिका भी अभेद होना सिद्ध होगा ॥ ६२ ॥

नोभाभ्यांतेनैव ॥ ६३ ॥

उक्त हेतुहीसे दोनोंसे अद्वैत नहीं है ॥ ६३ ॥

उक्त हेतुहीसे अर्थात् प्रत्यक्ष बाधहीसे आत्मा व अनात्मा दोनोंसे अद्वैत होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् अनेक प्रकारके भोग्योंका भोग एकही आत्मामें होना अथवा एक आत्माका अनेक प्रकारके भोग एक दूसरेके विरुद्ध इष्ट अनिष्ट रूपका ग्रहण करना दोनों असंभव प्रत्यक्ष विरुद्ध होनेसे अद्वैत सिद्ध नहीं होता अथवा दोनों पूर्वोक्त हेतुओंसे आत्मा व अनात्मासे अद्वैत सिद्ध नहीं होता ॥ ६३ ॥ शंका "आत्मैवेदं सर्वं" तथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" अर्थ-आत्माही यह सब है तथा निश्चय करिकै यह सब ब्रह्महै इत्यादि श्रुतियोंके द्वैतके विरुद्ध होनेका क्या हेतु है ? उत्तर-

अन्यपरत्वमविवेकानांतत्र ॥ ६४ ॥

तिस्मैं (अद्वैतमें) अविवेकियोंप्रति अन्यपरत्व अर्थात् उपासनार्थक अनुवादहै॥ ६४ ॥

लोकमें शरीर शरीरी व भोक्ता भोग्यमें अविवेकसे अभेद व्यवहार करते हैं यथा मैं गोराहूं यद्यपि गोरा होना देहका धर्म है आत्माका नहीं है तथापि अविवेकसे अभेद व्यवहार करतें हैं इससे उसी प्रकारके व्यवहारको कहिकर उन अविवेकियोंप्रति सत्वशुद्धिआदिके अर्थ श्रुति उपासनाका विधान करती है और इसीसे परमार्थदशामें उपास्योंके आत्मा होनेका श्रुति प्रतिषेध करती है यथा श्रुतिमें कहा है "यन्मनसान मनुतेयेनाहुर्मनोमतं। तदेवब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते" अर्थ-जो मनसे नहीं जानता अर्थात् विनामनद्वारा सब जानता है जिससे मन जाना गया ऐसा कहते हैं उसीको तू ब्रह्म जान न इसको जिसकी उपासना करता है इत्यादि ॥ ६४ ॥

नात्माविद्यानोभयजगदुपादान कारणंनिःसंगत्वात् ॥ ६५ ॥

न आत्मा व अविद्या न दोनों निःसंग होनेसे जगत्के उपादान कारण नहीं हैं ॥ ६५ ॥

आत्मा व आत्मामें आश्रित अविद्या अथवा दोनों निःसंग होनेसे अर्थात् आत्माके संग रहित होनेसे जगत्के उपादान कारण नहीं हैं क्योंकि संगहीसे द्रव्योंका विकार होता है इससे केवल अद्वितीय आत्माका असंग होनेसे उपादान होना संभव नहीं होता न अविद्याद्वारा उपादान होना संभव होता है क्योंकि अविद्याके योग होनेका पूर्वही निषेध किया गया है ॥ ६५ ॥

नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वेद्वयोर्भेदात् ॥ ६६ ॥

दोनोंमें भेद होनेसे आनन्द व चैतन्य (ज्ञान) दोनों रूप होना एकका धर्म नहीं है ॥ ६६ ॥

ब्रह्मको श्रुतिमें आनन्द रूपभी वर्णन किया है यथा "सत्यंविज्ञानमानन्दं ब्रह्म" अर्थ-सत्य विज्ञानरूप आनन्दरूप ब्रह्म है इससे आनन्दरूप ब्रह्मके होनेके प्रतिषेधसे व श्रुतिसे आनन्द रूप होनेका जो भ्रम होता है उसके निवारणके अर्थ सूत्रमें यह कहा है कि आनन्द व चैतन्य दोनों एकही धर्मीके धर्म होना संभव नही होते क्योंकि जिस कालमें दुःखका ज्ञान होता है उस कालमें सुखके अनुभव न होनेसे ज्ञान सुखका भेद सिद्ध होता है जो यह समुझा जावै कि ज्ञान विशेष सुख है तो ऐसा कहनाभी युक्त नहीं है क्योंकि आत्मस्वरूप जो ज्ञान है वह अखण्ड है इसीसे चैतन्यके अनुभवकालमें सुखका आवरणभी नहीं कहाजाय सकता अखण्ड होनेसे आनन्दका आवरण होना संभव न होनेसे मैं दुःखको जानता हूँ यह अनुभव होना असंभव है आत्मामें अंश भेद नहीं है कि जिस अंशमें आनन्दका आवरण होता है उसमेंभी चैतन्य अंश माना जाय व श्रुतिभी आत्माको दुःखसुखरहित वर्णन करती है यथा "नानन्दंननिरानन्दमि" त्यादि अर्थ—न आनन्दरूप है न आनन्द रहित है इत्यादि इससे आनन्द आत्माका गुण नहीं है दुःख सुख प्रकृति कार्यका धर्म है ॥ ६६ ॥ शंका आनन्दरूप प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिका यथार्थ होना किस प्रकारसे माना जायगा ? उत्तर—

दुःखनिवृत्तेर्गौणः ॥ ६७ ॥

दुःखनिवृत्तिसे गौण है ॥ ६७ ॥

औपाधिक दुःखकी निवृत्तिसे जो आत्मा सुखरूप कहा जाता है इस भावसे आनन्द शब्द गौण श्रुतिमें कहा है श्रुति औपाधिक आनन्दपर है ॥ ६७ ॥

विमुक्तिप्रशंसामन्दानाम् ॥ ६८ ॥

मन्दोंके अर्थ विमुक्तिकी प्रशंसा है ॥ ६८॥

मन्द जो अज्ञान है उनकी रुचि बढानेके लिये दुःखनिवृत्तिरूप सुखमय आत्मस्वरूप मुक्तिकी श्रुति अज्ञानियोंप्रति प्रशंसा करती है ॥ ६८ ॥ मनके व्यापक न होनेका हेतु वर्णन करते हैं ॥

नव्यापकत्वंमनसःकरणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा ॥ ६९ ॥

करण होने अथवा इन्द्रिय होनेसे मनका व्यापक होना सिद्ध नहीं है ॥ ६९ ॥

मन अंतःकरण होनेसे जैसे अन्य करण व्यापक नहीं होते व्यापक नहीं है अथवा ज्ञान व कर्म इन्द्रियोंसे भिन्न अंतःकरण रूप इन्द्रिय विशेष देह मात्रमें दुःख सुख व इन्द्रिय विषयोंका ग्राहकहोनेसे मनक मध्यम परिमाण होना संभव होता है विभु होना सिद्ध नहीं होता ॥६९॥

सक्रियत्वाद्गतिश्रुतेः ॥ ७० ॥

गति सुननेसे क्रिया संयुक्त होनेसे ॥ ७० ॥

आत्माका लोकान्तरमें गमन सुननेसे अथवा आत्माके गमन आगमन वर्णनमें श्रुति प्रमाण होनेसे आत्मउपाधिभूत अंतःकरणका क्रिया संयुक्त होना सिद्ध होनेसे मनका विभु (व्यापक) होना संभव नहीं होता क्योंकि विभु आत्मामें स्वाभाविक गमन होना सिद्ध नहीं होता ॥ ७० ॥ मनके निरवयव होनेका प्रतिषेध करते है–

ननिर्भागत्वंतद्योगाद्घटवत् ॥ ७१ ॥

उनके संयोग होनेसे घटके समान भागरहित (निरवयव) नहीं है॥ ७१ ॥

उनके अर्थात् इन्द्रियोंके साथ मनका योग होनेसे मन घटके समान निरवयव नहीं है अर्थात् यथा घट मध्यम परिमाणयुक्त व सावयव है उसमें अनेक अवयवोंका संयोग है इसीप्रकारसे मनका अनेक इन्द्रियोंके साथ संयोग होनेसे मनका निरवयव होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि निरवयवका इन्द्रियोंके साथ संयोग नहीं होसकता संयोग वियोग सावयवमें होता है ॥ ७१ ॥

प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम् ॥ ७२ ॥

प्रकृति पुरुषसे अन्य सब अनित्य है ॥ ७२ ॥

कारणरूप प्रकृति व चेतन पुरुष ए दो नित्य हैं और सब कार्यरूप पदार्थ अनित्य हैं ॥ ७२ ॥

नभागलाभोभोगिनोनिर्भागत्वश्रुतेः ॥७३॥

श्रुतिप्रमाणसे भोगीके भागरहित होनेसे भोगीके भाग होनेकी सिद्धि नहीं होती ॥ ७३ ॥

भोगी (पुरुष) के भाग (अवयव) होनेकी सिद्धि नहीं होती क्यों कि श्रुतिमें पुरुषको भागरहित कहा है श्रुति यह है "निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनं" अर्थ– अवयव वा अंशरहित क्रियारहित शांत निर्दोष मायारहित है जो श्रुति सावयव कहाहै उसका अभिप्राय उपाधिवशसे आकाश जलके तुल्य सावयव व क्रियासहित होना है ॥ ७३ ॥

नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात् ॥ ७४ ॥

धर्मरहित होनेसे आनन्दकी अभिव्यक्ति मुक्ति नहीं है ॥ ७४ ॥

आत्मामें आनन्दरूप व अभिव्यक्तिरूप धर्म नहीं है आत्मा अपने स्वरूप ज्ञान रूप मात्रसे नित्य है इससे आनन्दकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) मोक्ष नहीं है ॥ ७४ ॥

न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ॥ ७५ ॥

उसी प्रकारसे विशेष गुणोंका नाश मोक्ष नहीं है ॥ ७५ ॥

आत्माके धर्मरहित होनेसे यथा आनन्दकी अभिव्यक्ति मोक्ष नहीं है तथा अशेष विशेषगुणोंका नाश अथवा विशेषगुणोंसे रहित होना भी मोक्ष नहीं है जो यह संशय हो कि ऐसा माननेमें दुःखकी निवृत्तिका भी मोक्ष होना संभव न होगा व दुःखका अभावभी धर्महो है तौ इस्का समाधान यह है कि भोग्यतासम्बंधहीसे जो दुःख है उसके अभावको हम पुरुषार्थता (मोक्ष) मानते हैं पुरुषमें स्वाभाविक दुःखसम्बंध व उस्की निवृत्तिको नहीं मानते ॥ ७५ ॥

न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ॥ ७६ ॥

क्रियारहितकी विशेष गति नहीं है ॥ ७६ ॥

ब्रह्म लोक आदिको जानाभी मोक्ष नहीं है क्योंकि क्रियारहित आत्मामें गतिका अभाव है लिंगशरीरसे गमन मानने व लिंगशरीर अंगीकार करनेहीसे मोक्षका होना घटित नहीं होता ॥ ७६ ॥

नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ॥ ७७ ॥

क्षणिक होने आदिके दोषसे आकारके उपरागका नाश मोक्ष नहीं है ॥ ७७ ॥

कोई नास्तिक यह मानते हैं कि क्षणिक ज्ञानही आत्मा है उस्का विषयाकार होना बंध है उस विषयाकारकी वासनारूप जो राग है उस्का नाश मोक्ष है इस्के प्रतिषेधमें सूत्रमें यह कहा है कि क्षणिक ज्ञान मात्र मानना युक्त नहीं है क्योंकि क्षणिक होनेआदिके दोषसे मोक्षकाभी पुरुषार्थ होना सिद्ध नहीं होता ॥ ७७ ॥

नसर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ॥ ७८ ॥

पुरुषार्थ न होना आदि दोष होनेसे सर्व नाश होना मोक्ष नहीं है ॥ ७८ ॥

जे नास्तिक आत्माका सर्वथा नाश होना मानते हैं और आत्माका नाश होनाही मोक्ष मानते हैं उनके मतके दूषणमें यह कहा है कि आत्माके समग्ररूपसे नाश होने अथवा सबके नाश होनेमें आत्माकेभी नाश होनेमें पुरुषार्थ रूप मोक्ष होना संभव नहीं है लोकमें नष्ट हुए आत्माका पुरुषार्थ होना देखनेमें नही आता इससे पुरुषार्थ न होनेके दोषसे मोक्ष असंभव है ॥ ७८ ॥

एवं शून्यमपि ॥ ७९ ॥

इसी प्रकारसे शून्यभी ॥ ७९ ॥

इसी प्रकारसे ज्ञानमें ज्ञेयात्मक अखिल प्रपंचके नाश होनेमेंभी आत्माके नाश होनेसे शून्यभी पुरुषार्थ सिद्ध न होनेसे मोक्ष नहीं है॥७९॥

संयोगाश्च वियोगान्ता इति न देशादिलाभोऽपि ॥ ८० ॥

सब संयोग वियोगके अंततक होते हैं इससे देशआदिलाभभी मोक्ष नहीं है ॥ ८० ॥

अति उच्च उत्तम लोक देश धन सुन्दर स्त्री आदिकोंके स्वामी होनेसे भी मोक्ष नहीं है इस हेतुसे कि सब संयोग वियोगके अंततक अर्थात् मरणतक अथवा अपने नाश होनेतक रहते हैं विनाशी होनेसे उनका स्वामी होना मोक्ष नहीं है ॥ ८० ॥

नभागियोगो भागस्य ॥ ८१ ॥

अंशीमें अंशका योग मोक्ष नहीं है ॥ ८१ ॥

जे जीवको ईश्वरका अंश मानते हैं और ईश्वरमें योग (मेल) होना मोक्ष मानते हैं उनके इस मतके प्रतिषेधमें यह कहा है कि भाग (अंश) रूप जीवका भागी (अंशी) परमात्मामें योग होना अथवालयहोना मोक्ष नहीं है इस हेतुसे कि योगका वियोग होता है वियोग होनेसे अनित्य है अनित्य होनेसे पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होता तथा अपनेमें लय होना पुरुषार्थ नहीं है इस्से मोक्ष नहीं है ॥ ८१ ॥

नाणिमादियोगोऽप्यवश्यं भावित्वात् तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ॥ ८२ ॥

अणिमा आदिका योगभी अन्ययोगके तुल्य उस्का नाश अवश्य होनहार होनेसे मोक्ष नहीं है ॥ ८२ ॥

अणिमा आदि जो अष्ट सिद्धि हैं उनका योग होना अर्थात् उनका प्राप्त होनाभी मोक्ष नहीं है क्योंकि अन्य योगके समान अणिमा आदिके योगकाभी वियोग अवश्य होगा वियोग होनेसे अर्थात् नाश होनेसे पुरुषार्थ नहीं है ॥ ८२ ॥

नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ॥ ८३ ॥

तथा इन्द्र आदिके पदका योगभी मोक्ष नहीं है ॥ ८३ ॥

तथा अर्थात् अणिमादियोगके समान इन्द्र आदिके पदका योग अर्थात् प्राप्त होनाभी मोक्ष नहीं है नाशमान् अनित्य होनेसे पुरुषार्थ नहीं है ॥ ८३ ॥ पूर्वही इन्द्रियोंको आहंकारिक कहा है उसके वि-

रुद्ध जे इन्द्रियोंको भौतिक मानते हैं उनके मतका अर्थात् इन्द्रियोंके भौतिक होनेका प्रतिषेध करते हैं ॥

न भूतप्रकृतित्वमिन्द्रियाणामाहंकारिकत्वश्रुतेः ॥ ८४ ॥

इन्द्रियोंके आहंकारिक होनेमें श्रुतिप्रमाण होनेसे इन्द्रियोंका भूतप्रकृति होना अर्थात् भौतिक होना सिद्ध नहीं होता ॥ ८४ ॥

सुगम है व पूर्वही इस्का व्याख्यान किया है ॥ ८४ ॥

नषट् पदार्थनियमस्तद्बोधान्मुक्तिः ॥ ८५ ॥

षट्पदार्थका नियम व उनके बोधसे मुक्ति नहीं है ॥ ८५ ॥

वैशेषिक जो यह मानते हैं कि द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय यह छःपदार्थ हैं व इनके ज्ञानसे मुक्ति होती है वह अप्रामाणिक हैं प्रकृति आदि अधिक पदार्थ हैं जिनका पदार्थज्ञान होना उचित है यद्यपि षट्पदार्थमें प्रकृतिकार्योंका वर्णन किया है परन्तु कारण प्रकृतिका जिस्में साम्यावस्थामें पृथ्वी आदिके समान गंध आदि गुण नहीं होते वर्णन नहीं किया तथा शक्तिका वर्णन नहीं किया इस्से षट्पदार्थका मानना यथार्थ नहीं है ॥ ८५ ॥

षोडशादिष्वप्येवम् ॥ ८६ ॥

इसी प्रकारसे षोडश आदिमें ॥ ८६ ॥

नैयायिक जो षोडशपदार्थ व उनके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष मानते हैं यह भी षट्पदार्थके तुल्य अप्रामाणिक है अर्थात् षोडश पदार्थमात्र होनेका नियम नहीं है षोडशपदार्थसे अधिक पदार्थ हैं इसीसे इस शास्त्रमें प-

चीस तत्त्व कहेगये हैं व पचीसही द्रव्यके अन्तर्गत गुण कर्म आदिभी जानना चाहिये ॥ ८६ ॥

नाणुनित्यता तत्कार्यत्वश्रुतेः ॥ ८७ ॥

अणुकी नित्यता उसके कार्यत्व प्रतिपादक श्रुति होनेसे नहीं है अर्थात् सिद्ध नहीं होती ॥ ८७ ॥

श्रुतिप्रमाणसे अणुका कार्य होना सिद्ध होता है कार्य नित्य नही होता विनाशी होता है इससे अणु अर्थात् परमाणु नित्य नहीं है जे परमाणुको नित्य मानते हैं उनका नित्य मानना यथार्थ नहीं है यद्यपि अणुके कार्य होनेमें जो श्रुति है वह बहुत वेदकी शाखाओंको लुप्त होजानेसे इस कालमें देखनेमें नही आई तथापि आचार्यवाक्यसे व मनुस्मृतिके प्रमाणसे माननेके योग्य है मनुस्मृतिमें यह कहा है "अण्व्योमात्राविनाशिन्यो दशार्धानांच याःस्मृताः॥ताभिस्सार्द्धमिदंसर्वंसंभवत्यनुपूर्वशः" अर्थ दशके आधे पांचके अर्थात् पृथ्वी आदि पांच भूतोंके जो अणु मात्रा विनाश होनेवाली हैं उन सहित यह सब जगत् पूर्वसृष्टिके सदृश उत्पन्न होता है अणु शब्द यहां परमाणुवाचक है परन्तु जहांतक अणु होनेका व्यवहार है वहाँतक कुछ आकार परिमाण होना संभव होनेसे कार्य होने व नाशमान् होनेका अनुमान होता है इससे अतिसूक्ष्म कारणसत्तामात्र प्रकृतिहीका नित्यमानना उचित है ॥ ८७ ॥

न निर्भागत्वं कार्यत्वात् ॥ ८८ ॥

कार्य होनेसे भागरहित होना सिद्ध नहीं होता ॥ ८८ ॥

श्रुतिप्रमाणसे अणुके कार्य होनेसे अणुका भाग रहित (निरवयव) होना सिद्ध नहीं होता इस्से निरवयव मानना युक्त नहीं है ॥ ८८ ॥

न रूपनिबंधनात् प्रत्यक्षनियमः ॥ ८९ ॥

रूप निमित्तसे प्रत्यक्ष होनेका नियम नहीं है ॥८९॥

रूपहीके निमित्तसे प्रत्यक्ष होनेका नियम नहीं है धर्म आदिसे भी साक्षात्कार होना संभव होता है अर्थात् स्थूलद्रव्योंका बाह्य इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होता है सूक्ष्मका अन्तर इन्द्रियद्वारा धर्म आदिसे प्रत्यक्ष होता है अर्थात् साक्षात्कार होता है ॥ ८९ ॥

न परिमाण चातुर्विध्यं द्वाभ्यां तद्योगात् ॥९०॥

परिमाण चार प्रकारका नहीं है दोसे उनके
योग होनेसे ॥ ९० ॥

अणु महत् ह्रस्वदीर्घसे चार परिमाण कहे जाते हैं परन्तु दोही करिके अर्थात् अणु महत दोके साथ उनके अर्थात् चारोंके योग होनेसे परिमाण चार नही हैं दीर्घमहत्के अन्तर्गत व ह्रस्वअणुके अन्तर्गत माननेसे दोही परिमाण हैं ॥ ९० ॥ सामान्यद्वारा पुरुषकी ऐक्यता व प्रकृतिकी ऐक्यताका ज्ञान होता है इससे सामान्यको वर्णन करते हैं-

अनित्यत्वेऽपि स्थिरता योगात् प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य ॥९१॥

अनित्य होनेमें भी स्थिरताके योगसे
सामान्यका प्रत्यभिज्ञान होता है ॥ ९१ ॥

व्यक्तियोंके अनित्य होनेमेंभी यह वही घट है स्थिरतायोगसे ऐसा जो प्रत्यभिज्ञान (स्मरण) होता है वह सामान्यका प्रत्यभिज्ञान होता है अर्थात् वह प्रत्यभिज्ञान सामान्य विषयक है ॥ ९१ ॥

न तदपलापस्तस्मात् ॥ ९२ ॥

तिस्से उस्का अपलाप (असत् कथन) नहीं है ॥ ९२ ॥

तिस्से उस्का (सामान्यका) अपलाप (मिथ्या कथन) नहीं है अथवा नहीं होसकता सामान्यपदार्थ सत्य है ॥ ९२ ॥

नान्यनिवृत्तिरूपत्वं भावप्रतीतेः ॥ ९३ ॥

भावकी प्रतीति होनेसे अन्यनिवृत्तिरूप होना नहीं है ॥ ९३ ॥

वही यह है इस भाव प्रत्ययसे सामान्य अन्यका निवृत्तिरूप होना सिद्ध नहीं होता अन्यथा यह घट नहीं है यही प्रतीत होता अन्यकी व्यावृत्ति माननेमें यथा घट न होनेमें घट होनेकी व्यावृत्ति (निवृत्ति) अर्थात् घटका न होना घट सामान्यसे भिन्न होनेको सामान्य मानना है इस्से सामान्यभावरूपही है अभावरूप नही है ॥ ९३ ॥

न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः ॥९४॥

प्रत्यक्षसे उपलब्धि होनेसे सादृश्य तत्त्वान्तर नहीं है॥९४॥

अवयव आदिके सामान्यसे भिन्न सादृश्य नही है सामान्यरूपही प्रत्यक्षसे विदित होनेसे सामान्दरूपही सादृश्यको मानना चाहिये ॥९४॥ शंका जो स्वाभाविक शक्तिही सादृश्य मानीजाय तौ वह सामान्य नही है उत्तर—

निजशक्त्यभिव्यक्तिर्वा वैशिष्ट्या तु तदुपलब्धेः ॥ ९५ ॥

स्वाभाविकशक्तिकी अभिव्यक्ति (प्रकटता) भी सादृश्य नहीं है विलक्षणतासे उस्की उपलब्धि होनेसे ॥ ९५ ॥

स्वाभाविकशक्तिका उत्पन्न होना व प्रकट होना सादृश्य नहीं है इस

हेतुसे कि शक्तिकी उपलब्धि (ज्ञान) से सादृश्यकी उपलब्धिकी विलक्षणता है शक्तिकी उपलब्धिमें अर्थात् शक्तिके ज्ञानमें अन्यधर्मीके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं होती सादृश्यज्ञान अभावके ज्ञानके समान प्रतियोगीके अर्थात् जिसका अभाव होता है उस्के ज्ञानकी अपेक्षा करता है इस्से दोनोंमें विलक्षणता है धर्मीकी निजशक्ति (स्वाभाविकी शक्ति) सामान्यही है सामान्यरूप धर्मीकी शक्ति सादृश्य नही है धर्मीकी शक्ति सामान्य व सादृश्यमें भेद न माननेमें बाल्य अवस्थामेंभी युवाके सादृश्यकी प्राप्ति हो जावैगी जो यह कहा जावै कि युवा आदि कालसम्बधी शक्तिविशेष, युवा आदिका सादृश्य है तौ ऐसा माननेमें भी प्रतिव्यक्तिमें अनन्तशक्ति कल्पना करनेकी अपेक्षा कल्पनामात्रसे साधारण एक सामान्यकल्पना करना युक्त है इस्से सामान्य व सादृश्य एक नहीं हैं ॥ ९५ ॥ अब जो शब्द व अर्थमें नित्य सम्बंध मानते हैं व यह कहते हैं कि घट आदि संज्ञकत्व (नामहोना) ही घट आदि व्यक्तियोंका सादृश्य है इस्के प्रतिषेधमें यह सूत्र है ॥

न संज्ञासज्ञिसम्बंधोऽपि ॥ ९६ ॥

संज्ञासज्ञीका सम्बंध भी नहीं है ॥ ९६ ॥

संज्ञासंज्ञीका सम्बंधभी विलक्षणता होनेसे सादृश्य नही है अर्थात् जो संज्ञा (नाम) व संज्ञी (नामी) भावको नहीं जानता उस्को भी सादृश्यका ज्ञान होता है इस विलक्षणतासे संज्ञासज्ञीका सम्बंध सादृश्य नहीं है ॥ ९६ ॥

न सम्बंधनित्यतोभयानित्यत्वात् ॥ ९७ ॥

दोनोंके अनित्य होनेसे सम्बंधकी नित्यता नहीं है ॥ ९७ ॥

संज्ञासज्ञीके अनित्यहोनेसे उनके सम्बंधकी नित्यता नहीं है द्रव्यके नष्ट होजानेपर उस जातिसम्बंधी शब्द व व्यक्तियोंके बने रहनेसे

उस शब्दका व्यवहार होता है व शब्द नष्ट होजानेपर व संज्ञा न जानेहुये अर्थकी भी प्रतीति होनेसे दोनोंकी अनित्यतासे है क्योंकि अतीतका वर्तमानके साथ सम्बंध होना संभव न होनेसे सम्बंधकी नित्यता सिद्ध नहीं होसकती ॥ ९७ ॥

नातः सम्बंधो धर्मिग्राहकमानबाधात् ॥ ९८ ॥

इस्से धर्मीके ग्राहक प्रमाणसे बाध (निषेध) होनेसे सम्बंध नहीं है अर्थात् सम्बंध नित्य नहीं है ॥९८॥

कभी विभाग होनेहीसे सम्बन्ध सिद्ध होता है अन्यथा जैसा कि आगे वर्णन कियाजायगा स्वरूपहीसे प्राप्त होने वा सिद्ध होनेमें सम्बंध कल्पना करनेका अवकाश नहीं होसक्ता और जो कभी विभाग होना माना जावै तौ नित्यसम्बंध होनेकी हानि होती है क्योंकि नित्यसम्बंधमें कभी विभाग होना संभव नहीं होसक्ता इस्से धर्मीग्राहक प्रमाणसे अर्थात् धर्मधर्मी सम्बंधग्राहक प्रमाणहीसे बाधहोनेसे अर्थात् सम्बंधका निषेध होजानेसे नित्यसम्बंध होना सिद्ध नहीं होता ॥ ९८ ॥ अब यह आशंका है कि ऐसा माननेमें नित्य गुण व गुणीका समवाय (नित्यसम्बंध) होना सिद्ध न होगा नित्य गुणगुणीका नित्य सम्बंधमाननेके योग्य समझा जाता है इस्का उत्तर वर्णन करते हैं ॥

न समवायोऽस्ति प्रमाणाभावात् ॥ ९९ ॥

प्रमाणके अभावसे समवाय (नित्यसम्बंध) नही है ॥ ९९ ॥

समवायके होनेमें प्रमाणका अभाव है इस्से समवाय पदार्थ नहीं है॥९९॥

उभयत्राप्यन्यथा सिद्धेर्न प्रत्यक्षमनुमानं वा ॥ १०० ॥

दोनोंमें अन्यथासिद्धि होनेसे न प्रत्यक्ष है न अनुमान है ॥ १०० ॥

जिसमें विशेषपदार्थका सम्बंध हो उसको विशिष्ट (विशेषसंयुक्त) कहते हैं व विशिष्ट होना वैशिष्ट्य कहाजाता है दोनोंमें वैशिष्ट्यके प्रत्यक्ष अथवा अनुमानमें स्वरूपहीसे अन्यथा सिद्ध होनेसे समवायमें प्रत्यक्ष व अनुमान दोनों प्रमाण नहीं हैं यह भाव है यथा समवायके विशिष्ट होनेकी बुद्धि प्रत्यक्ष व अनुमानके अन्यथा सिद्ध होनेपर भी अनवस्थाभयसे समवायके स्वरूपहीसे ग्रहण की जाती है इसी प्रकारसे गुणगुणी आदिके विशिष्ट होनेकी बुद्धिभी उसमें प्रत्यक्ष व अनुमान अन्यथा सिद्ध होनेपरभी गुण आदिके स्वरूपहीसे सिद्ध जानना चाहिये जो यह शंका हो कि ऐसे तर्कसे संयोग भी सिद्ध न होगा भूतल आदिमें घट आदिके प्रत्ययकोभी स्वरूपहीसे सिद्ध मानना चाहिये तौ इसका उत्तर यह है कि वियोगकालमें भी घट व भूतलका स्वरूप अपनी अपनी अवस्थासे बने रहनेसे विशिष्टबुद्धि होनेका प्रसंग है इससे संयोगसिद्ध होता है समवायस्थलमें समवेत (समवायसंयुक्त) का-कहीं अपने आश्रयसे वियोग नहीं होता इस्से समवाय सिद्ध नहीं होता जो यह कहा जावै कि कहीं तादात्म्यसम्बंधमें ऐसा होनेसे समवाय-का अन्यथा होना सिद्ध नहीं होता इस्से दोष नहीं है तौ शब्दमात्रके भेदसे अत्यन्त तादात्म्य (उसीके रूपमयहोना) न कहना चाहिए गुणके वियोगमें भी गुणी रहता है इस्से और विशिष्ट होनेके प्रत्यय न होनेसे समवाय सिद्ध नहीं होता सम्बंधविशेष भेदअभेद नियामक कहना योग्य है तादात्म्यशब्द कथनमात्रका भेद है तादात्म्यके सदृश तदेव (वही) कहनेमात्रसे समवायकी सिद्धि नहीं होती ॥ १०० ॥

नानुमेयत्वमेव क्रियाया नेदिष्ठस्य तत्तद्वतोरेवापरोक्षप्रतीतेः ॥ १०१ ॥

निकटस्थ देखनेवालेको उसकी व उस संयुक्त दोनोंकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होनेसे क्रियाका केवल अनुमानहीके योग्य होना सिद्ध नहीं होता ॥१०१॥

प्रकृतिके क्षोभसे प्रकृति व पुरुषके संयोगहोनेरूप क्रिया होनेसे सृष्टि होती है यह सिद्धांत है इस्में यह निश्चय होनेके अर्थ कि, क्रिया कोई पदार्थ है और कहीं उसका प्रत्यक्षभी होता है जिसके द्वारा उस्का अनुमान किया जाता है अथवा अनुमानके योग्य मान लेनामात्र है यह कहा है कि, देशान्तरके संयोग आदिसे क्रिया केवल अनुमानहीके योग्य नहीं है जो निकटस्थ (निकटमें स्थित) देखनेवाला है उस्को उस्के व उस्के संयुक्तके अर्थात् क्रिया व क्रियासंयुक्त दोनोंके होनेकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है यथा वृक्ष हिलताहै मनुष्य चलता है इत्यादिमें ॥ १०१ ॥ द्वितीयाध्यायमें शरीरके विषयमें मतभेदमात्रका वर्णन किया है विशेष निर्णय नहीं किया अब यहां विशेषके निश्चय व परपक्षके प्रतिषेधमें वर्णन करते हैं ॥

न पांचभौतिकं शरीरं बहूनामुपादानायोगात् ॥ १०२ ॥

बहुतोंके उपादान होनेके योग न होनेसे शरीर पांच भौतिक नहीं है ॥ १०२ ॥

बहुत भिन्नजातियोंका उपादान होना घट पट आदि स्थलमें प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे सब शरीर पांच भौतिक (पंचभूतसे उत्पन्न) नहीं हैं ॥ १०२ ॥ बहुत यह कहते हैं कि, स्थूलही शरीर होता है इस्का निषेध करते हैं ॥

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात् ॥१०३ ॥

स्थूलही होना नियम नहीं है आतिवाहिककेभी विद्यमान होनेसे ॥ १०३ ॥

स्थूलही शरीर होनेका नियम नहीं है आतिवाहिकशरीरकेभी होने-से अर्थात् आतिवाहिक शरीरभी होता है आतिवाहिक सूक्ष्मलिंग-शरीरका नाम है जिस्से प्राणी लोकान्तरको जाता है और वहभी भौतिक है क्योंकि विनाभूतके आश्रयहुये विना आधारचित्रके तुल्य स्थिर नहीं हो सक्ता न लोकान्तरको जाय सक्ताहै. शंका–सूक्ष्म लिंग शरीर सबशरीरमें कैसे व्यापक होता है? उत्तर–यह है कि, अपने प्रकाशसे दीप-कके सब घरमें व्यापक होनेकी सदृश व्यापक होता है ॥ १०३ ॥

नाप्राप्तप्रकाशकत्वमिन्द्रियाणामप्रा-प्तेः सर्वप्राप्तेर्वा ॥ १०४ ॥

इन्द्रियोंका प्राप्त न हुयेका प्रकाशक होना संभव नहीं है विना प्राप्तिके सब प्राप्ति होनेका प्रसंग होनेसे ॥ १०४ ॥

प्राप्त न हुये अर्थोंका अर्थात् जिन अर्थोंके साथ सम्बंध प्राप्त नहीं हुवा उन अर्थोंका इन्द्रियोंका प्रकाशक होना संभव नहीं है यथा जिस्में अथवा जहाँ दीपआदिके प्रकाशका सम्बंध नहीं होता उस पदार्थके दीप आदि प्रकाशक नहीं होते विना प्राप्तहुएके प्रकाशक होनेमें व्य-वहित (जो किसी पदार्थके आडमें है) आदि सब पदार्थोंके प्रकाशक होनेका प्रसंग होता है परन्तु व्यवहित आदि पदार्थोंका प्रत्यक्ष नहीं होता इस्से दूरस्थ सूर्य आदिके सम्बंधके अर्थगोलकसे इन्द्रिय भिन्न है उस गोलकभिन्न इन्द्रियके सम्बंधसे सूर्य आदिका प्रत्यक्ष होता है पुरुषमें अर्थ समर्पण करनेके द्वारा करणोंका अर्थ प्रकाशक होना है क्योंकि इन्द्रिय जड हैं जड इन्द्रियोंका दर्पणके तुल्य प्रकाशक होना है अर्थात् यथा दर्पण मुखप्रकाशक होता है परन्तु आप कुछ नहीं जानता केवल

पुरुषको रूपज्ञान प्राप्त होनेका हेतु होता है इसी प्रकारसे इन्द्रियोंको जानना चाहिये ॥ १०४ ॥

न तेजोपसर्पणात् तैजसं चक्षुर्वृत्तित स्तत्सिद्धेः ॥ १०५ ॥

तेजके गमनसे चक्षु (नेत्र) तैजस नहीं हैं वृत्तिसे उस्की सिद्धि होनेसे ॥ १०५ ॥

तेजफलता है व दूर जाकर प्राप्त होताहै यह देखकर चक्षुको तैजस न मानना चाहिये विना तैजस होनेमेंभी प्राणके सदृश वृत्तिभेद-से दूर जाना सिद्ध हो सकता है अर्थात् यथा प्राण नासाके अग्रसे शरीर-से बाहर कुछ दूर जाकर शरीरमें प्राप्त होता है इसीप्रकारसे चक्षु अ-तैजस द्रव्य होनेपरभी वृत्तिद्वारा सूर्य आदिमें प्राप्त हो फिर शरीरमें प्राप्त होता है ॥ १०५ ॥ वृत्तिहोनेमें क्या प्रमाण है, उत्तर?–

प्राप्तार्थप्रकाशलिंगाद्वृत्तिसिद्धिः ॥ १०६ ॥

प्राप्त अर्थहीमें प्रकाशहोनेके लिंगसे वृत्तिका होंना सिद्ध होता है ॥ १०६ ॥

जो अर्थ दूर है उस्में गोलक प्राप्त नहीं होसक्ता शरीरही मात्रमें रहता है अप्राप्तवस्तुका प्रकाशक होना संभव नहीं होता इस्से वृत्तिही द्वारा दूरस्थपदार्थमें प्रकाश वा ज्ञान होनेसे अनुमानसे वृत्ति होनेकी सिद्धि होती है ॥ १०६ ॥

भागगुणाभ्यां तत्त्वान्तरं वृत्तिः सम्बंधार्थं सर्पतीति ॥ १०७ ॥

भाग व गुणसे भिन्न तत्त्व वृत्तिसम्बंधके अर्थ गमन करती है ॥ १०७ ॥

वृत्ति चक्षु आदिका भाग (अंश) नहीं है व रूप आदिके तुल्य गुण नहीं है क्योंकि चक्षुके भाग होनेमें चक्षु इन्द्रियका सूर्य आदिके साथ सम्बंध होना घटित न होता और गुण होनेमें गमनकी प्राप्ति न होती इससे बुद्धि वृत्तिभी दीप शिखाके समान द्रव्य रूपही परिणाम है॥१०७॥ शंका इसप्रकारसे वृत्तियोंके द्रव्य होनेमें इच्छा आदिरूप बुद्धि गुणों में वृत्तिव्यवहार क्यों होताहै? उत्तर ॥

न द्रव्यनियमस्तद्योगात् ॥ १०८ ॥

तिस्में योग होनेसे द्रव्य होनेका नियम नहीं है ॥ १०८ ॥

तिस्में अर्थात् वृत्तिमें योग होनेसे वृत्ति द्रव्यही होती है यह नियम नहीं है वृत्ति वर्तन व जीवनको कहते हैं यह यौगिक शब्द है जीवन स्वस्थिति (अपनी स्थिति) हेतुके व्यापारको कहते हैं क्योंकि जीव धातु बल व प्राण धारण अर्थमें है इससे जीवनका अर्थ बल व प्राणधारण रूप स्थिति काहोनेसे व वैश्यवृत्ति शूद्रवृत्ति आदि व्यवहारसे यह अर्थ सिद्ध होता है इससे यथा द्रव्य रूप वृत्तिसहित बुद्धि जीती है इसी प्रकारसे इच्छा आदि वृत्तियाँ है उन सहितभी जीती है सब वृत्ति ओंके निरोधहीसे चित्तका मरण होता है ॥ १०८ ॥ शंका–इन्द्रिय भौतिक सुनी जाती हैं जो इस लोकमें भौतिक नहीं हैं तौ अन्य लोकों में होगी. उत्तर॥

न देशभेदेऽप्यन्योपादानतास्म दादिवन्नियमः ॥ १०९ ॥

देशभेद होनेमें भी अन्य उपादानता नहीं है अस्मदादिके समान नियम है ॥ १०९ ॥

ब्रह्मलोक आदि देशभेद होनेमें भी इन्द्रियोंका अहंकारसे भिन्न उपादान होना सिद्ध नहीं होता अस्मद् आदिके समान अर्थात् हम

भूलोकवालोंके सदृश सब लोक वालोंके इन्द्रियोंका आहंकारिक होने-का नियम है देशभेदसे एक लिंग शरीरहीका सञ्चारमात्र सुना जाता है ॥ १०९ ॥ शंका–श्रुतिमें भौतिक क्यों कहा है? उत्तर,–

निमित्तव्यपदेशात्तद्व्यपदेशः ॥ ११० ॥

निमित्त व्यपदेशसे उसका व्यपदेश है ॥ ११० ॥

निमित्तमें भी प्राधान्यके कहनेकी इच्छासे उपादानका होना कहा जाता है यथा ईंधनसे अग्नि यह कहनेमेंईंधन अग्निका उपादान कारण कहा जाता है तेज आदिभूत आलम्बन करिके उस्के अनुगत अहंकारसे चक्षु आदि इन्द्रियोंका होना संभव होता है यथा पार्थिव द्रव्य ईंधनको आलम्बन करिकै उस्के अनुगत होनेसे तेजसे अग्नि होती है इत्यादि ॥ ११० ॥ अबस्थूल शरीरोंके भेदको वर्णन करते हैं,–

ऊष्मजाण्डजजरायुजोद्भिज्जसांकल्पिकंसांसिद्धिकं चेति न नियमः ॥ १११ ॥

ऊष्मज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज्ज, सांकल्पिक, सांसिद्धिक, शरीर होते हैं इससे नियम नहीं है ॥ १११ ॥

श्रुतिमें जो अण्डज जरायुज उद्भिज्ज त्रिविध शरीर कहा है वह इन त्रिविधके अधिक होनेके अभिप्रायसे कहा है इन तीनही प्रकारके होनेका नियम नहीं है क्योंकि उष्मज आदि छ-प्रकारके शरीर होतेहैं ऊष्मज यथा मासा आदि अण्डज पक्षी सर्प आदि जरायुज मनुष्य आदि उद्भिज्ज वृक्ष आदि संकल्पज सनकादि सांसिद्धिक जो शरीर तप आदिकी सिद्धिसे उत्पन्न होते हैं ॥ १११ ॥

सर्वेषु पृथिव्युपादानमसाधारण्यात्तद्व्यपदेशः पूर्ववत् ॥ ११२ ॥

सबमें असाधारण्यसे पृथिवी उपादान है
इस्का वर्णन पूर्वहीके सदृश है ॥ ११२ ॥

असाधारण्यसे अर्थात् आधिक्य आदिसे उत्कर्ष होनेसे सब शरीरोंमें पृथिवीही उपादान कारण है शरीरोंके पांच भौतिक चातुर्भौतिक आदि भेद कहना पूर्वहीके सदृश जानना चाहिये अर्थात् इन्द्रियोंका भौतिकत्व उपष्टम्मक (स्थापन करने वाला) होना मात्रहै ॥ ११२ ॥ शंकाश–रीरमें प्राणके प्रधान होनेसे प्राणही शरीरका आरंभकहै अथवा नही हैं. उत्तर,–

न देहारंभकस्य प्राणत्वमिन्द्रियशक्ति
तस्तत्सिद्धेः ॥ ११३ ॥

देह आरंभकका प्राण होना सिद्ध नहीं होता
इन्द्रियोंकी शक्तिसे उस्की सिद्धि होनेसे ॥ ११३ ॥

देह आरंभक पदार्थका प्राण होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् प्राण देहका आरंभक नहीं है क्योंकि विना इन्द्रिय प्राणकी स्थिति नहीं है अन्वय व व्यतिरेकसे इन्द्रियोंके शक्ति विशेषहीसे प्राण होनेकी सिद्धि वा उत्पत्ति है करणवृत्तिरूप प्राण करणोंके वियोगमें नहीं रहता है इस्से मृत देहमें करणके अभावसे प्राणकाभी अभाव होनेसे प्राण देहका आरंभक नहीं है ॥ ११३ ॥ शंका–जो प्राण देहका कारण नहीं है तो विना प्राणभी देह उत्पन्न होवे. उत्तर–

भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणम
न्यथा पूतिभावप्रसंगात् ॥ ११४ ॥

भोक्ताके अधिष्ठान होनेसे भोगायतन निर्माण होता
है अन्यथा पूतिभावके प्रसंग होनेसे ॥ ११४ ॥

भोक्ता प्राणीके अधिष्ठानसे अर्थात् पारहीसे भोगायतन (भोगस्थान) शरीरका निर्माण होताहै प्राणके व्यापार विना शुक्रशोणितका पूतिभाव होनेका प्रसंग होताहै जैसाकि प्राण व्यापार रहित होनेसे मृतदेहमें दुर्गंध होता है इससे रस संचार आदि व्यापारविशेषसे प्राण देहका निमित्त कारण है उपादान कारण नहीं है ॥ ११४ ॥

भृत्यद्वारास्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात् ॥ ११५ ॥

भृत्यद्वारा स्वामीकी अधिष्ठिति है एकान्त होनेसे नहीं है ॥ ११५ ॥

देह निर्माणमें व्यापाररूप अधिष्ठान एकान्तसे अर्थात् साक्षात् चेतन स्वामीहीका नहीं है किन्तु प्राणरूप भृत्यद्वारा चेतनका अधिष्ठान है यथा पुर निर्माणकरनेमें राजाकी भृत्यद्वारा अधिष्ठिति होती है प्राण साक्षात् देहमें व्यापारका अधिष्ठाताहै पुरुषका अधिष्ठाता होना केवल प्राणके संयोग मात्रसे है यद्यपि प्राणहीके अधिष्ठानसे देहका निर्माण होता है तथापि प्राणद्वारा प्राणीके संयोगकीभी अपेक्षा होती है क्यों कि पुरुषहीके अर्थ प्राण करके देह निर्माण किया गया है इस आशयसे भोक्ता अधिष्ठान होना कहागयाहै ॥ ११५ ॥

समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥ ११६ ॥

समाधि व सुषुप्ति व मोक्षमें ब्रह्मरूपता होती है ॥ ११६ ॥

समाधिसे यहां असम्प्रज्ञात अवस्था सुषुप्तिसे समग्र सुषुप्ति मोक्षसे विदेह कैवल्य अभिप्राय है इन अवस्थाओंमें पुरुषको ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है अर्थात् पुरुष ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै बुद्धिवृत्तिओंके लय होनेसे बुद्धि उपाधिकृत पदार्थके नाश होनेसे पूर्णताकेसाथ अपने स्वरूपमें स्थित होताहै यथा घटके नाश होनेमें घटाकाशकी पूर्णता होती है नैमित्तिक उपाधिके अभाव होजानेपर पुरुषोंका ब्रह्म होनाही

स्वभाव है जैसे औपाधिक अरुणताके अभाव होनेमें अर्थात् दूर हो जाने पर स्फटिकका शुक्ल होनाही स्वभाव है बुद्धिवृत्ति प्रतिबिम्ब वशसे जो दुःख आदिकी मलिनता पुरुषमें होती है उपाधि मात्रसे होती है पुरुष नित्यमुक्त है औपाधिक दुःखकी निवृत्तिके अर्थ प्रकृतिकी सृष्टिहै जैसा पूर्वही कहागया है कि, विमुक्तके मोक्षके अर्थ प्रकृतिकी सृष्टि है ॥ ११६ ॥ शंका–जो तीनों तुल्य हैं तौ सुषुप्ति समाधिसे मोक्षमें कुछ विशेषता नहीं है उसको श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिये. उत्तर१–

द्वयोःसबीजमन्यत्रतद्धतिः ॥ ११७ ॥

दोनोंमें बीज सहित है अन्यमें उसका अभाव है॥ ११७॥

दोनों सुषुप्ति समाधिमें पुरुषबंध बीजसहित रहताहै अन्यमें अर्थात् मोक्षमे उसका अर्थात् बंध बीजका अभाव होताहै इससे यह कहा है कि दोनों सुषुप्ति व समाधिमें पुरुषबंध बीजसहित है व मोक्षमे बंध बीजरहित होता है यह मोक्षमें विशेषता व उत्कृष्टता है ॥ ११७ ॥

द्वयोरिवत्रयस्यापि दृष्टत्वान्न तुद्वौ ॥ ११८ ॥

दोके सदृश तीसरेकेभी दृष्ट होनेसे दो नहीं है॥ ११८ ॥

दोके सदृश अर्थात् सुषुप्ति समाधिके सदृश मोक्षकेभी दृष्ट होनेसे अर्थात् ज्ञात वा अनुमित होनेसे दोही नहीं हैं अर्थात् सुषुप्ति व समाधि यही दो नहीं है तीसरा इनसे भिन्न मोक्षभी पदार्थ है यह सिद्ध होताहै सुषुप्ति आदिमें जो ब्रह्मभाव है वह चित्तमें राग आदि दोष संस्कारसंयुक्त होताहै यह दोष जब ज्ञानसे नष्ट होताहै तब सुषुप्ति आदिके सदृशही मोक्ष अवस्था स्थिर होती है ॥ ११८ ॥ शंका–समाधिमें वासना बीजसंस्कार होनेपरभी वैराग्य आदिसे वासना कुंठ होजानेसे अर्थके आकाररूप वृत्ति समाधिमें न होना माननेके योग्य है परन्तु सुषुप्तिमें वासना प्रबल होनेसे अर्थज्ञान होना चाहिये इससे सुषुप्तिमें ब्रह्मरूपता कहनायुक्त नहीं है. उत्तर१–

वासनयानर्थख्यापनं दोषयोगेऽपि निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ॥ ११९ ॥

निद्रादोष योगमें भी वासना अर्थ स्मरण कराना नहीं होता न निमित्तका प्रधानका बाधक होना सिद्ध होता है ॥ ११९ ॥

यथा वैराग्यमें तथा निद्रादोषके योग होनेमेंभी वासना करिकै अर्थात् वासनासे अपने अर्थका स्मरण कराना नही होता है क्योंकि निमित्तका अर्थात् संस्कारका, बलवान् निद्रा दोषका बाधक होना सिद्ध नहीं होता अर्थात् निमित्तरूप संस्कार प्रधानरूप बलवान् निद्राका बाधक नही होता बलवान् निद्रा दोषही वासनाको दुर्बल व उसको अपने कार्यमे कुण्ठकर देताहै ॥११९॥ शंका—संस्कार लेशसे जीवन्मुक्तका शरीर धारण होता है यह तृतीयाध्यायमें कहा है उसमें यह आक्षेप है कि जीवन्मुक्तके पूर्वसंस्कारके नाश होजानेसे व ज्ञानके प्रतिबंध होनेके कारणसे कर्मके तुल्य फिर संस्कार उदय न होनेसे जीवन्मुक्तको भोग होना किस प्रकारसे संभव होता है? उत्तर ॥

एकः संस्कारः क्रियानिर्वर्तको नतु प्रतिक्रियं संस्कारभेदा बहुना कल्पनाप्रसक्तेः ॥ १२० ॥

एक संस्कार क्रियानिर्वर्तक है बहुत कल्पना प्रसंग होनेसे प्रतिक्रिया संस्कारभेद नहीं है ॥ १२० ॥

जिस संस्कारसे देव आदि शरीरका भोग आरब्ध होताहै अर्थात् आरंभको प्राप्त होताहै वही एक संस्कार उस शरीरसे साध्य जो प्रारब्ध भोग है उसका समाप्त करनेवाला होताहै और वह कर्मके सदृश भोगकी समाप्तिमें नाश्य होता है प्रतिक्रिया प्रतिभोगव्यक्तिमें ना-

ना संस्कार नहीं होते नहीं बहुव्यक्तिकल्पना करनेमें गौरव दोष होनेका प्रसंग होगा यथा कुलालचक्र भ्रमण स्थलमें वेग संज्ञक भ्रमण समाप्ति पर्य्यंत रहनेवाला एकही संस्कार होताहै इसीप्रकारसे एक शरीरसाध्य प्रारब्ध भोगके समाप्त होनेपर्यंत एकही संस्कार जिस्से शरीरभोग आरब्ध होताहै बना रहताहै ॥ १२० ॥ शंका उद्भिज शरीर जो कहा गया है उस्मे बाह्य बुद्धि नही है इस्से शरीर होना संभव नहीं होता है उत्तर ॥

न बाह्यबुद्धिनियमो वृक्षगुल्मलतौषधिवनस्पतितृणवीरुधादीनामपि भोक्तृभोगायतनत्वं पूर्ववत् ॥ १२१ ॥

बाह्यबुद्धिका नियम नहीं है वृक्ष गुल्म लता औषधि वनस्पति तृण वीरुध आदिकोका भी भोक्ता व भोगायतन होना पूर्वके तुल्य है ॥ १२१ ॥

जिस्मे बाह्यज्ञान होवै वही शरीर हो यह नियम नहीं है वृक्ष आदि अंतःसंज्ञोंकाभी भोक्ता व भोगायतन अर्थात् भोगस्थान शरीर होना पूर्वके तुल्य मानना चाहिये अर्थात् यथा पूर्वही कहा गया है कि भोक्तृ अधिष्ठान हुये विना मनुष्य आदि शरीरका पूतीभाव होताहै इसीप्रकारसे वृक्षआदि शरीरोंमेभी शुष्कता आदि होना माननेके योग्य है व श्रुति प्रमाणसे सिद्ध है श्रुति यह है "अस्ययदेकशाखां जीवो जहात्यथसा शुष्यति इत्यादि" अर्थ–इस्के जिस एक शाखाको जीव त्याग करता है वह सूख जाती है इत्यादि ॥

स्मृतेश्च ॥ १२२ ॥

स्मृतिसे भी ॥ १२२ ॥

स्मृतिसेभी वृक्ष आदिके शरीर होनेका प्रमाण है स्मृतिमे यह कहा

है "शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसै रन्त्यजातिताम्" अर्थ शरीरसे उत्पन्न कर्मदोषोंसे मनुष्य स्थावर (वृक्ष-आदि) होताहै वाचिकदोषोंसे पक्षी मृग होताहै मानसदोषोंसे अन्त्यज कीट पतंग आदि होताहै ॥१२२॥ शंका—शरीरधारी चेतन होनेसे वृक्ष आदिमेंभी धर्म अधर्म होना चाहिए उत्तर—

न देहमात्रतः कर्माधिकारत्ववैशिष्ट्य-श्रुतेः ॥ १२३ ॥

विशिष्ट होनेमें श्रुतिप्रमाण होनेसे देहमात्रसे कर्म अधिकार होना सिद्ध नहीं होता ॥ १२३ ॥

देहमात्रसे जीवका धर्मअधर्मके योग्य होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि विशिष्टहोनेमें धर्मअधर्मकर्मका अधिकारी होना श्रुतिमें कहाहै अर्थात् ब्राह्मण आदि मनुष्यशरीर ज्ञान विशिष्टके अर्थ कर्म करने व धर्म अधर्मका उपदेश श्रुतिमें है अन्यमें नही है ॥ १२३ ॥

त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ॥ १२४ ॥

तीनकी तीन प्रकारकी कर्मदेह उपभोगदेह उभयदेह होनेकी व्यवस्था है ॥ १२४ ॥

तीनकी अर्थात् उत्तम मध्यम अधमकी तीन प्रकारकी कर्मदेह उपभोगदेह उभयदेह होनेकी व्यवस्था है यथा ऋषियोंका देह कर्मदेह है व इन्द्र आदिकोंका उपभोगदेह है और राजऋषिओंका कर्म व भोग उभय देह है अर्थात् कर्म व भोग दोनोंके अर्थ है प्रधानतासे तीन प्रकारका विभाग है अन्यथा सबहीका भोगदेह होना सिद्ध होताहै ॥ १२३ ॥

न किञ्चिदप्यनुशायिनः ॥ १२५ ॥

विरक्ता देह तीनमेंसे कोई नहीं है ॥ १२५ ॥

जो वैराग्यको प्राप्त पुरुष है उसका देह उक्त तीन प्रकारमेंसे कोई नहीं है अर्थात् तीनोंसे विलक्षण है ॥ १२५ ॥

न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि वह्निवत् ॥ १२६ ॥

आश्रयविशेषमेंभी अग्निके तुल्य बुद्धि आदिका नित्यत्व नहीं है ॥ १२६ ॥

बुद्धि निश्चय करनेवाली वृत्तिका नामहै बुद्धि इच्छा आदिकोंका जो किसी आश्रयविशेष ईश्वर अथवा आदि पुरुष ब्रह्मा विष्णु आदिमें नित्य होना माना जावै तो आश्रयविशेषमेंभी नित्य होना संभव नहीं होता हमको अपनी बुद्धि व इच्छा आदिके अनित्य होनेके दृष्टांतसे सबहीकी बुद्धि व इच्छा आदिके अनित्य होनेका अनुमान करना योग्यहै यथा लौकिक अग्निके दृष्टांतसे आवरण तेजकेभी अनित्य होनेका अनुमान होताहै ॥ १२६ ॥

आश्रयासिद्धेश्च ॥ १२७ ॥

आश्रय सिद्ध न होनेसे भी ॥ १२७ ॥

जो यह माना जायकि पुरुष नित्य है नित्य पुरुषमें आश्रित बुद्धि नित्य है तो पुरुषका धर्म बुद्धि नहीं है न पुरुष बुद्धिका आश्रय होना सिद्ध होता है बुद्धि प्रकृतिकार्यरूप अनित्य है पुरुषका आश्रय होना सिद्ध न होनेसे परिणामधर्मवाली प्रकृति कारणसे जन्य बुद्धि अनित्य है पुरुष अपरिणामी नित्यमें उपाधिमात्रसे जैसा पूर्वही वर्णन किया गयाहै बुद्धिका सम्बंध होताहै ॥ १२७ ॥ शंका पूर्वही जो सिद्धपुरुषोंमें सृष्टिकर्ता होनेका सामर्थ्य व ऐश्वर्य होना वर्णन कियाहै सिद्धोंमें ऐश्वर्य सामर्थ्य होने आदिकी सिद्धिओंके होनेका प्रमाण किस प्रकारसे होताहै इस्के समाधानमें सिद्धियोंके प्रमाण होनेका हेतु दृष्टांत वर्णन करते है॥

योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ॥ १२८ ॥

योगसिद्धियांभी औषध आदि सिद्धियोंकी समान असत् कहनेके योग्य नहीं है ॥ १२८ ॥

औषध आदि सिद्धियोंके सदृश योगसिद्धियाँ असत् कहनेकी योग्य नही है अर्थात् औषध आदि सिद्धियोंके सदृश सत्य है योगसे उत्पन्न अणिमादिक सिद्धियां सृष्टि उत्पन्न करने आदिकी उपयोगिनी होती है ॥ ॥ १२८ ॥अब जे भूतोंका धर्म चैतन्य मानते हैं उनके मतका प्रतिषेध करते हैं

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्ये ऽपि च सांहत्येऽपि च ॥ १२९ ॥

प्रत्येकमें दृष्ट न होनेसे संहत होनेकी अवस्थामेंभी संहत होनेके अवस्थामेंभी भूतोंमे चैतन्य (चेतनता) नहीं हैं ॥ १२९ ॥

पंचभूतोंमेंसे एकएक भिन्नमें किसीमे चैतन्य दृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्षसे सिद्ध न होनेसे उनके संहत भावके अवस्थामें अर्थात् मिलनेके अवस्थामेभी चैतन्य होनेका अनुमान नहीं होता क्योंकि जो कारणमे नहीं है वह कार्यमें नहीं होसकता और इसका विशेष व्याख्यान पूर्वही कियागया है प्रत्येक भूतमें चैतन्य न होनेसे संहतभाव शरीरमें चैतन्यधर्म न होनेका अनुमान होता है इस्से भूतोंमें चैतन्य नहीहै यह सिद्ध होताहै ॥ १२९ ॥

इति श्रीसांख्यदर्शने प्रभुदयालुनिर्मिते देशभाषाकृतभाष्ये परपक्षनिर्णये पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पंचम अध्यायमे पर पक्षका निराकरण (खण्डन) करिकै अपने म-

तको सिद्ध करिके उसी सारभूत शास्त्रार्थको इस छठवें अध्यायमें दृढतर बोध उत्पन्न होनेके लिये वर्णन करते हैं॥

अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ॥ १ ॥

नास्तित्वसाधनके अभाव होनेसे आत्मा है ॥ १ ॥

मैं जानता हूँ यह प्रतीति होनेसे सामान्यसे पुरुष सिद्धहै नास्तित्वके साधनके अभावसे अर्थात् आत्माके न होनेका साधनके अभावसे अर्थात् आत्माके होनेका बाधक होनेके प्रमाणके अभावसे आत्माहै यह सिद्ध है विवेकमात्र करना उचितहै ॥ १ ॥

देहादिव्यतिरिक्तोसौ वैचित्र्यात् ॥ २ ॥

विचित्र होनेसे यह देह आदिसे भिन्न है ॥ २ ॥

यह आत्मा चेतन देह आदि प्रकृतिपर्यन्तसे भिन्न है किस हेतुसे भिन्न होना सिद्ध होता है परिणामी होने व परिणामी न होने यह विचित्र धर्म होनेसे अर्थात् प्रकृति व प्रकृतिकेकार्य जिनका प्रत्यक्ष अनुमान शब्दसे परिणामी होना सिद्ध होता है उनसे विचित्र अर्थात् उनके विरुद्ध पुरुष अपरिणामी सिद्ध होनेसे पुरुष देहआदि प्रकृतिकार्यसे भिन्न है पुरुषका अपरिणामी होना सदा ज्ञात विषय होनेसे अनुमान किया जाता है जैसे चक्षुका रूपही विषय है समसन्निकर्ष होनेमेंभी रसआदि विषय नही हैं इसीप्रकारसे अपनी बुद्धिवृत्तिही पुरुषका विषय है समसन्निकर्ष होनेपरभी अन्यवस्तु विषय नही है बुद्धिवृत्तिकी आरूढताहीसे अन्य पदार्थ पुरुषको भोग्य होते हैं यह बुद्धिवृत्तियां अज्ञाता नहीं रहती जो ज्ञान इच्छा सुख आदिभी अज्ञात सत्तासे अंगीकार किएजावें तो उन्मेभी यथा घट आदि अन्य पदार्थोंमे संशय होताहै ऐसा संशय होना चाहिए कि मै हूं वा नहीं हूं मैं जानताहूं वा नहीं जानता हूँ सुखी हूँ वा नहीं हूँ परन्तु ऐसा नहीं होता इस्से उनके सदा ज्ञात होनेसे उनका द्रष्टा चेतन अपरिणामी है यह सिद्ध होता है क्योंकि परि

णामी होनेमे कभी परिणाम होनेमे बुद्धिवृत्ति होनेमेंभी बुद्धिवृत्तिके अज्ञानसे संशय प्राप्त होना संभव है ॥ २ ॥

षष्ठीव्यपदेशादपि ॥ ३ ॥

षष्ठी व्यपदेशसे भी ॥ ३ ॥

षष्ठी विभक्तिके व्यपदेश (कथन)सेभी आत्मा शरीरसे भिन्न है यह सिद्ध होता है यथा यह कहनेमें यह मेरा शरीर है मेरी बुद्धि है इत्यादिमें भेद होना प्रतीत होता है अत्यन्त अभेद होनेमें संबंध संबंधीके अभावसे षष्ठीकी प्राप्ति नहीं होसक्ती ॥ ३ ॥

न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात् ॥४॥

धर्मी ग्राहक प्रमाणसे प्रतिषेध होनेसे शिलाके पुत्रके सदृश नहीं है ॥ ४ ॥

जो यह तर्क किया जावै कि सम्बंध अर्थमें षष्ठीका व्यपदेश इस प्रकारसे है जैसा शिलाके पुत्रका शरीर कहना इस तर्कके प्रतिषेध व समाधानके अर्थ सूत्रमें यह कहा है कि पुरुषमें षष्ठीका व्यपदेश शिलापुत्रके षष्ठी व्यपदेशके सदृश नहीं है क्योंकि शिला पुत्र आदि स्थलमें धर्मीग्राहक प्रमाणसे बाधा वा प्रतिषेध होनेसे एक विकल्प मात्र है मेरा शरीर आदि कहनेमे प्रमाणसे बाधा नहीं है अर्थात् प्रमाणके विरुद्ध नहीं है केवल देहके आत्मा होनेके प्रमाणका प्रतिषेध है पुरुषके होनेका बोधकि मैं हूँ यह स्वाभाविक अनुभवसे सिद्ध है व अन्य पदार्थके साथ सम्बंध बोधगत होनेसे मेरा शरीर आदि कहना युक्त है कल्पना मात्र नहीं है ॥ ४ ॥ देहसे व्यतिरिक्त (भिन्न) आत्माको वर्णन करिकै मुक्तिका वर्णन करते है-

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ॥५॥

अत्यंत दुःखकी निवृत्ति होनेसे कृतार्थता होती है ॥ ५ ॥

अत्यन्त दुःख निवृत्त होनेसे मुक्ति होती है यह भाव है ॥ ५ ॥

यथा दुःखात्क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखाद भिलाषः ॥ ६ ॥

यथा दुःखसे पुरुषका द्वेष होता है तथा सुखसे अभिलाष नहीं होता ॥ ६ ॥

यदि यह शंका हो कि मोक्षमें भोग्य सुख दुःख दोनोकी निवृत्ति होती है सुखनिवृत्ति मोक्ष है यह क्यों नहीं कहा दुःखहीके निवृत्तिको मोक्ष क्यों कहाहै इस शंकाका निवारणके अर्थ यह कहा है कि यद्यपि दुःखकी निवृत्ति सुखकी प्राप्ति यह विशेष मनोरथ सब प्राणिओंका है परन्तु दुःख प्राप्त होनेमे जैसा द्वेष पुरुषका होता है सुख प्राप्तिमें ऐसा अभिलाष नहीं होता द्वेष प्रबल व अभिलाष उस्के अपेक्षा दुर्बल होता है इस्से प्रबल होनेसे दुःखकी निवृत्तिको मुख्य मानकर दुःखकी निवृत्तिको मोक्ष वर्णन किया है व सुखकी अपेक्षा दुःखकी बाहुल्यता है इस्सेभी दुःखहीके निवृत्त होनेको कहा है दुःखकी अधिकता आगेके सूत्रमें सूचित किया है ॥ ६ ॥

कुत्रापिको ऽपि सुखीति ॥ ७ ॥

कहीं कोई सुखी है ॥ ७ ॥

इस अनन्त सृष्टि तृण वृक्ष पशु पक्षी आदिमें कुछ मनुष्य देवता आदिही सुखी होते है इस्से कहीं कोई सुखी होना कहाहै ॥ ७ ॥

तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ॥ ८ ॥

वह भी दुःख मिश्रित है यह समुझकर विवेककरनेवाले दुःख ही पक्ष (कोटि)में संयुक्त करतेहैं ॥ ८ ॥

कहीं कोई सुखी है यह जो पूर्वसूत्रमें कहाहै उससुखकोभी विवेक करनेवाले दुःखही पक्षमें मिलाते है अर्थात् इस संसारमें सुख बहुत कम है और जो सुख कहीं है भी वह मिठाई व विष मिले हुये अन्नके सदृश दुःख मिलाहुवाहै दुःखरहित नहीं है इस्से जो सुखभी है उससकोभी विवेक करनेवाले दुःख समझकर दुःखही पक्षमे डालते वा संयुक्त करते हैं॥८॥

सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमितिचेन्नद्वैविध्यात्॥ ९॥

सुख लाभके अभावसे पुरुषार्थत्व नहीं है यह मानाजाय नही दोविध होनेसे ॥ ९ ॥

जो यह समुझाजावे कि सुखलाभ न होना यही पुरुषार्थत्वका नहोना है तौ इस्का उत्तर यह है कि नहीं अर्थात् सुखलाभका न होना पुरुषार्थका नहोना नहीं है किसहेतुसे नहींहै दो प्रकार होनेसे सुख होने व दुःखके न होनेकी प्रार्थना होनेसे दो प्रकारका पुरुषार्थ है क्योंकि मै सुखी होंउ दुखी नहोंऊ यह दो भिन्न भिन्न प्रार्थना लोकमें होना विदित होतीहै॥९॥

निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुतेः ॥ १० ॥

असंगत्व आदि प्रतिपादक श्रुति होनेसे आत्माका निर्गुण होना सिद्ध है ॥ १० ॥

आत्मा निर्गुण है अर्थात् सुख दुःख मोह आदि सम्पूर्ण गुणोंसे नित्यशून्य है किसप्रमाणसे श्रुतिप्रमाण होनेसे अर्थात् विकारका हेतु संयोगका अभाव श्रुतिसे सिद्ध होनेसे पुरुषका निर्गुण होना सिद्ध होता है क्योंकि विनासंयोग गुणनामक विकारका होना संभव नहीं होता इस्से दुःखनिवृत्त होनाभी पुरुषार्थ होना घटित नहीं होता असंग होनेके प्रमाणमें श्रुति यह है "सयदत्र किंचित् पश्यत्यनन्वागतस्तेन भवत्यसंगोह्ययं पुरुषः" अर्थ—वह अर्थात् पुरुष जो जो पदार्थ इस संसारमे जान

ता वा देखता है उनके साथ उसका मेल नही है इससे यह पुरुष असंगहै ॥ १० ॥

परधर्मत्वेऽपितात्सिद्धिरविवेकात् ॥ ११ ॥

परधर्म होनेमेंभी अविवेकसे उस्की सिद्धि है ॥ ११ ॥

सुख दुःख आदि आत्माके गुण नही हैं परके अर्थात् चित्तके धर्म हैं तथापि आत्मामें सिद्ध होतेहैं अर्थात् अविवेक निमित्तसे प्रतिबिम्बरूपके दुःख आदिकौंकी आत्मामें अवस्थिति है इस्का विशेष वर्णन पूर्वही किया गया है ॥ ११ ॥

अनादिरविवेको अन्यथा दोषद्वय-प्रसक्तेः ॥ १२ ॥

अविवेक अनादि है अन्यथा दो दोष होनेके प्रसङ्ग होनेसे ॥ १२ ॥

अविवेक प्रवाहरूपसे चित्तका अनादिधर्म है वासनारूपसे प्रलयमें स्थित रहताहै जो अनादि न माना जावै तौ दो दोष होनेका प्रसंग है अनायास अपनेसे उत्पन्न होनेमें मुक्तकाभी बंध होजायगा और कर्म आदिसे उत्पन्न होनेमे कर्मआदिकमेभी कारण होनेमें अविवेकान्तर (अन्य अविवेक) अन्वेषण (खोज) करनेसे अनवस्था दोषकी प्राप्ति होगी यह अविवेकवृत्तिरूप प्रतिबिम्ब स्वरूपसे पुरुषधर्मके सदृश होताहै इस्से पुरुषके बंधका प्रयोजक (प्रेरक) होताहै अर्थात् पुरुषके बंधका हेतु होता है यह भावहै ॥ १२ ॥ शंका अनादिहै तौ नित्य होगा उत्तर ॥

न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः ॥ १३ ॥

आत्माके समान नित्य न होगा अन्यथा उसका नाश न होगा ॥ १३ ॥

अविवेक आत्माके तुल्य अखण्ड एक नित्य अनादि नही है किन्तु प्रवाहरूपसे (सम्बंध न टूटने)से अनादिहै अन्यथा अनादिका नाश होना संभव न होगा ॥ १३ ॥ बंधकारणको कहकर अब मोक्षकारण-को वर्णन करते हैं।

प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत् ॥ १४ ॥

अंधकारके सदृश प्रतिनियतकारणसे इस्का नाश्यत्व है ॥ १४ ॥

इस्का अर्थात् बंधके कारण अविवेकका प्रतिनियतकारणसे नाश्य-त्व (नाश होनेके योग्य होना) है अर्थात् प्रतिनियतकारण जो अ-विवेकके नाशका विशेष नियत कारण विवेक है उस्से अविवेकका नाश होता है यथा अंधकार प्रतिनियतकारण प्रकाशहीसे नाशको प्राप्त हो-ता है अन्य साधनसे नष्ट नही होता. इसीप्रकारसे अविवेक प्रतिनिय-तकारण विवेकहीसे नाश कियाजाताहै अन्य उपायसे अविवेकका नाश नही होता ॥ १४ ॥

अत्रापिप्रतिनियमोऽन्वयव्यति-रेकात्॥ १५॥

इस्मेभी अन्वय व्यतिरेकसे प्रतिनियम है ॥ १५ ॥

इस्मेभी अर्थात् विवेकमेभी अन्वय व्यतिरेकसे कारणका प्रतिनि-यम होना सिद्ध है । अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन (वारम्वार ध्यान व चिन्तन करना)का अन्वय (विशेष योग) है और कर्मका व्यति-रेक (भेद) है अभिप्राय यह है कि विवेकमे श्रवण मनन निदिध्यासन-रूपही कारण है कर्मआदिकारण नही हैं कर्मादिक बहिरंग है श्रवण मनन आदिके सदृश अतरंगरूप कारण नही है ॥ १५ ॥

प्रकारान्तरासंभवादविवेक एवबंधः ॥ १६ ।

अन्यप्रकार संभव न होनेसे अविवेकही बंध है ॥ १६ ॥

अविवेकसे भिन्न अन्य प्रकारसे पुरुषमे बंध होना संभव न होनेसे अर्थात् स्वाभाविक पुरुषमें बंध होना जैसा कि प्रथम अध्यायमें प्रतिषेध किया गया है सिद्ध न होनेसे तथा अन्यकोई बंधका हेतु सिद्ध न होनेसे केवल अविवेकही बंधका हेतु है इस्से अविवेकही बंधरूप है यह भाव है ॥ १६ ॥

नमुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः॥१७॥

मुक्तका फिर बंधयोगभी नहीं होता अनावृत्ति प्रतिपादक श्रुति होनेसे ॥ १७ ॥

अनावृत्ति होनेके प्रमाणमें यह श्रुति है "भावकार्यस्यैव विनाशितया मोक्षस्य नाशो नास्ति"नसपुनरावर्तते" अर्थ भावकार्य हीके विनाशित(नाशको प्राप्त) होनेसे मोक्षका नाश नही है अर्थात् बंधभाव (होने)का हेतु अविवेककार्यका विवेकसे नाश होनेसे मोक्षका नाश नही है न वह (मुक्त) फिर बंधमे प्राप्त होता है व संसारमें आता है इस प्रकारसे अनावृत्ति (फिर न होना अर्थात् फिर बंध न होना) होना श्रुति प्रमाणसे सिद्ध होनेसे मुक्तका फिर बंधयोगभी नहीहै. भीशब्द यह सूचित करनेके लिये है कि मुक्तोंका फिर बंध नहीं होता ऐसा न समुझना चाहिये जे पर मोक्षको नहीं प्राप्तहुये ऐसे मुक्तोंका फिर बंध होताहै अनेक मुक्तोंमें कोई परम मोक्षको प्राप्त मुक्तका फिर बंध भोगभी श्रुतिप्रमाण अनुसार नहीं होता और जिनका फिर बंध नहीं होता वही यथार्थ मुक्त व पुरुषार्थको प्राप्तहै ॥ १७ ॥

अपुरुषार्थत्वमन्यथा ॥ १८॥

अन्यथा पुरुषार्थ होना सिद्ध न होगा ॥ १८ ॥

अन्यथा अर्थात् जो कोई ऐसा मुक्त होना कि जिसको फिर बंधन हो ना मानाजावै तौ परमपुरुषार्थ (सर्वथा दुःख निवृत्तिरूप मोक्ष)का होना सिद्ध न होगा ॥ १८ ॥

अविशेषापत्तिरुभयोः ॥ १९ ॥

दोनोंके विशेष न होनेकी प्राप्ति होगी ॥ १९ ॥

जो मुक्तकोभी फिर बंध होजानाहै तौ बद्ध व मुक्तमें दोनोंके सम होजानेसे कुछ तौ विशेषता न रहैगी ॥ १९ ॥

मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः ॥ २० ॥

अन्तरायके नाश होनेसे पर पदार्थ मुक्ति नहीं है ॥ २० ॥

अन्तराय (विघ्न) जो अविवेक हेतुसे बुद्धि उपाधिद्वारा उत्पन्न दुःखहै उस्के नाशसे पर श्रेष्ठ अथवा भिन्न कोई पदार्थ मुक्ति नहींहै अर्थात् अन्तरायका नाश होनाही मुक्तिहै ॥ २० ॥

तत्राप्यविरोधः ॥ २१ ॥

उसीमें अविरोध है ॥ २१ ॥

उसीमें अर्थात् विघ्न नाशहोनेहीके मोक्ष होनेमें पुरुषार्थ होनेका विरोध नहीहै अर्थात् पुरुषार्थहोना सिद्ध होताहै दुःखका योग व वियोगही पुरुषमें कल्पितहै दुःख भोग कल्पित नहींहै दुःखसम्बन्धहोना अर्थात् स्फटिकमें जपाकुसुमके प्रतिबिम्बके सदृश प्रतिबिम्बरूपसे दुःखसंबंधहोना भोगहै इसीका निवृत्तहोना मोक्ष व विघ्नका नाश होनाहै ॥ २१ ॥

अधिकारित्रैविध्यान्ननियमः ॥ २२ ॥

अधिकारी तीन प्रकारके होनेसे नियम नहीं है ॥ २२ ॥

उत्तम, मध्यम, अधम, तीनप्रकारके ज्ञानके अधिकारीहैं त्रिविध अधि-

कारी होनेसे श्रवणमात्रके पश्चात् सबहीके मानस साक्षात्कार होनेका नियम नहींहै मन्द अधिकार होनेहीके दोषसे श्रवणमात्रसे विरोचन आदिको मानसज्ञान उत्पन्न नहींहुवा इस्से श्रवणमात्रका ज्ञान उत्पन्न करनेमें सामर्थ्य नहींहै ॥ २२ ॥

दार्ढ्यार्थमुत्तरेषाम् ॥ २३ ॥

दृढ होनेके अर्थ उत्तर वालोंका ॥ २३ ॥

विघ्नका नाश दृढ होनेके अर्थ अर्थात् आत्यन्तिक नाश होनेके अर्थ श्रवणसे उत्तर (पश्चात्)जो मनन निदिध्यासनहै उनका नियमहै नियमशब्दका पूर्वसूत्र सम्बन्धसे व भावसे ग्रहण होताहै ॥ २३ ॥ अब उत्तरवाले मनन निदिध्यासन आदिके साधनको वर्णन करतेहैं

स्थिरं सुखमासनमितिननियमः ॥ २४ ॥

सुखपूर्वक स्थिर होना आसन है नियम नहीं है ॥ २४ ॥

आसनमें पद्मासन आदिका नियम नहीं है जिस्मे सुखसे स्थिरहो वही आसन है ॥ २४ ॥

ध्यानंनिर्विषयंमनः ॥ २५ ॥

विषय रहित मन (अंतःकरण) ध्यान है ॥ २५ ॥

वृत्तियोंसे अंतःकरणका शून्य होनाही ध्यानहै जैसा की योगदर्शनमें कहाहै कि चित्तकी वृत्तियोंका निरोध योगहै यहां ध्यान शब्दसे योग कहनेका अभिप्राय है अर्थात् ध्येय पदार्थमात्रमें चित्तका लगना और सम्पूर्ण विषयरूप वृत्तियोंसे अंतःकरणका रहितहोना ध्यानहै ॥ २५ ॥ शंका—जब पुरुष योग अयोगमें एकही रूप रहताहै नित्यमुक्तहै फिर योगसाधनसे क्या प्रयोजनहै उत्तर—

उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः ॥ २६ ॥

दोनोप्रकारमें विशेष नहीं है यह माना जावै तौ उपराग निरोध होनेसे विशेष है ॥ २६ ॥

दोनोप्रकारमें अर्थात् योगअवस्था व अयोगअवस्थामें विशेष नहीं है जो यह संशय होवै तौ उत्तर यहहै कि नहीं योगअवस्थामें अयोगअवस्थासे उपराग निरोध होनेसे अर्थात् प्रतिबिम्बरूप बंधकी निवृत्तिहोनेसे विशेष है ॥ २६ ॥ निःसङ्गपुरुषमें उपराग किसप्रकारसे होताहै उत्तर–

निःसङ्गेऽप्युपरागो विवेकात् ॥ २७ ॥

संगरहितमेंभी अविवेकसे उपराग होता है ॥ २७ ॥

संगरहित पुरुषमें यद्यपि पारमार्थिक उपराग विषयप्रीति नहीं है तथापि अविवेकसे औपाधिक प्रतिबिम्बही उपराग होताहै ॥ २७ ॥ अब इसीका विवरण करतेहैं ॥

जपास्फटिकयोरिवनोपरागः किंत्वभिमानः ॥ २८ ॥

गोडहरके फूल व स्फटिकके समान उपराग नहीं है किन्तु अभिमान है ॥ २८ ॥

यथा स्फटिकमें जपाकुसुम (गोडहरकेफूल)के योगमें उपराग नहीं होता अर्थात् लालरूप नहीं होता किन्तु प्रतिबिम्बवशसे अभिमानमात्र भ्रमसे होताहै कि स्फटिक रक्त (लाल) है इसीप्रकारसे बुद्धि व पुरुषमें उपराग नहीं है बुद्धि प्रतिबिम्बवशसे अविवेकसे पुरुषमें उपरागका अभिमान होताहै इससे उपरागके तुल्य वृत्तिप्रतिबिम्बही पुरुषका उपराग है यह दुःखात्मक वृत्तिरूप उपरागही विघ्नहै इसविघ्नका नाश होना मोक्षका प्राप्त होना है इसका नाश चित्तवृत्तियोंका निरोधरूप जो असम्प्रज्ञात योग है उसमें होता है योगहीसे विघ्न (बंध दुःख)का नाश होतहै

यही योगशास्त्रका सिद्धांत है ॥ २८ ॥ राग निरोध होने व योग साधनका उपाय वर्णन करतेहैं ॥

ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभि-स्तन्निरोधः ॥ २९ ॥

ध्यान धारणा अभ्यास वैराग्य आदिकोंसे उस्का निरोध होता है ॥ २९ ॥

उस्का अर्थात् उपरागका ध्यान धारणा अभ्यास वैराग्य आदिसे निरोध होता है समाधिद्वारा ध्यान करना योगका कारण है ध्यानका कारण धारणा है धारणाका कारण अभ्यासहै अभ्यास चित्तकी स्थिरता सिद्ध करनेका अनुष्ठानहै विषयसे वैराग्य होना अभ्यासका कारण है वैराग्यका कारण दोष विचारना यम नियम आदि करना है इन योगके अंगोके साधनसे उपरागका निरोध (रोंक) होताहै ॥ २९ ॥

लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः ॥३०॥

लय (निद्रा) व विक्षेप (प्रमाण आदि वृत्ति) वृत्तियोंकी निवृत्तिसे कोई आचार्य कहते हैं॥ ३० ॥

ध्यान आदिसे चित्तकी निद्रावृत्ति व प्रमाण आदि वृत्तिकी निवृत्ति होनेसे पुरुषकेभी वृत्ति उपरागका निरोध होताहै यह कोई आचार्य कहते हैं ॥ ३० ॥

नस्थाननियमश्चित्तप्रसादात् ॥ ३१ ॥

चित्तके प्रसाद (प्रसन्नहोने)से ध्यान आदि होनेंसे स्थानका नियम नही है ॥ ३१ ॥

चित्तके प्रसादहीसे ध्यान आदिक होते हैं पर्वतके गुहाआदि स्थान होनेका नियमनही है कोई स्थान हो जहां चित्त शुद्ध व प्रसन्न हो ध्यान आदि करना चाहिए ॥ ३१ ॥

प्रकृतेराद्योपादानतान्येषांकार्यत्वश्रुतेः॥ ३२॥

औरोंका कार्य होना सुन्नेसे प्रकृतिकी आद्य उपादानता सिद्धिहोतीहै॥ ३२॥

महत्तत्व आदिकोंका कार्य होना सुन्नेसे इन सबका मूल प्रकृतिका आद्य उपादान कारण होना सिद्ध होता है॥ ३२॥ जो पुरुषही उपादान माना जावै तौ क्या दोष है उत्तर॥

नित्यत्वेऽपिनात्मनोयोगत्वाभावात्॥ ३३॥

नित्य होनेमेंभी योग होनेके अभावसे आत्माकी उपादानता नहीं है॥ ३३॥

गुणवान् होना व संगी होना उपादानके योग्य होना है अर्थात् जिस्में गुण होता है व संग होना धर्म होताहै वही उपादान कारण होसकता है आत्मामें गुण व संगका अभाव है दोनोंके अभाव होनेसे आत्माका उपादानकारण होनेका योग होना संभव नहीं है इस्से नित्य होनेपरभी आत्माका उपादान होना सिद्ध नहीं होता॥ ३३॥

श्रुतिविरोधान्नकुतर्कापसदस्यात्मलाभः॥ ३४॥

श्रुतिविरोधसे कुतर्क करनेवालेको आत्मलाभ नहीं है॥ ३४॥

जे पुरुषके उपादान कारण होनेमें पक्ष हैं वह सब कुतर्क व श्रुति विरुद्ध है कुतर्क करनेवाले अधमको आत्मलाभ अर्थात् आत्मज्ञानका लाभ नहीं होता जो आत्माके कारण होनेकी प्रतिपादक श्रुतिहैं वह शक्ति व शक्तियां मानके अभेद भावसे उपासना करनेके उपदेशमें हैं॥ ३४॥ शंका—स्थावरआदिमें पृथिवीआदिहीका कारण होना विदित होताहै प्रकृतिका सबका उपादान क्यों मानते हौ उत्तर॥

पारम्पर्येऽपिप्रधानानुवृत्तिरणुवत्॥ ३५॥

परम्पराक्रम होनेके द्वारा कारण होनेमेंभी प्रधानकी अनुवृत्ति अणुके समान है ॥ ३५ ॥

स्थावरआदिकोंमें परम्परा करिकै कारण होनेमेंभी उनसे प्रधानका अनुमान होनेसे प्रधानका उपादान होना अंगीकार किया जाताहै यथा अंकुर आदिही द्वारा स्थावर आदिमें पृथिवी आदिके अणुओंके अनुगम (अंकुरके सदृश हो प्राप्त) होनेसे अणुओंका उपादान होना मानाजाता है इसीप्रकारसे पृथिवीआदि स्वरूपसे प्रकृतिका उपादान होना अंगीकार करना चाहिये इससे पृथिवीआदिमें प्रधानके उपादान होनेकी अनुवृत्ति है ॥ ३५ ॥

सर्वत्रकार्यदर्शनाद्विभुत्वम् ॥ ३६ ॥

सर्वत्र कार्य देखनेसे प्रधानका विभुत्व है ॥ ३६ ॥

व्यवस्थारहित सर्वत्र विकार रूप कार्य देखनेसे प्रधानका विभु होना अर्थात् व्यापक होना विदित होता है यथा अणुओंका घट आदिमें व्यापित्व है इसीप्रकारसे प्रधानका सब कार्यपदार्थोंमें व्यापित्व है इसका व्याख्यान पूर्वही होगया है ॥ ३६ ॥ जो परिच्छिन्न होनेमेंभी जहाँ कार्य उत्पन्न होता है वहाँ प्रकृति जाकर प्राप्त होती है ऐसा माना जाय तौ इसका उत्तर यह है—

गतियोगेप्याद्यकारणताहानिरणुवत् ॥ ३७॥

गतियोग होनेमेंभी अणुके तुल्य आद्यकारण होनेकी हानि है ॥ ३७ ॥

प्रधान (प्रकृति)में गति (क्रिया)योग होनेमेंभी अर्थात् क्रियायोगभी माननेमें यथा क्रियावान् अणुओंके मूलकारण होनेका अभाव है इसीप्रकारसे प्रधानके मूलकारण होनेका अभाव होगा इससे प्रधानका व्यापकही मानना युक्त है अथवा सूत्रका यह अर्थ है कि गति योग होने-

मेंभी अणुके तुल्य आद्य (जो आदिमें हो)कारण होनेकी हानि नहीं है व भाव इस्का यह है कि परस्पर संयोग होनेके अर्थ त्रिगुणात्मक प्रधानकी क्षोभ (सञ्चलन)रूप क्रिया श्रुति स्मृतिमें सुनी जाती है इसपर जो यह शंका होकि यथा क्रियावान् तन्तु आदि मूलकारण नहीं होते तथा प्रधान मूलकारण नहीं है तौ उत्तर यह है कि यथा वैशेषिक मतमें क्रियावान पार्थिव आदि अणुओं (परमाणुओं)को मूलकारण मानते है क्रियावान होनेसे मूलकारणताकी हानि नही मानी जाती इसीप्रकारसे क्रियायोग होनेमेंभी प्रधानके मूलकारण होनेकी हानि नहीं है ॥ ३७ ॥

प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ॥ ३८ ॥

प्रसिद्धसे प्रधानकीअधिकता है इस्से नियम नही है ॥३८॥

नव द्रव्य प्रसिद्ध है प्रधान द्रव्य नव द्रव्यसे अधिक है इस्से नवही द्रव्य हैं यह नियम नहीं है ॥ ३८ ॥ अब यह संशय है कि सत्व आदि त्रिगुणरूपही प्रकृति हैं अथवा द्रव्यरूप तीनों गुणोकी आधारभूत है इस संशयके निवारणके लिये यह उत्तर है

सत्वादीनामतद्धर्मत्वंतद्रूपत्वात् ॥ ३९ ॥

सत्व आदिकोंका उस्के रूप होनेसे उस्का धर्मत्व नही है ॥ ३९ ॥

सत्वगुणोंका उस्के अर्थात् प्रकृतिके रूप होनेसे उस्का धर्मत्व अर्थात् प्रकृतिका धर्म होना नहीं है भावार्थ यह है कि सत्व आदि गुण प्रकृतिके रूपही हैं प्रकृतिके धर्म नहीं है प्रकृतिके रूपही होनेसे सम्बंध सम्बंधीभाव न होनेसे धर्म धर्मी होनेका निश्चय नहीं होता अब यह संशय है कि सत्वआदि गुणोंका प्रकृतिके कार्य होना संभव नहीं होता क्योंकि एक प्रकृतिका विना अन्यद्रव्यके संयोग विचित्र तीन गुणोंका उत्पन्न करना संभव नहीं है विना अन्यद्रव्यके संयोग विचित्र कार्यकी उत्पत्ति प्रत्यक्षके विरुद्ध कल्पना करना उचित नहीं है इस्का उत्तर यह है कि

सत्वआदि कोई प्रकृतिसे भिन्न पदार्थ नहीं हैं जिनकी विचित्र उत्पत्ति मानीजाय अंशभावसे कार्य होना कहा जाता है यथा पृथिवीसे पृथिवीके अंशरूप द्वीपोंकी उत्पत्ति है इसीप्रकारसे प्रकृतिसे गुणोंकी उत्पत्ति जानना चाहिए ॥ ३९ ॥ विना प्रयोजन प्रवृत्ति नहीं होती प्रधान किस प्रयोजनसे सृष्टिको उत्पन्न किया यह वर्णन करते हैं—

अनुपभोगेऽपिपुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्र-कुंकुमवहनवत् ॥ ४० ॥

उपभोग न होनेमेंभी ऊंटके केसर लैचलनेके समान पुरुषके अर्थ प्रधानकी सृष्टिहै ॥ ४० ॥

परके अर्थ प्रधानकी सृष्टि होनेका तृतीयाध्यायमें ५८ सूत्रमें इसी ऊंटके केसर ले चलनेके दृष्टांतसे व्याख्यान किया गया है ॥ ४० ॥ सृष्टिके विचित्र होनेका कारण कहते हैं—

कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ॥ ४१ ॥

कर्मकी विचित्रतासे सृष्टिकी विचित्रताहै ॥ ४१ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र शरीर आदि होनेसे विचित्रसृष्टि कर्मोंकी विचित्रतासे होती है अर्थात् अनेक प्रकारके कर्मोंके अनुसार अनेक प्रकारकी सृष्टि होती है ॥ ४१ ॥

साम्यवैषम्याभ्यांकार्यद्वयम् ॥ ४२ ॥

समभाव व विषमभावसे दो कार्य होते हैं ॥ ४२ ॥

इसशंका निवारणके लिये कि एक कारणसे दो विरुद्ध कार्य सृष्टि व प्रलय कैसे होते हैं यह कहा है कि समभाव व विषमभाव दो भिन्न हेतु होनेसे दो कार्य होते हैं सत्वआदि तीन गुणरूप प्रधान है इन तीन गुणोंका न्यून अधिक होना विषमभाव है व तीनोंका सम होना सम भाव है इन दो हेतुओंसे सृष्टि प्रलय दो कार्य होते हैं स्थिति सृष्टिरूप

सृष्टि अंतर्गत है इससे प्रकृतिको उसका कारण होना पृथक् नहीं कहा ॥ ४२ ॥ शंका प्रकृतिके सृष्टि स्वभाव होनेसे ज्ञानके पश्चात्भी संसार होना चाहिए उत्तर–

विमुक्तबोधान्नसृष्टिःप्रधानस्य लोकवत् ॥ ४३ ॥

विमुक्तबोध होनेसे लोकके तुल्य प्रधानकी सृष्टि नहीं होती ॥ ४३ ॥

विमुक्तबोध होनेसे अर्थात् पुरुष साक्षात्कार होनेसे उसपुरुषके अर्थ कृतार्थ होनेसे फिर प्रधानकी सृष्टि नहीं होती जैसे लोकमे मंत्री आदि राजाका काम करिकै कृतार्थ हो फिर राजाके लिये प्रवृत्त नहीं होते इसी-प्रकारसे प्रकृति फिर प्रवृत्त नहीं होती ॥ ४३ ॥ शंका प्रधानकी सृष्टिसे शांतता नहीं है क्योंकि अज्ञानिओंका बंध रहनेसे संसार बना रहता है ऐसा होनेमें प्रकृतिकी सृष्टिसे मुक्तकाभी फिर बंध होजाना चाहिए अथवा होजाना संभव है–

नान्योपसर्पणेऽपिमुक्तोपभोगो निमित्ताभावात् ॥ ४४ ॥

अन्य प्रति उपसर्पण होनेमेंभी निमित्तके अभावसे मुक्तका उपभोग नहीं होता ॥ ४४ ॥

कार्यकारणसंयोगरूप सृष्टिकरिकै अन्यप्रति अर्थात् अज्ञानी प्रति प्रधानका उपसर्पण (गमन) होनेमेंभी अर्थात् प्रधानके प्राप्त होनेमेंभी मुक्तका उपभोग नहीं होता क्यों नहीं होता निमित्तके अभावसे अर्थात् उपभोगमे प्रधानकी उपाधिसे उत्पन्न संयोगविशेष व उसके कारण अविवेक आदि जो निमित्त होते हैं उनके अभावसे, यही मुक्तप्रतिप्रधान सृष्टिकी निवृत्ति अर्थात् पुरुषके भोगका हेतु प्रधानका अपनी उपाधिसे परिणाम विशेषरूप जो जन्म है उसका उत्पन्न न करना है ॥ ४४ ॥

यह मुक्त व बद्धकी व्यवस्था तब घटित होसक्ती है जब पुरुष बहुत हों और पुरुषोंका बहुत होना अद्वैत श्रुतिओंसे प्रतिषेधित (खण्डित) है इस्से संशय होता है इस संशयके निवारणके अर्थ यह सूत्र है-

पुरुषबहुत्वंव्यवस्थातः ॥ ४५ ॥

व्यवस्था (अवस्था भेद)से पुरुषका बहुत होना विदित होता है ॥ ४५ ॥

बंध मोक्ष व्यवस्था होनेसे पुरुषोंका बहुत होना अनुमानसे सिद्ध होता है व श्रुतिसेभी सिद्ध है श्रुतिमें कहा है"येतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरेदुःखमेवोपयन्ति" इत्यादि अर्थ-जे आत्माको जानते हैं वह मोक्षको प्राप्त होते हैं इतर दुःखहीको प्राप्त होते हैं इत्यादि ॥ ४५ ॥

उपाधिश्चेत्तत्सिद्धौपुनर्द्वैतम् ॥ ४६ ॥

उपाधि हो उसकी सिद्धि होनेमें फिर द्वैत है॥४६॥

जो उपाधि मानीजाय कि उपाधिसे अनेक प्रकारकी व्यवस्था होती है तौ उस्की (उपाधिकी) सिद्धि होनेमेंभी द्वैत सिद्ध होगा अद्वैतका निषेध होगा ॥ ४६ ॥ पूर्वपक्ष- उपाधिभी अविद्यारूप है इस्से अद्वैतका भङ्ग नहीं होता उत्तर-

द्वाभ्यामपिप्रमाणविरोधः ॥४७॥

दोसेभी प्रमाणका विरोध है ॥ ४७ ॥

दोसे अर्थात् पुरुष व अविद्या दो अंगीकार करनेसेभी अद्वैत प्रमाणका विरोध होगा ॥ ४७ ॥ अन्य दूषणभी कहते है-

द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरंच साधकाभावात् ॥ ४८ ॥

दोसे विरोध न होनेसेभी पूर्व और उत्तर साधकके अभावसे घटित नहीं होते ॥ ४८ ॥

दोसे विरोध न होनेसेभी अर्थात् जो ऐसा मानाजाय कि पुरुष व अविद्या दो हैं और अविद्याके माननेमें कुछ विरोध नहीं है तौ ऐसा माननेसेभी पूर्व व उत्तर अर्थात् अद्वैतवादी जो प्रकृतिके प्रतिषेध करनेमें पूर्वपक्ष करते हैं वह तथा साधकके अभावसे अपने सिद्धांतमे द्वैतपक्षके निषेधमे जो उत्तर वर्णन करते है वह दोनौं घटित नहीं होते पूर्व पक्ष इस हेतुसे घटित नहीं होता कि अविद्या व आत्मा दोको वह मानते हैं प्रकृति व आत्मा दोको हम मानते है जो उनके दो माननेसे अद्वैतका विरोध नहीं है तौ हमारे मतसे विरोध नहीं है वह अविद्याको अनित्य वाचारम्भणमात्र मानते हैं हमभी विकारको अनित्य वाचारंभणमात्र मानते हैं परंतु जो हमारे अनेक पुरुषोंके अंगीकार करनेसे और प्रकृतिकोभी नित्य अंगीकार करनेसे दोनोंमें विरोध है दोमेंसे कौन सत्य मानना चाहिए ऐसा संशय हो तौ अद्वैतवादीयोंका उत्तरपक्ष (सिद्धांत) घटित नहीं होता इस्से अद्वैत पक्ष युक्त नहीं है क्यों अद्वैतपक्षका सिद्धांत घटित नहीं होता साधकके अभावसे अर्थात् अद्वैतपक्षका कोई साधक हेतु सिद्ध नहीं होता किन्तु अविद्याके अंगीकार करनेहीसे अद्वैतवादिओंके सिद्धांतकी हानि होती है ॥ ४८ ॥

प्रकाशतस्तत्सिद्धौकर्मकर्तृविरोधः ॥ ४९ ॥

प्रकाशसे उस्की सिद्धि होनेमें कर्म व कर्ताका विरोध है ॥ ४९ ॥

अद्वैतवादी जो प्रकाश वा ज्ञानसे आत्माका सिद्ध होना मानें व प्रकाशहीरूप अद्वैत भावसे आत्मा मानाजाय तौ इसके प्रतिषेधमें यह कहा है कि प्रकाशसे उस्की सिद्धि होनेमें कर्म व कर्ताका विरोध है अर्थात् चैतन्यरूप प्रकाशसे चैतन्यकी सिद्धि मान्नेमे कर्म कर्त्ताका विरोध होता है प्रकाश्य व प्रकाशक दोके सम्बंधमें प्रकाशकका प्रकाश करना लोकमें दृष्ट है साक्षात् अपनाही आपमे सम्बंध होना विरुद्ध है अर्थात् आपही कर्म व आपही कर्ता होना विरुद्ध है इस्से आत्माको प्रकाशक मान्नेमेंभी

कर्म सम्बंध होनेसे द्वैत सिद्ध होगा ॥ ४९ ॥ शंका–जो चेतनमें प्रकाश धर्म न माना जावै और अपने प्रकाशसे आप सिद्ध होना मान्नेमे कर्म व कर्ताका विरोध होता है तौ किस प्रकारसे आत्मा सिद्ध होताहै उत्तर–

जडव्यावृत्तो जडंप्रकाशयतिचिद्रूपः ॥ ५० ॥

जडसे व्यावृत्त (भिन्नताको प्राप्त) चैतन्यरूप जडको प्रकाश करता है ॥ ५० ॥

जडकी व्यावृत्तिमात्रसे व्यावृत्त चैतन्यरूप जडको प्रकाश करता है. सूर्य आदि तेज धर्मवानके समान चेतन प्रकाश नहीं करता भाव इस सूत्रका यह है कि अद्वैत माननेहीमें कर्म व कर्ताका विरोध होताहै हम जड व चेतन पदार्थको मानते हैं हमारे पक्षमें विरोध नहीं है हमारे धर्म धर्मी भेद न माननेमें व चिद्रूपही चेतनके माननेमें दोष नहीं है क्योंकि यद्यपि हम सूर्य आदिकोमें प्रकाश होनेके तुल्य चेतनमें प्रकाश धर्म नहींमानते परन्तु चिद्रूप (चैतन्य वा प्रकाश रूपही) पदार्थ जडको प्रकाश करताहै यह मानते है और वह प्रकाश करना इस हेतुसे माना जाताहै कि जडकी व्यावृत्तिमात्रसे चैतन्य होना कहा जाताहै जडसे व्यावृत्त (पृथक्ताको प्राप्त) चिद्रूपपदार्थ जडके ज्ञानका हेतु होनेसे जडको प्रकाश करता है ॥ ५० ॥ शंका–द्वैतके माननेमें अद्वैत श्रुतिओंका विरोध होगा उत्तर ॥

न श्रुतिविरोधोरागिणांवैराग्याय तत्सिद्धेः ॥ ५१ ॥

रागियोंके वैराग्यके अर्थ उस्की सिद्धि होनेसे श्रुति विरोध नहीं है ॥ ५१ ॥

श्रुति विरोध नहीं है विरोध न होनेमें हेतु यह है कि रागियोंके वैराग्य होनेके अर्थ श्रुतिमें अद्वैतप्रतिपादनके प्रयोजनकी सिद्धि है अ-

र्थात् रागी जे विषयोंमे लिप्तहैं उनके वैराग्य होनेके अर्थ इस प्रयोजनसें कि अद्वैतसाधनसे सत् वैराग्य होता है श्रुति अद्वैतप्रतिपादन किया है क्यौंकि पुरुष ज्ञानहीमात्र सत् और सब असत् द्वैतके अभाव जाननेसे स्वतंत्र कोई अन्य फल न सुन्नेसे केवल आत्मज्ञानही कल्याणरूप जानने-से सब अन्यपदार्थसे परम वैराग्य उत्पन्न होताहै ॥ ५१ ॥ अद्वैतवादी जगतको असत् कहते हैं जगत् सत्य है अथवा असत्यहै इस्का सिद्धांत हेतुसंयुक्त वर्णन करते हैं–

जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वा-द्बाधकाभावात् ॥ ५२ ॥

अदुष्टकारणसे उत्पन्न होनेसे बाधकके अभाव होनेसे जगत्का सत्य होना सिद्ध है ॥ ५२ ॥

निद्रा आदि दोषसे दुष्टअंतःकरणसे उत्पन्न होनेके हेतुसे स्वप्नमें शंखमें पियराई देखना लोकमें असत्य होना विदित होता है इसप्रकार-से किसीदोषसे दुष्टकारणसे महत्तत्वादि कार्यप्रपंच उत्पन्न नही हैं प्रकृतिकारण सत्यहोनेके विषयमें पूर्वहीं वर्णन कियागया है इससे दुष्ट-कारणसे उत्पन्न न होनेसे अर्थात् सत्कारणसे उत्पन्न होनेसे जगत् सत्य है तथा सत्य होनेके बाधक (विरुद्ध)प्रमाणके अभावसे (न होनेसे) जगत् सत्य है जो यह कहा जायकि जो श्रुति अद्वैतवर्णन करती हैं व-ह जगत्के सत्होनेके प्रमाणकी बाधक हैं तौ अद्वैत सिद्ध न होनेका प्रमाण पूर्वही वर्णन कियागया है संक्षेपसे यहां फिर वर्णन किया जा-ताहै कि अद्वैतश्रुती पूर्वोक्तअनुसार वैराग्यके अर्थ हैं अथवा प्रकरण अनुसार ब्रह्म सबमे व्यापक व ब्रह्मसे पृथक् कोई पदार्थ न जानकर ब्रह्म-मय भावसे विभागकी प्रतिषेध करनेवाली है प्रपंचके अत्यन्त तुच्छता वर्णनपर नही हैं अन्यथा अद्वैत होनेमें उनही (श्रुतिओं)के होनेकी बाधा होगी क्योंकि जगत् प्रपंच स्वप्नवत् मिथ्या होनेके हेतुसे स्वप्न

कालके शब्दके मिथ्या होनेमें उस शब्दके द्वारा जानागया जो अर्थ है वहभी संदेहयुक्त असत्यही होना संभव है श्रुतियोंका अपनेही आत्माकी घातक होनेसे अर्थात् अपनेही प्रमाणकी आप घातक होनेसे श्रुतियां प्रपंचके अत्यंत (निषेध) करनेपर नहीं हैं इस्से जगत्के बाधकप्रमाणके अभावसे जगत् सत्य है ॥५२॥ जगत् केवल वर्तमानदशामें सत नहीं है सदा सत्य है इसअभिप्रायसे सदा सत् होनेका हेतु वर्णन करते हैं–

प्रकारान्तरासंभवात्सदुत्पत्तिः ॥ ५३ ॥

अन्यप्रकारसे उत्पन्न होना संभव न होनेसे सत्की उत्पत्ति होती है ॥ ५३ ॥

पूर्वही जैसा वर्णन कियागया है उन पूर्वोक्त युक्तिओंसे असत्का उत्पन्न होना असंभव है सूक्ष्मरूप कारणमें सत् वर्तमानही कार्य उत्पन्न वा प्रकट होता है इससे सतहीकी प्रकटता होती है ॥ ५३ ॥

अहंकारः कर्ता न पुरुषः ॥ ५४ ॥

अहंकार करता है पुरुष नहीं है ॥ ५४ ॥

अभिमानवृत्तिक अंतःकरणको अहङ्कार कहते हैं अहंकारके उत्तर प्रवृत्ति होती है व अहंकारवृत्ति भेदसे बुद्धिका कार्य है अहंकारके उत्तर प्रवृत्ति होनेसे अहंकारको कर्त्ता कहा है अपारिणामी होनेसे पुरुषका प्रवृत्त होना सिद्ध नहीं होता ॥ ५४ ॥

चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ॥ ५५ ॥

भोग चेतनमें प्राप्त होता है उस्के कर्मसे संचित वा जनित (उत्पन्न किया गया) होनेसे ॥ ५५ ॥

अहंकारके कर्ता होनेमेंभी भोग चेतनहीमें प्राप्त होता है इसमें यह शंका निवारणके अर्थ कि इसप्रकारसे अन्यनिष्ठ कर्मसे अन्यके भोग

होनेमें पुरुषविशेषमें होनेका नियम न होना चाहिये यह कहा है कि उस्के (चेतनके) कर्मसे संचित होनेसे अर्थात् भोग चेतनके कर्मोंसे संचितफलरूप होनेसे चेतनमें प्राप्त होता है अपने अपने अहंकार अंतःकरण द्वारा कियेहुये कर्मोंका फलभोग होनेसे अन्यके कर्मका फल अन्यको होना सिद्ध नहीं होता इस्से अतिप्रसंग दोष नहीं है ॥ ५५ ॥

चन्द्रादिलोकेप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ॥ ५६ ॥

चन्द्र आदि लोकमेंभी आवृत्ति है निमित्तकेसत्भाव होनेसे ॥ ५६ ॥

निमित्तके सत्भाव होनेसे अर्थात् भोगके निमित्त अविवेक कर्मआदि सत् होनेसे चंद्र आदिलोकमेंभी आवृत्ति है अर्थात् चन्द्रआदिलोकमें प्राप्त होनेमेभी फिर बंध होता है अर्थात् चन्द्र आदि लोकमें प्राप्त फिर दुःखबंधमे प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥ (शंका) चंद्र आदि लोक वासियोंके उपदेशसे अनावृत्ति होना माना जावै (उत्तर)

लोकस्य नोपदेशात् सिद्धिः पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

पूर्वके समान लोकके उपदेशसे सिद्धिनहीं होती ॥५७॥

पूर्वके समान अर्थात् यथा पूर्वोक्त मनुष्य लोकमें उपदेश मात्रसे ज्ञानकी सिद्धि नही होती इसीप्रकारसे अन्यलोकके वासियोंके उपदेशमात्रसे उन लोकके गयेहुयोंको ज्ञानकी सिद्धि नहीं होती ॥५७॥

पारंपर्येण तत्सिद्धौ विमुक्तिश्रुतिः ॥ ५८ ॥

परम्परासे उस्की सिद्धि होनेमें मुक्ति श्रवण है ॥५८॥

परम्परासे उस्की अर्थात् ज्ञानकी सिद्धि होनेहीमें मुक्ति होना सुना जाता है लोक आदिमें गमनमात्रसे मुक्ति नहीं होती अर्थात् ब्रह्मलोक आदिगत पुरुषोंका मोक्ष होना श्रवण मनन आदि परम्पराके द्वारा ज्ञानही सिद्ध होनेमे सुना जाता है अन्यथा होना संभव नहीं है ॥ ५८ ॥

गतिश्रुतेश्चव्यापकत्वेऽप्युपाधियोगा-
द्भोगदेशकाललाभो व्योमवत् ॥ ५९ ॥

व्यापक होनेमें भी उपाधि योगसे गति सुननेसे आका-
शके तुल्य भोग देशका कालवशसे लाभ होता है ॥ ५९॥

यद्यपि व्यापक आत्मामें गति संभव नहींहोती तथापि लोकान्तरमें आत्माका गमन सुननेसे आकाशके तुल्य उपाधियोगसे भोग देशका कालवशसे लाभ होना सिद्ध होताहै अर्थात् यथा व्यापक आकाशमें घट आदिके उपाधियोगसें गति होती है तथा आत्मामें उपाधि योगसे गति होती है विशेष व्याख्यान इसका पूर्वही होगयाहै ॥ ५९ ॥

अनधिष्ठितस्यपूतिभावप्रसंगान्नत-
त्सिद्धिः ॥ ६० ॥

अनधिष्ठितके पूतिभावप्रसंग होनेसे उसकी
सिद्धि नहीं है ॥ ६० ॥

भोक्तासे अधिष्ठित न हुऐ अर्थात् अधिष्ठान रहित वीर्य आदिके पूति-भाव होनेके प्रसंगसे जैसा पूर्वहीं वर्णन क्रिया गयाहै उसकी अर्थात् भोगायतन होनेकी सिद्धि नहीं है ॥ ६० ॥

अदृष्टद्वाराच्चेदसम्बद्धस्यतदसंभ
वाज्जलादिवदंकुरे ॥ ६१ ॥

अदृष्टद्वारा होवै सम्बंध रहितका वह संभव न
होनेसे अंकुरमें जल आदिके समान है ॥ ६१ ॥

इसशंका निवारणके लिये कि विना अधिष्ठान अदृष्टद्वारा भोक्ता-ओंके अर्थ भोगायतन शरीरका निर्माण होजाय यह कहा है कि सम्बंध रहित अदृष्टका अर्थात् अधिष्ठान (प्राणव्यापार)के सम्बंधरहि-

तं अदृष्टका शुक्र (वीर्य) आदिकोंमें शरीर निर्माणमें वह संभव न होनेसे अर्थात् भोक्ताके द्वारा होना संभव न होनेसे अदृष्टद्वारा शरीरका निर्माण होना सिद्ध नहीं होता यथा बीजसम्बंध रहित जल आदिकोंका अंकुरकी उत्पत्तिमें कर्षक आदिका द्वारा होना संभव न होनेसे जल आदिके द्वारा अंकुर (आदिकी) उत्पत्ति नही होती इससे अपने आश्रय संयोग सम्बंधके साथही अदृष्टका शुक्रआदिमें सम्बंध होना मानना योग्य है ऐसा माननेमें आत्मसंयोगरूपसे अधिष्ठानका भोग उपकरण उपकार करना शरीरके निर्माणका हेतु होना सिद्ध है ॥ ६१ ॥

निर्गुणत्वात्तदसंभवादहङ्कारधर्माह्येते ॥ ६२ ॥

निर्गुण होनेसे व उस्के असंभव होनेसे यह अहंकारके धर्म हैं ॥ ६२ ॥

वैशेषिक आदिक यह मानते हैं कि अदृष्टके सम्बंधसे आत्मा अधिष्ठाता है इसके प्रतिषेधके अर्थ—यह कहाहै कि निर्गुण होनेसे व उस्के (अदृष्टके) संभव न होनेसे भोक्ताका अदृष्ट द्वारा अधिष्ठाता होना सिद्ध नहीं होता क्योंकि अदृष्ट आदि अहंकार अंतःकरण सामान्यके धर्म हैं भोक्ताके धर्म नही हैं ऐसा माननेमें हमारे मतमें विना द्वाराकी अपेक्षा संयोगमात्रसे साक्षात्‌ही भोक्ताका अधिष्ठान होना सिद्ध होता है यह भाव है ॥ ६२ ॥

विशिष्टस्यजीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ॥ ६३ ॥

अन्वय व्यतिरेकसे विशिष्टका जीवत्व है ॥ ६३ ॥

जीवधातु बल प्राणधारण अर्थमें है इससे जीव शब्दका अर्थ प्राणी होनेका हैं यह जीवत्वधर्म अहंकारविशिष्ट पुरुषका धर्म है केवल पुरुषका नहीं है किसहेतुसे अन्वयव्यतिरेकसे अर्थात् अहंकारके अन्वय (संयोग) व्यतिरेक (वियोग)से क्योंकि केवल अहंकारवान् पुरुषोंमें सामर्थ्य व प्राण धारण होना देखा जाता है व अहंकारशून्योंके

चित्तकी वृत्तिओंका राग जो प्रवृत्तिका हेतु है उस्के उत्पन्न करनेवाले अहंकारके अभावहोनेसे निरोधही होना विदित होता है इस्से विशिष्ट पुरुषका जीवत्व है अहंकाररहित पुरुषका जीवत्व नहीं है स्वच्छ मुक्तरूपत्व है अर्थात् अहंकार रहित मुक्तरूप होताहै ॥ ६३ ॥

अहङ्कारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात् ॥ ६४ ॥

अहंकाररूप कर्ताके आधीन कार्यसिद्धि है प्रमाणके अभावसे ईश्वरके आधीन नहीं है ॥ ६४ ॥

अहंकाररूप जो कर्ता है उसीके आधीन कार्यसिद्धि अर्थात् सृष्टि संहारकी सिद्धि है क्योंकि सामर्थ्य वा बल अहंकारहीका कार्य है अहंकार रहितमें सृष्टि उत्पत्तिकार्यका सामर्थ्य होना विदित नहीं होता अहंकाररहित ईश्वरमें क्योंकि ईश्वरमें अहंकार होनेका कोई हेतु पाया नहींजाता सृष्टि करनेकी प्रवृत्ति होना संभवनहीं है इस्से प्रमाणके अभावसे कार्यकी सिद्धि ईश्वरके आधीन नहीं है अहंकाररूप अर्थात् अहंकारोपाधिक सिद्धपुरुष ब्रह्म रुद्रसे कार्यसिद्धि होसकती है परन्तु उनकाभी मूलकारण प्रकृति है नित्य ईश्वर नहीं है नित्य ईश्वरका सृष्टिकर्ता होना प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है ॥ ६४ ॥ शंका औरोंका कर्ता तौ अहंकार है अहंकारका कर्ता कौन है उत्तर–

अदृष्टोद्भूतिवत्समानत्वम् ॥ ६५ ॥

अदृष्टकी प्रकटताके तुल्य समानत्व है ॥ ६५ ॥

यथा सृष्टिकी आदिमें प्रकृति क्षोभक (करनेवाला) कर्मकी कालविशेष मात्रसे प्रकटता होती है और उस्के उद्बोधक कर्मान्तर (अन्यकर्म)के कल्पना करनेमें अनवस्थाकी प्राप्ति होती है इसीप्रकारसे अहंकार कालमात्र निमित्तहीसे उत्पन्न होता है उस्का कोई अन्य कर्त्ता नहीं है अन्यकर्त्ता कल्पना करनेमें अनवस्था दोष प्राप्त होनेका

प्रसंग है इसप्रकारसे प्रकृति क्षोभक कर्मरूप अदृष्ट व अहंकारका समानत्व है अर्थात् अदृष्टके सदृश अहंकारभी माननेके योग्य है ॥ ६५ ॥

महतोऽन्यत् ॥६६॥

अन्य महत्तत्त्वसे ॥ ६६ ॥

अन्य अहंकार कार्यरूपसृष्टि संहारसेभिन्न जो पालन कार्य है वह महत्तत्त्वसे होता है पालनमें पर अनुग्रहमात्र प्रयोजन होनेसे अभिमान रागका अभाव व शुद्ध सत्वगुणका होना सिद्ध होता है इस्से महत्तत्वका कार्य है इससूत्रसे महत्तत्वोपाधिक अर्थात् महत्तत्वरूप विष्णुको जो सृष्टिका पालक होना कहते हैं सिद्ध होसकता है ॥ ६६ ॥

कर्मनिमित्तः प्रकृतेःस्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजांकुरवत् ॥ ६७ ॥

प्रकृतिका अपना व अपने स्वामीका भावहोनाकर्मनिमित्तक होनेमेंभी बीज व अंकुरके समान अनादि है ॥६७॥

प्रकृति व पुरुषका अपना व स्वामिभाव अर्थात् भोग्य भोक्ता भाव जो कर्म निमित्तक मानाजावै तौभी वह प्रवाहरूपसे अनादिही है यथा बीज व अंकुरका सम्बंध अनादि है आकस्मिक होनेमें मुक्तकाभी फिर भोग प्राप्त होना सिद्ध होगा इस्से निमित्त अवश्य अंगीकारके योग्य है॥६७॥

अविवेकनिमित्तो वा पंचशिखः ॥ ६८ ॥

अथवा अविवेक निमित्तसे पंचशिख मानते हैं॥६८॥

अथवा प्रकृति व पुरुषका भोग्य व भोक्ता भाव अविवेक निमित्तसे है जैसा कि पंचशिख आचार्य मानते हैं पंचशिख आचार्य जो अविवेक निमित्तसे भोग्य व भोक्ता भाव होना मानते हैं उनके मतमेंभी अविवेक अनादि है अविवेकके अनादि होनेसे भोग्य भोक्ता भाव अनादि है प्रलयमें भी वासनारूपसे कर्मके समान अविवेक रहता है ॥ ६८ ॥

लिङ्गशरीरनिमित्तकइति सनन्दाचार्यः ॥ ६९ ॥

लिङ्गशरीरनिमित्तक है यह सनन्दन आचार्य मानते हैं ६९

प्रकृति व पुरुषका भोग्य भोक्ताभाव लिंगशरीरनिमित्तक है यह सनन्दनाचार्य मानते हैं क्योंकि लिङ्गशरीरहीके द्वारा भोग होता है उनके मतमेंभी लिंगशरीर अनादि है व लिंगशरीरके अनादि होनेसे भोग अनादि है यद्यपि प्रलयमें लिंगशरीर नहीं रहता तथापि उसके कारण अविवेक व कर्म आदिक पूर्वसृष्टिके लिंगशरीरजन्य रहते हैं उनके द्वारा बीज व अंकुरके सदृश भोग्य भोक्ता भाव व लिंगशरीरका अनादि होना सिद्ध होता है इससे लिङ्गशरीरनिमित्तक है ॥ ६९ ॥

यद्वातद्वातदुच्छित्तिःपुरुषार्थस्तदुच्छित्तिःपुरुषार्थः ॥ ७० ॥

जिसकिसीनिमित्तसे हो उस्का नाश पुरुषार्थ है उस्का नाश पुरुषार्थ है ॥ ७० ॥

चाहै कर्म निमित्तसे हो चाहै अविवेक निमित्तसे चाहै जिसनिमित्तसे हो प्रकृति व पुरुषका अनादि भोग्य भोक्ता भाव जिस्का नाश करना वा दूर करना अति कठिन है उस्का नाश पुरुषार्थ है उस्का नाश पुरुषार्थ है यह निश्चय है शास्त्रके आदिमे यही प्रतिज्ञा है कि त्रिविध दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति अत्यन्त पुरुषार्थ है व इसीको सिद्धांत निश्चित करके शास्त्रकी समाप्तिमें कहकर शास्त्रको समाप्त किया है उस्का नाश पुरुषार्थ है इसको दोवार शास्त्रकी समाप्ति सूचित करनेके लिये है ॥ ७० ॥

इतिश्रीप्यारेलालात्मजबांदामण्डलान्तर्गततेरहीतिख्यातग्रामवासि श्रीप्रभुदयालुविनिर्मिते सांख्यदर्शनेदेशभाषाकृतभाष्ये तंत्राध्यायः षष्ठस्समाप्तः । समाप्तश्चेदंशास्त्रमिति ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना—मुंबई.

शुद्धिपत्रम्.

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२	२२	मुक्तस्य भावस्य	मुक्तस्वभावस्य
"	२३	मुक्त पुरुषको	मुक्त स्वभाव पुरुषको
६	३	स्वभावके नाशवान न होनेसे (अवि-धिस्वरूप) अर्थात् विधि रहित रूप अप्रामाण्य (प्रमाणरूप न होना) होगा अ-ननुष्ठान लक्षण	स्वभावके नाशवान न होनेसे अननुष्ठान लक्षण (अविधिस्वरूप) अर्थात् विधि रहितरूप अप्रा-माण्य (प्रमाणरूप न होना) होगा अर्थात् श्रु-तिका अननुष्ठान लक्षण अप्रामाण्य होगा.
"	७	उससे अनुष्ठानके लक्षण	उसके अनुष्ठानके लक्षण
"	"	प्रामाण्य न होगा	श्रुतिका प्रामाण्य न होगा
"	८	श्रुतिसे उपदेश	श्रुतिमें उपदेश
"	१०	रहित, होनेसे	रहित होनेसे,
८	१	सदा सम्बंधसे	सदा सम्बंध होनेसे
१०	६	सूत्रकार	सूत्रकारने
११	८	हानी	हानि
११	११	विजातीय	विजातीये
१२	१	सत वही असत	सत् वही असत्
१२	८	नहिं है	नहीं हैं
१४	१२	विषम	विषय
१५	९	नहिं	नहीं
१६	२	आदिकी	आदिके
"	१०	(तमरूपही) तथा	(तम रूपही था)

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
,,	२०	एक वारगी	एकही साथ
१७	१८	वह	व
१८	५	पदार्थकी तुल्य	पदार्थके तुल्य
,,	१२	शून्य है	शून्य होगा
२१	२	आदिकी	आदिके
,,	९	आकाशकी	आकाशके
,,	११	वह उपाधि योगसे	उसमें उपाधि योगसे
२३	१८	अर्थ लिये	अर्थ (लिये)
२५	१४	प्रत्यक्ष पदार्थ	अप्रत्यक्ष पदार्थ
,,	२२	पांच मात्र	पांच मात्रा
२६	८	उपस्थ लिंगबायोनि	उपस्थ (लिङ्गवायोनि)
,,	२५	कील प्रवेश	जिसमें कील प्रवेश
२८	३	चणु	अणु
,,	४	चुर्ण	चूर्ण
२९	२	कारण वृत्तिकी उपलब्धि	कारण वृत्ति रहित कार्य वृत्तिकी उपलब्धि
,,	१४	धर्मके	धर्मक
३०	१४	तत्व है	तत्व हैं
३१	२२	विवेक मननसे	विवेक व मननसे
३२	२२	आदि हेतु तद द्वातारा	आदि हेतुता तद्द्वारा
३३	६	द्यणुक आदिकी द्वाराही	द्यणुकही आदिकी द्वारा
,,	१६	उसके कारण	उसका कारण
३४	२	पुरुषको	पुरुषका
३६	१०	न कर्मण	न कर्मणा
३९	१९	प्रमाण है तीन प्रकारका	प्रमाण तीन प्रकारका
४२	८	नहीं है इस शब्दकी	नहीं है,नहीं है इस शब्दकी

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४३	२२	ईश्वराभाव	ईश्वराभावात्
४४	१	होनेसे	होनेमें
”	२	होनेसे	होनेके
४६	२२	वेद माननेमें	वेद माननेसे
४७	२१	सिद्धि होनेसे	सिद्धि प्रमाणसे होनेसे
५४	३	सर्वदा संभवात्	सर्वदा सर्वासंभवात्
५५	८	नहीं अभिप्राय	नहींसे अभिप्राय
५५	२१	नष्ट हुआ नाश होनेपर	नष्ट हुआ वा नाश होनेपर
”	२३	अतीत अनागत	अतीत अनागतमें
५६	१३	जीव अङ्कुरके तुल्य	बीज अङ्कुरके तुल्य
”	१८	खोजना है इससे अनवस्था दोष मानना चाहिये	खोजना है यद्यपि यह खोजनेमें कि बीजसे अङ्कुर वा अङ्कुरसे बीज हुआ है निश्चय प्राप्त नहीं और अनवस्थाकी प्राप्ति होवै तथापि बीज व अङ्कुरका होना प्रत्यक्षसे सिद्ध होनेसे यह अनवस्था दोष रूप नहीं है बीज व अंकुरके समान अभिव्यक्ति व उसकी अभिव्यक्ति वा सत्ताको मानना चाहिये इससे अनवस्था दोष न मानना चाहिये
५७	१३	कार्य वाचक	कार्यका वाचक
५८	१३	होनेसे आदिसे	होने आदिसे

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
६०	१	नही है	नहीं हैं
६२	१३	धर्मके समान	धर्मके समान साधन नहीं है अर्थात् साधन अपेक्षित नहीं है
६४	९	भोक्तासे भावसे	भोक्ताकेभावसे
,,	२४	प्रकाश है	प्रकाश भिन्न है
६७	५	सोवा	सोया
७०	१४	नहीं होते चेतनही मात्र	नहीं होते इससे चेतन जातिही मात्रसे एकता और व्यवस्था व व्यक्तिसे पुरुषोंमें अनेकता
७४	३	पुरुषसे	पुरुषमें
,,	२१	एक दूसरे उष्णता	एक दूसरेमें उष्णता
७६	२१	भृत्यके प्रत्येक	भृत्यके समान प्रत्येक
७८	१४	इसीसे	इससे
७९	२०	उनके	इनके
८०	३	दिक्काला वाकाशादि	दिक्कालावाकाशादिभ्यः
,,	२०	उसके धर्म कार्य	उसके कार्य धर्म आदि
८१	१४	अहंकारका	अहंकारकी
८२	१२	अहंकारत	अहंकारात्
८४	१०	होनेको	होनेका
८९	६	पुरुषार्थ	पुरुषार्थं
९१	६	निश्चित	निश्चय
९२	१९	आर्जित	अर्जित
९५	१५	बाहुल्यसे बाहुल्यकरके बा	बाहुल्य करके वा बाहुल्यसे

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९६	१६	तद्वादात तद्वाद:	तद्वादात्तद्वाद:
,,	२१	षटकौशिक:	षाट कौशिक
९८	२२ व२३	तेजोवाक	तेजोमयीवाक्
१००	१०	होता	होताहै
१०३	५	तत्व ज्ञानक	तत्वज्ञानका
१०७	१८	है	हैं
१०९	५	बाधा विघ्न	बाधा वा विघ्न
११०	८	सत्व गुण युक्त अधिक	सत्वगुण अधिक युक्त
११२	२१	ईश्वरको ईच्छा	ईश्वरकी इच्छा
११७	१४	इसको उत्तर	इसके उत्तर
११८	३	चरितार्थ्या	चरितार्थ्यात्
,,	८व९	ह यथा	है यथा
११९	१९	दृष्ट हानिहै	दृष्टकी हानि नहीं है
१२१	६	भेद है	भेदहैं
,,	८	होतीहै	होताहै
,,	११	मध्य	मध्यम
१२१	२०	मध्यविवेक	मध्यमविवेक
१२४	१२	हालका जाननेवाला	हालके जानने वालेने
१२६	३	अहिर्निल्वंपनी	अहि निल्वंपनी
१३१	६	अन्यका	अन्यको
,,	१२	उच्च लोगोंकी	उच्च लोकोंकी
,,	१२व१३	आदिलोगों	आदिलोकों
१३२	८	त्याग व करना ग्रहण	त्याग करना व ग्रहण
,,	२३	कामाचारित्वं	कामचारित्वं
१३५	१४	कृतार्थता है	कृतार्थता नहीं है
१३६	१	अर्थके	अर्थकि

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१३९	४	पुरुषको(अपने आत्माको	पुरुष अपनेको
,,	,,	जनता है	जानता है
१४३	१०	अविद्यासे नाश माना जावै	अविद्या होना माना जावै
,,	२४	होता	होताहै
१४५	२०	परदारांन्नगच्छेत	अर्थात्, परदारान्न गच्छेत
१४६	१७	पनोरथ	मनोरथ
१४७	१२	सार्थ	साथ
,,	१८	अब प्रत्यक्ष	अप्रत्यक्ष
१५१	१२	एक दूसरे परस्पर	एक दूसरेका परस्पर
१५२	७	न कार्य नियम	न कार्ये नियमः
१५३	२	मिलाते है	मिलातेहैं
१५३	१७व१८	होते हैं	होता है
१५५	२	उसके	उनके
,,	,,	नही है	नहीं हैं
,,	१४	अयोग्य हैं	अयोग्य है
१५६	१४	यही	वही
१५८	११	नही है	नहीं हैं
,,	१८	भान नही	भाव नही
१६०	२५	घट आदिकौंको	घट आदिकौंकी
१६१	४	उत्पन्न होता	उत्पन्न होना
,,	२३	विवेकसे प्राप्त	विवेकको प्राप्त
१६२	५	श्रुते प्रमाण	श्रुतिप्रमाण
१६९	२०	अणिमादि योग	अणिमादिके योग
१७९	७	फलता है	फैलता है

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१८०	१४	जीती है	जीती है अर्थात् जीवन धारण करती है
१८१	१७	त्रिविधिके	त्रिविधिसे
,,	१९	मासा आदि	मसा आदि
१८३	१	अधिष्ठानसे पारहीसे	अधिष्ठानसे (अधिष्ठान रूप प्राणसे) व्यापार होनेहीसे
,,	७	एकान्त होनेसे	एकान्तसे
,,	९	एकान्तसे अर्थात्	एकान्तसे नहीं है अर्थात्
१९३	१४	विदित होती है	विदित होती हैं
,,	१९	विकारका हेतु	विकारके हेतु
१९४	६व७	प्रतिबिम्ब रूपके	प्रतिबिम्ब रूपसे
१९५	२	(सम्बंध न टूटने) से	(सम्बंध न टूटनेसे)
,,	२३	वहिरंग है	बहिरंग हैं
,,	२४	अतरंग	अन्तरंग
१९७	८	कुछ तो विशेषता	कुछ विशेषता
१९९	१व२	तो उपराग निरोध होनेसे	तो ऐसा नहीं है उपराग निरोध होनेसे
२०१	२१	शक्तियांमान्	शक्तिमान्
२०९	१०	अदुष्ट कारणसे उत्पन्न होनेसे	अदुष्ट कारणसे उत्पन्न होनेसे (दुष्ट कारणसे उत्पन्न न होनेसे)
२१०	४	(निषेध)	निषेध
२१३	२	भोक्ताक द्वारा	भोक्ताका द्वारा
,,	५	(आदिकी)	आदिकी

शुद्धिपत्रम्.

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
”	८	उपकरण उपकार करना	उपकरण(उपकार करना)
२१४	२१	(करनेवाला)	(क्षोभ करनेवाला)
२१५	२५	सनन्दाचार्यः	सनन्दनाचार्यः
२१६	५	तथापि उस्वे	तथापि उस्के
”	१९	लिये है	लिये कहा है

अत्रशुद्धिपत्रेऽपियदियाः काश्चिदशुद्धयो दृष्टिदोषादविमार्जि तािशष्टास्स्युस्ताः विद्वद्भिर्विचार्य्य विमार्जनीयाः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–
खेमराज श्रीकृष्णदास
“श्रीवेङ्कटेश्वर” छापाखाना, खेतवाडी–मुम्बई.